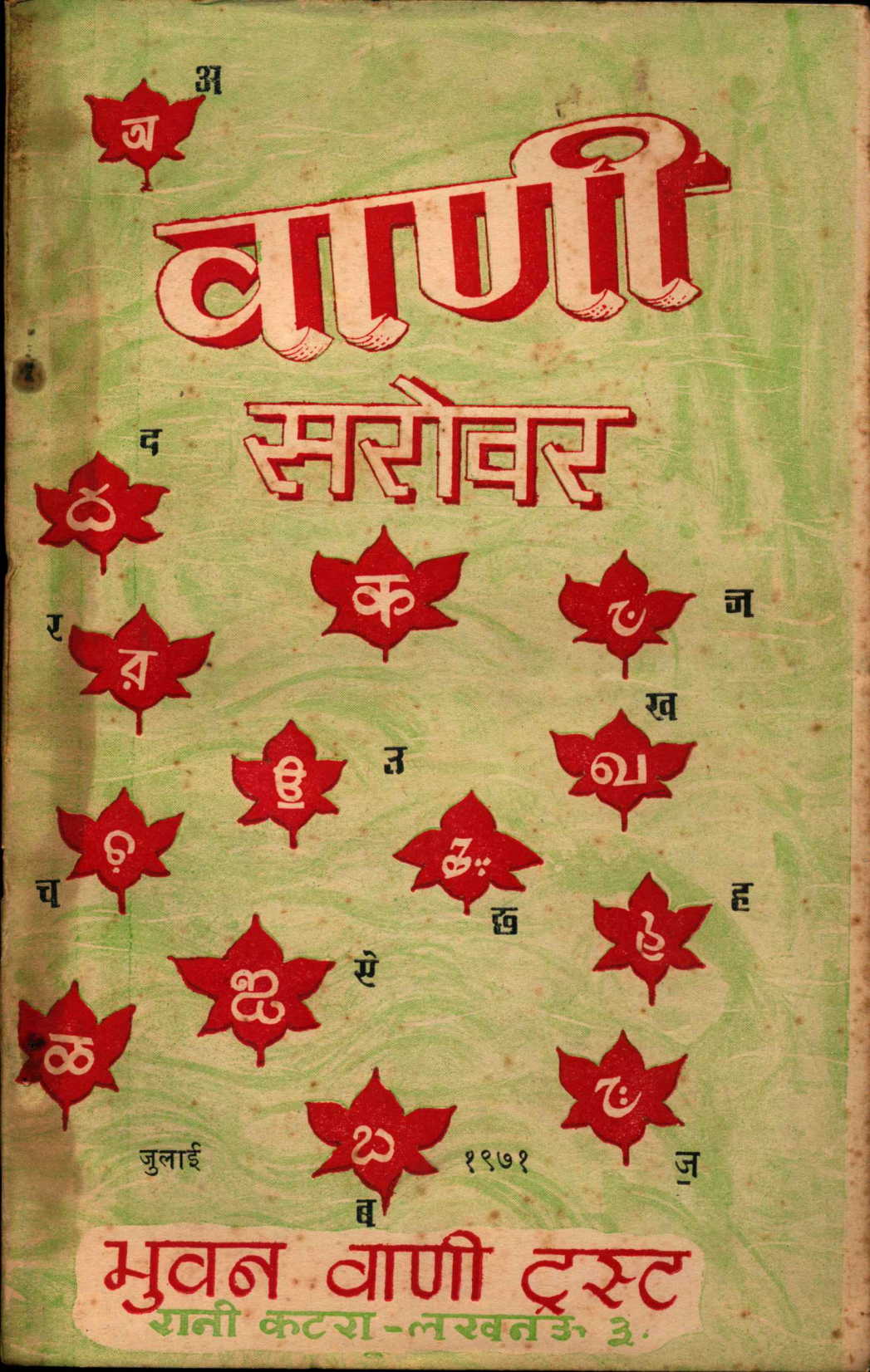

भुवन वाणी ट्रस्ट
रानी कटरा - लखनऊ ३

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी॥

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

तृतीय वर्ष जुलाई, १९७१ अंक—३

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ाज़ी मुहम्मद सिद्दीक़, मुफ़्ती दारुल्मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—प्रेमनाथ बाजपेयी एम. ए.

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड़—डॉ. वी. बी. पुत्तन, एम. ए. पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—माखनलाल रैना

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.) प्र० संपादक 'सरदार' लखनऊ

तमिळ—वी. नटराजन एम. काम.

तॅलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्. डी., रीडर, उस्मानिया वि. वि. हैदराबाद

पाली—डॉ० हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.

पारसी—सुश्री नाजू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊदहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू.(फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे, एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई
सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री, का.ती. बरेली
रामेश्वर प्रसाद पाण्डेय 'रमेश' शास्त्री, साहित्यरत्न

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए. साहित्यरत्न
एन. के. केवलरामानी, सा.मं.सि.स.

हिन्दी—डॉ० टी. एन. दीक्षित, एम.ए. पीएच्.डी.,डी.लिट.रीडर, ल.वि.वि.

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	ऋग्वेद १।१।१-९	श्री बिहारीलाल शास्त्री	३-४
४	(सम्पादकीय) तॅलुगु-देवनागरी चार्ट	... ...	५
५	सिन्धी-देवनागरी चार्ट	... ...	६
६	इस्लाम व भारतीय दर्शन की झाँकी	श्रीरामेश्वरप्रसाद पांडेय, नंदकुमार अवस्थी	७-११
७	'वाणी सरोवर' की पृष्ठ संख्या के क्रम को समझिए !		१२
८	(फ़ारसी) सिर्रे अक्बर—शाहज़ादः दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों की फ़ारसी व्याख्या। (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.		११३-१२८
९	(मलयाळम) कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार एवं अनु०—श्री के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लखनऊ विश्वविद्यालय		१२१-१३६
१०	(बंगला) कृत्तिवास रामायण लंकाकाण्ड—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी, अनुवादक—श्री प्रबोध मजुमदार		१२१-१३६
११	(तमिळ) तिरुक्कुरळ्—तिरुवल्लर कृत (क्रमशः) सानु०लिप्य०—सुश्री गोमती अय्यर, बी. ए. पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी		९७-११२
१२	(उर्दू) शरीफ़ज़ादः (मिर्ज़ा रुसवा कृत उपन्यास—क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—श्री विनयकुमार अवस्थी, सम्पादक—डॉ० सय्यद असद अली एम. ए., पीएच्. डी.		१०५-११२
१३	(गुरमुखी) श्री सुखमनी साहब (गुरु अर्जुनदेव की बानी—क्रमशः) अनु०—ख्वाजः दिलमुहम्मद,लाहौर लिप्य.—नंदकुमार अवस्थी		१२१-१३६
१४	(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादे सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी		८९-९६
१५	(ओड़िया) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक		९७-११२
१६	(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे, पूना एम.ए., अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी		५७-७२
१७	(असमिया) माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार		४१-४८
१८	(गुजराती) गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना, डॉ. दीनेश भट्ट, बंबई		३३-४०
१९	(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल', एम.ए., पी.एच्. डी.		१७-३२
२०	(सिन्धी) सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी एम. ए. सा० र०		१७-३२

ऋग्वेद मंडल १ सूक्त १

ऋषि—मधुच्छन्दा वैश्वामित्र, देवता—अग्नि, छन्द—गायत्री

ॐ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् ।। (ऋग् १।१।१)

अर्थ—मैं ऋत्विज, यज्ञ के देव, पुरोहित, ज्ञान-प्रकाश-स्वरूप पूज्य ईश्वर की स्तुति करता हूँ । जो कि (इस सृष्टिरूप यज्ञ के) होता हैं और रमणीयताओं को धारण करने में सर्वोपरि हैं ।

भावार्थ—इस संसार में वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा आदि ऋतुओं के परिवर्तन का करने वाला ईश्वर है । वह हमारा पुरोहित (नेता) है । हमारे यज्ञ का देवता है । संसार रूपी यज्ञ का रचाने वाला है और सर्वसौन्दर्य की खान है ।

प्रश्न—अग्नि का अर्थ आग है वा ईश्वर ? उत्तर—स्तुति, प्रार्थना, उपासना में ईश्वर अर्थ है । आगे वेद में ही (१।१६४।४६) में बताया है कि इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि आदि सब नाम उस एक ही तत्व (ब्रह्म) के हैं ।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत । स देवां एह वक्षति ।।
(ऋग् १।१।२)

अर्थ—अग्नि (ज्ञान-प्रकाश स्वरूप परमात्मा) पूर्व सृष्टि के ऋषियों से भी स्तुति किया गया है और नवीन सृष्टि के ऋषियों से भी । वह यहाँ समीप सब दिव्य शक्तियों को पहुँचाता है ।

भावार्थ—भक्त लोगों से सब कालों में, सब युगों में, सब कल्पों में ईश्वर की ही स्तुति की जाती रही है । वह प्रभु ही मनुष्य के जीवनरूपी यज्ञ में दिव्य गुण प्रदान करता है । प्रभुभक्तों को देव-संगति प्राप्त होती है ।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे । यशसं वीरवत्तमम् ।।
(ऋग् १।१।३)

अर्थ—ज्ञान-प्रकाश-रूप ईश्वर से दिन-दिन पुष्टिकारक धन की और वीरतायुक्त यश को प्राप्त किया जाता है ।

भावार्थ—भगवदुपासना से धन, पुष्टि, यश, बल, वीरता प्राप्त होती है ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि । स इद्देवेषु गच्छति ।।
(ऋग् १।१।४)

अर्थ—हे ज्ञान-प्रकाश-स्वरूप प्रभो ! जिस यज्ञ के सब ओर आप व्यापक हैं वही यज्ञ देवों को प्राप्त होता है । वह यज्ञ हिंसारहित है ।

भावार्थ—जिस जीवनरूपी यज्ञ में हिंसा नहीं है, किसी को सताया नहीं और सब कार्यों में ईश्वर का चिन्तन है, सब काम (शुभ) फल की इच्छा त्याग कर ईश्वर-अर्पण किये जाते हैं, सब ओर ईश्वर व्याप्त है, वह जीवन-यज्ञ देवों में (मुक्त पुरुषों में) पहुँचता है । वह जीवन मुक्तियोग्य है ।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः । देवो देवेभिरागमत् ।।
(ऋग् १।१।५)

अर्थ—वह अग्नि (ईश्वर) संसार का रचनेवाला है। कवि (सर्वदर्शी) कर्मशील, सत्य और विचित्र (अनुपम) यशों को धारण करनेवाला है। वह प्रभु हमें दिव्य शक्तियों के साथ प्राप्त हो।

भावार्थ—ईश्वर इस संसाररूपी यज्ञ का होता है, विधाता है; क्रान्तदर्शी, ज्ञानदाता और गति देनेवाला है। वह सत्य है, अविनाशी है, और उसकी महिमा निराली है। उसकी उपासना से दिव्य शक्तियाँ मिलती हैं। उसकी प्राप्ति से यश मिलता है।

यद॒ङ्ग॒ दा॒शुषे॒ त्वमग्ने॑ भ॒द्रं क॑रि॒ष्यसि॑। तवेत्तत्स॒त्यम॑ङ्गिरः॥
(ऋग् १।१।६)

अर्थ—हे प्रिय मित्र अग्ने! तुम अपने भक्त (का उपासक, दाता-समर्पणकर्त्ता) का कल्याण करते हो। हे अंग-अंग में व्यापक प्रभो! निश्चय ही यह तुम्हारा सत्यव्रत है।

भावार्थ—अपने भक्त का कल्याण ईश्वर अवश्य करता है।

उप॑ त्वाग्ने दि॒वेदि॑वे दो॒षावस्तर्धि॒या व॒यम्। नमो॒ भर॑न्त॒ एम॑सि॥
(ऋग् १।१।७)

अर्थ—हे अग्ने! नित्य प्रति रात्रि और दिन में (सायं-प्रातः) बुद्धि के साथ हम प्रणाम को लिये हुए आपकी सेवा में आवें।

भावार्थ—मनुष्य को नित्य ही नम्रता के साथ सायं-प्रातः ईश्वर की उपासना और यज्ञ करना चाहिए।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑। गो॒पा॒मृत॑स्य॒ दीदि॑विम्। वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑॥
(ऋग् १।१।८)

अर्थ—हे प्रभो! हिंसारहित पुण्यकार्यों में विराजमान, संसार के नियम के रक्षक, दिव्यरूप और अपने रूप में महान्, आनन्दघन! आपको हम प्राप्त हों।

भावार्थ—इन संसाररूपी यज्ञों में वही विराजमान है। सृष्टि के नियम (ऋत) का वही रक्षक है। वह प्रकाश-स्वरूप है। हम उस तक पहुँचें। सृष्टि के स्वामी का ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य-जीवन का लक्ष्य है।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व। सच॑स्वा नः॒ स्व॒स्तये॑॥
(ऋग् १।१।९)

अर्थ—हे अग्ने! वह (पूर्वोक्त प्रशंसायुक्त) आप हमारे लिए इसी प्रकार सुन्दर भेंटें (इनाम) देनेवाले हों जैसे पुत्र के लिए पिता। हमारे कल्याण के लिए आप द्रवित हों।

भावार्थ—भगवान् सब के पिता हैं। वह पिता के समान अपने प्रेम की भेंटें लिये हुए हैं। हम सुपुत्र बनें, वह हमारे कल्याण के लिए तैयार हैं; हम योग्य बनें।

मालिक के दरबार में कमी काहु की नाहिं
बंदा मौज न पावही, चूक चाकरी माहिं (क्रमशः)

सम्पादकीय

'वाणी सरोवर' के जुलाई, १९७१ के अंक से तॅलुगु और सिन्धी भाषा के अनुपम ग्रंथों का हिन्दी अनुवाद सहित देवनागरी लिप्यन्तरण आरंभ हो रहा है।

प्रस्तुत 'तॅलुगु देवनागरी' वर्णमाला के चार्ट को देखने से मालूम होगा कि तॅलुगु और हिन्दी की वर्णमाला समान ही है। तॅलुगु में दो अक्षर विशेष हैं—मराठी ळ और ऱ। ऱ के उच्चारण में जिह्वा को तालू में पीछे की ओर स्पर्श करने पर र का सघर्षण उच्चारण करने पर ऱ की ध्वनि उत्पन्न होती है।

तेलुगु - देवनागरी वर्णमाला				
అ అ	ఆ आ	ఇ इ	ఈ ई	ఉ उ
ఊ ऊ	ఋ ऋ	ౠ ॠ	ఌ ऌ	ౡ ॡ
ఎ ఎ	ఏ ए	ఐ ऐ	ఒ ఒ	ఓ ओ
	ఔ औ	ం अं	ః अः	
క క	ఖ ख	గ ग	ఘ घ	ఙ ङ
చ च	ఛ छ	జ ज	ఝ झ	ఞ ञ
ట ट	ఠ ठ	డ ड	ఢ ढ	ణ ण
త त	థ थ	ద द	ధ ध	న न
ప प	ఫ फ	బ ब	భ भ	మ म
య य	ర र	ల ల	వ व	శ श
ష ष	స स	హ ह	క్ష क्ष	ఱ ऱ
		ళ ळ		

संस्कृत के शब्दों के प्रचुर मात्रा में प्रयोग के साथ-साथ, तॅलुगु सन्धि-समास-बहुला भाषा है। तॅलुगु भाषा की लेखनशैली में दो अपनी विशेषताएँ हैं—१. सन्धि वाले शब्दों को तोड़ कर लिखना, जैसे ,बलमशेषम्' को 'बल मशेषम्'। २. संयुक्ताक्षर में इ की मात्रा को बीच में लिखना, जैसे 'आसक्ति'।

अन्य दक्षिणी भाषाओं की भाँति तॅलुगु भाषा में भी 'ए' और 'ओ' के ह्रस्व और दीर्घ दो उच्चारण हैं। इसलिए देवनागरी लिप्यन्तरण में ह्रस्व 'ए' और 'ओ' के लिए ॅ और ॅ तथा दीर्घ के लिए े और ो मात्राओं का क्रमशः प्रयोग किया गया है। यह भी ध्यान रखने की बात है कि तॅलुगु भाषा में हिन्दी के समान शब्द अथवा शब्द-खण्ड के अन्तिम अक्षर को सस्वर लिखकर हलन्त बोलने की परिपाटी नहीं है। राम को राम् न पढ़ कर 'रा+म' पढ़ेंगे; म का हलन्त नहीं वरन् सस्वर उच्चारण किया जायगा।

'रंगनाथ रामायण' सर्वांगपूर्ण श्रेष्ठ काव्य है। गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित-मानस' से लगभग तीन सौ वर्ष पहले इसकी रचना हुई। ग्रंथ, तथा तॅलुगु लिपि और भाषा के सम्बन्ध में, ग्रंथ के शुभारंभ में सुलभ, विद्वान् लिप्यन्तरणकार एवं अनुवादक श्री डॉ० भीमसेन निर्मल का वक्तव्य पठनीय है।

सिन्धी भाषा में वेदान्त-विषय की सर्वाधिक लोकप्रिय पुस्तक 'सामीअ जा सलोक' का सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण का शुभारंभ इस अंक से हो रहा है। विषय-परिचय पुस्तक के शुरू में दिया गया है। प्रस्तुत सिन्धी-देवनागरी वर्णमाला चार्ट के सम्बन्ध में कुछ बातें समझना ज़रूरी हैं। सिन्धी वर्णमाला में समस्त भारतीय भाषाओं की अपेक्षा अधिक अक्षर हैं। देवनागरी लिपि के तथा अ़रबी लिपि के सब अक्षर और पाँच सिन्धी भाषा के निजी अंतःस्फुट (Implosive) अक्षर—इनको मिला कर सिन्धी लिपि पूर्ण होती है। अन्तस्फुट ग़ ज़ द़ ब़ अक्षरों को अन्तस् की ओर खींच कर उच्चारण करना पड़ता है। अ़रबी लिपि में स़ाद, सीन, ·से तथा ज़े, ·जाल, ज़ो, ज़ाद आदि के उच्चारणों में अन्तर है और उनसे शब्दों के अर्थ में अन्तर पड़ता है; जैसे ज़िल्लत, ·जिल्लत और ज़िल्लत के अर्थ क्रमशः भूल-चूक, अपमान और भटक जाना है। इस लिए अ़रबी से आये शब्दों को सिन्धी लिपि में—जो अब अ़रबी लिपि में ही लिखी जाती है—अ़रबी के अनुसार ही लिखा जाता है। किन्तु बोलने में इन अक्षरों के उच्चारण में अन्तर नहीं है; ·जाल, ज़े ज़ो आदि का उच्चारण, सिन्धी में समान है।

सिन्धी (देवनागरी वर्णमाला)				
भ ڀ	प پ	ब़ ٻ	ब ب	अ إ
थ ٿ	स ث	ट ٽ	ठ ٺ	त ت
घ گھ	ङ ڱ	ग़ ڳ	ग گ	ख ک
ड़ ڙ	ज़ ز	र ر	फ ڦ	फ़ ف
ड ڊ	द़ ڏ	ध ڌ	ज़ ذ	द د
ल ل	व و	श ش	स س	ढ ڍ
ण ڻ	न ن	क़ ق	क ڪ	म م
च چ	ञ ڃ	ज़ ڄ	ज ج	ह़ ح
स़ ص	झ جھ	ह ھ	ख़ خ	छ ڇ
ज़ ظ	त़ ط	ग़ غ	अ़ ع	ज़ ض
		य ي		

इस लिए सिन्धी भाषा के देवनागरी-लिप्यन्तरण में ज़े, ·जाल, ज़ो, ज़ाद के लिए 'ज़'; सीन, ·से, स़ाद के लिए 'स'; ते, त़ो के लिए त; छोटी-बड़ी हे और हे के लिए 'ह'; अ़ैन और अलिफ़ के लिए 'अ', फ़े के लिए फ़; ग़ैन के लिए 'ग़'; क़ाफ़ के लिए 'क़'; ख़े के लिए ख़ का प्रयोग किया गया है। किन्तु सिन्धी-देवनागरी लिपि के चार्ट में ज़ाद, जाल, ज़े, ज़ो, सीन, ·से, स़ाद, ते, त़ो, हे, ह़े, अ़ैन, अलिफ़ या हम्ज़ः आदि के लिए प्रथक् प्रतिनिधि अक्षरों को क़ायम कर दिया गया है। किसी धार्मिक अथवा साहित्यिक ग्रंथ-विशेष के देवनागरी लिप्यन्तरण में इनका प्रयोग करके अर्थ के अनर्थ अथवा विपरीत अर्थ से बचा जा सकता है। नित्य के व्यवहार में इनको प्रथक् लिखने की जरूरत नहीं।

इस्लाम और भारतीय दर्शन की झाँकी

हज़रत नूह अलैहिस्सलाम की नाव और जल-प्रलय

[क़ुर्आन शरीफ़ पारः १२ सूरः हूद ११ आयत १२]

इस सूरः में दिये वर्णन के अनुसार हज़रत नूह अ० की क़ौम कुफ़्र (अधर्म) की इस क़दर शिकार हो गई थी कि हज़रत नूह अ० के बार-बार चेताने पर भी उन्हें होश न आया और वे ज़ुल्म करते रहे। आख़िरकार हज़रत नूह को अल्लाह का आदेश हुआ कि वे एक नाव बना लें और उसमें बैठ कर, अधर्मियों पर आने वाले प्रलयकारी तूफ़ान से अपनी रक्षा करें।

निदान विनाशकारी तूफ़ान आया, नौका जल के उमाड़ पर बराबर उठती रही और (संभवतः ईराक में) जूदी पहाड़ पर टिकी। हज़रत नूह की नौका में वह स्वयं व उनका परिवार, कुछ धर्मिष्ठ जन तथा जीवों की नस्लों का एक-एक जोड़ा§ जो उस नाव में थे सुरक्षित बचे। बाक़ी सब काफ़िर और जीव तूफ़ान में नष्ट हो गये। यहाँ तक कि हज़रत नूह अ० का बेटा भी, जो ज़ालिम था, नहीं बच सका। बाद के लोग उन बचे हुओं की सन्तान हैं।

इसी प्रकार बाइबिल में भी यह घटना अरारात की पहाड़ी (शायद अर्मीनिया) में घटित बताई जाती है। इस महाप्रलय की चर्चा थोड़े अन्तर से यूरोप, अरब, मिश्र, चीन, भारत आदि नाना देशों के प्राचीन साहित्य में मिलती है। इससे मालूम होता है कि यह प्रलयकारी जल-प्लावन संसार में प्रसिद्ध हुआ। संभव है कि यह तूफ़ान विश्वव्यापी हुआ हो, और यह भी संभव है कि मानव-समाज उस समय सब ओर न फैल कर किसी एक भूखण्ड में ही सीमित रहता हो और वहीं यह प्रकोप आया हो। बाद में मनुष्य नाना देशों में जाकर बसे और अपने पूर्वजों पर घटित इस प्राचीन घटना को अपने नये निवास-स्थल के साथ जोड़ने लगे हों। बहरहाल दोनों सूरतों में आज की मौजूदा सारी मानव जाति इस तूफ़ान से सम्बन्धित है और उन्हीं की सन्तान है जो उस समय ईश्वर-कृपा से सुरक्षित रहे। भारतीय वाङ्मय में यह विवरण इस प्रकार है:—

§ श्रीमद्भागवत में सभी औषधियों, अन्नों और जीवों के बीज और सप्तर्षियों सहित मनु के नाव में बचने का ज़िक्र है।

(वैवस्वत) मनु की नौका

मनवे ह वै प्रातः अवनेग्यमुदकमाजह्रुर्यथेदं पाणिभ्यामवनेजनायाहरन्त्येवं तस्यावनेनिजानस्य मत्स्यः पाणी आपेदे ॥ १ ॥

सहास्मै वाचमुवाद । बिभृहि मा पारयिष्यामि त्वेति । कस्मान्मा पारयिष्यसीत्यौघ इमाः सर्वाः प्रजा निर्वोढा ततस्त्वा पारयितास्मीति । कथं ते भृतिरिति ॥ २ ॥

स होवाच । यावद्वै क्षुल्लका भवामो बह्वी वै नस्तावन्नाष्ट्रा भवत्युत मत्स्य एव मत्स्यं गिलति कुम्भ्यां माग्रे बिभरासि । स यदा तामतिवर्धा अथ कर्षू खात्वा तस्यां मा बिभरासि । स यदा तामतिवर्धा अथ मा समुद्रमभ्यवहरासि तर्हि वा अतिनाष्ट्रो भवितास्मीति ॥ ३ ॥

शश्वद्ध झष आस । स हि ज्येष्ठं वर्धतेऽथेतिथीछ समां तदौघ आगन्ता तन्मा नावमुपकल्प्योपासासै । स औघ उत्थिते नावमापद्यासै ततस्त्वा पारयितास्मीति ॥ ४ ॥

तमेवं भृत्वा समुद्रमभ्यवजहार । स यतिथीं तत्समां परिदिदेश ततिथीछ समां नावमुपकल्प्योपासाञ्चक्रे । स औघ उत्थिते नावमापेदे । तछ स मत्स्य उपन्यापुप्लुवे । तस्य शृंगे नावः पाशं प्रतिमुमोच । तेनैतमुत्तरं गिरिमतिदुद्राव ॥ ५ ॥

स होवाच । अपीपरं वै त्वा वृक्षे नावं प्रतिबध्नीष्व । तं तु त्वा मा गिरौ सन्तमुदकमन्तश्छैत्सीद्यावदुदकछ समवायात्तावत्तावदन्ववसर्पासीति । स ह तावत्तावदेवान्ववससर्प । तदप्येतदुत्तरस्य गिरेर्मनोरवसर्पणमित्यौघौ ह ताः सर्वाः प्रजाः निरुवाहाथेह मनुरेवैकः परिशिशिषे ॥ ६ ॥

[शतपथ कां १।८।१-६]

अनु०—मनु के लिये प्रातःकाल हाथ-मुख आदि को धोने के लिए सेवक लोग जल लाये जैसा कि सर्वत्र राजा रईसों के सेवक दोनों हाथों से अपने स्वामियों के समीप हाथ-मुख आदि धोने के लिये जल लाया करते हैं। उस जल से हाथ-मुख आदि को धोते समय मनु के हाथों में एक मत्स्य आ गया ॥ १ ॥ वह मत्स्य मनु से बोला—हे राजन् ! तुम मेरी रक्षा करो, मैं भी तुम्हारी रक्षा करूँगा। मनु बोले—तुम किससे मेरी रक्षा करोगे ? तब मत्स्य बोला एक बहुत बड़ी बाढ़ आयेगी, वह सभी प्राणियों को बहा ले जावेगी, उस बाढ़ से मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा। तब राजा बोला कि हे मत्स्य ! तुम्हारी रक्षा कैसे करूँ, बताओ ॥ २ ॥ वह मत्स्य बोला कि जब तक हम छोटे हैं तब तक हमें खाने वाली जलजन्तुओं की बहुत सी जातियाँ हैं अथवा बड़ी-बड़ी मछलियाँ ही छोटी मछलियों को खा लेती हैं। इसलिए पहिले घड़े में रखकर मेरी रक्षा करो। मैं जब इतना अधिक बढ़ जाऊँ कि घड़े में समा न सकूँ तब पृथ्वी में गड्ढा खोद कर उसमें मुझे रख दो। जब उस गड्ढे

में भी न समा सकूँ तब मुझको समुद्र में पहुँचा देना। इस प्रकार मैं निश्चयपूर्वक अपने सभी शत्रुओं को जीतने में समर्थ हो सकूँगा ॥ ३ ॥ तदनन्तर वह मत्स्य शीघ्र ही बहुत बड़ा हो गया और मनु से बोला—कुछ दिनों बाद बहुत बड़ी बाढ़ आयेगी। उसके पहिले ही तुम एक बहुत बड़ी नाव बनवाकर उस पर बैठकर समुद्र में बाढ़ आने पर मेरी प्रतीक्षा करना। मैं आकर उस नाव को पार लगा दूँगा ॥ ४ ॥ तब मनु ने उस मत्स्य को घड़ा, तालाब आदि में रखकर उसकी रक्षा की और अंत में उसे समुद्र में पहुँचा दिया। उस मत्स्य ने जिस प्रकार कहा था उसी प्रकार राजा ने बड़ी भारी नौका बनवा ली और बाढ़ आने पर उस नौका में सवार हो गये। तब वही मत्स्य मनु की नौका के पास आया। मनु ने उस मत्स्य की सींग में नौका को बाँध दिया। वह मत्स्य उत्तर दिशा में हिमालय पर्वत की ओर उस नौका को खींच ले गया ॥ ५ ॥ फिर वह मत्स्य मनु से बोला—मैंने तुम्हारी रक्षा कर दी, तुम डूबने से बच गये, अब तुम नौका को वृक्ष में बाँध दो और जितना-जितना जल बढ़ता जाये उतना-उतना तुम भी पहाड़ पर चढ़ते जाना। मत्स्य के कथनानुसार मनु पर्वत पर चढ़ गये। मनु जिस स्थान से पर्वत पर चढ़े थे वह स्थान "मनु का अवसर्पण" कहलाया। वह बाढ़ सभी प्रजाओं (प्राणियों) को बहा ले गई। केवल एक अकेले मनु ही इस पृथ्वी पर जीवित बचे।

शतपथ ब्राह्मण की यह 'मनु की नौका' की कथा श्रीमद्भागवत आदि पुराणों में भी विस्तारपूर्वक मिलती है। बाइबिल में भी यही कथा 'नूह की नाव' के नाम से मिलती है। यही कथा कुछ हेर-फेर के साथ क़ुर्आन शरीफ़ में भी 'नूह की किश्ती' के नाम से मिलती है।

श्रीमद्भागवत और मनु की नौका

'मनु की नौका' की यही कथा श्रीमद्भागवत पुराण के आठवें स्कन्ध के २४ अध्याय के श्लोक १ से लेकर ६१ तक में विस्तारपूर्वक वर्णन की गई है। इस कथा में भगवान् के मत्स्य अवतार के चरित्र का वर्णन किया गया है। कथा का सारांश निम्नलिखित है—एक बार जब प्रलयकाल में ब्रह्मा जी सो गये तो हयग्रीव नामक दानव ब्रह्माजी के वेदों को चुरा ले गया; उसे मारने के लिए भगवान् ने मत्स्य का रूप धारण किया। अत्यन्त सूक्ष्मरूप धारण कर वह मत्स्य तर्पण करते हुए द्रविड देश के राजा सत्यव्रत की अञ्जलि में पहुँच गया और उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की। राजा ने उसे कलश, गड्ढा, सरोवर आदि में रखा, किन्तु उत्तरोत्तर वह मत्स्य बढ़ता ही गया। तब राजा ने आश्चर्य-चकित होकर कहा कि आप साधारण मत्स्य नहीं है; आप साक्षात् नारायण का अवतार प्रतीत होते हैं। तब मत्स्य ने कहा कि आज से सातवें दिन बहुत बड़ी बाढ़ आयेगी। उस समय मेरे प्रभाव से एक बहुत बड़ी नाव तुम्हारे पास आयेगी। तुम उस नाव पर सभी औषधियों, सभी अन्नों तथा सभी प्राणियों के बीज लेकर सातों ऋषियों के साथ सवार हो जाना और उस नाव को मेरी सींग में बाँध देना। जब तक प्रलय की बाढ़ का जल भरा रहेगा तब तक मैं उस नाव पर तुम्हारी रक्षा करूँगा। राजा ने मत्स्य के कथनानुसार किया। वही राजा प्रलय के बाद दूसरे कल्प में 'वैवस्वत मनु' नाम से प्रसिद्ध हुए।

औषधियों, अन्नों और सभी प्राणियों के बीजों का वर्णन निम्नलिखित श्लोकों में प्राप्त होता है—

त्वं तावदोषधीः सर्वाः बीजान्युच्चावचानि च ।
सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ।।
आरुह्य बृहतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ।
एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ।।

अनु०—मत्स्य द्रविडेश्वर सत्यव्रत से कहता है कि तुम सभी औषधियों, अन्नों आदि के सभी प्रकार के बीजों को तथा सभी प्राणियों (के एक-एक जोड़ा) को लेकर सातों ऋषियों के साथ विशाल नौका पर सवार हो जाना। जब तक प्रलय का सागर उमड़ा रहेगा तब तक उस प्रलय के अन्धकार में तुम ऋषियों के तेज से प्रकाश पाकर विचरण करते रहना।

—श्रीमद्भागवत ८।२४।३४-३५

नाव पर चढ़ते समय भी बीजों का वर्णन प्राप्त होता है:—

तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ।

—श्रीमद्भाग० ८।२४।४२

अनु०—राजा सत्यव्रत औषधियों, वनस्पतियों आदि के बीजों को लेकर सातों ऋषियों के साथ नौका पर सवार हो गये।◉

हज़रत आदम अ० और हव्वा

ऐ लोगो ! अपने रब से डरो जिसने तुम्हें एक जीव (आदम अ०) से पैदा किया और उसी से उसका जोड़ा (हव्वा को) पैदा किया; और उन दोनों से बहुत से पुरुषों और स्त्रियों को (संसार में) पैदा किया।

[क़ुर्आन शरीफ़ पारः ४ सूरः निसा ४ आयत १]

◉ इसी अनुसार क़ुर्आन शरीफ़ में भी हज़रत नूह की नाव में सब जीवों के एक-एक जोड़े के बचने का वर्णन है।

स्वायम्भुव मनु और शतरूपा§

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्धेन पुरुषोऽभवत् ।
अर्धेन नारी सा तस्यां विराजमसृजत् प्रभुः ।।—मनुस्मृति १।३२

मनुस्मृति में लिखा है कि पहले सब ओर पानी ही पानी था। परमात्मा ने उस पानी में बीज डाला जिससे एक सोने का विशाल अण्डा (ब्रह्माण्ड) उत्पन्न हुआ। उस अण्डे के दो टुकड़े हो गये; ऊपर का भाग आकाश तथा नीचे का भाग पृथ्वी बना। उस अण्डे के बीच हिरण्यगर्भ (ब्रह्मा जी) उत्पन्न हुए। ब्रह्मा जी ने अपने शरीर के दो भाग किये। दहिने भाग से एक पुरुष उत्पन्न हुआ जिसका नाम स्वायम्भुव मनु हुआ। बाँयें भाग से एक स्त्री उत्पन्न हुई जिसका नाम शतरूपा हुआ। यही दोनों (मनु-शतरूपा) मानव सृष्टि के जनक (पिता-माता) हुए। मनु से उत्पन्न होने के कारण ही मनुष्यों के 'मनुष्य' 'मानव' 'मनुज' तथा 'मानुष' आदि नाम प्रसिद्ध हुए।

शतपथ ब्राह्मण में भी इसका वर्णन मिलता है:—

स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी न रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्री-पुमांसौ सम्परिष्वक्तौ ।। ४ ।। स इममेवात्मानं द्वेधा पातयत्। ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां ततो मनुष्या अजायन्त ।।५।।

—शतपथ १४।४।२

अनु०—उस[प्रजापति] को अकेले में आनन्द नहीं आया इसीलिये संसार में भी लोगों को अकेले में अच्छा नहीं लगता। उसने दूसरे की कामना की, तब वह स्त्री पुरुष के मिले-जुले रूप के समान हो गया। इसके अनन्तर उसने अपने शरीर के दो भाग कर दिये। (दाहिना) भाग पुरुष तथा (बाँया) भाग स्त्री बना। इन दोनों से ही मनुष्य उत्पन्न हुए।

उपर्युक्त उद्धरणों से प्रकट है कि क़ुर्आन शरीफ़ के अनुसार हज़रत आदम पहले इन्सान हैं। उनके ही शरीर से 'हव्वा' उत्पन्न हुई। फिर इन दोनों से उत्पन्न सृष्टि (आदम की सन्तान) आदमी कहलाये। उसी प्रकार भारतीय ग्रंथों के अनुसार स्वायम्भुव मनु पहले मनुष्य हुए। उनके ही शरीर से शतरूपा उत्पन्न हुई। फिर इन दोनों से सारी मानव जाति उत्पन्न हुई। वे मनु से मानव (आदमी) कहलाये। दोनों मतों की समान संगति बैठती है।

कभी-कभी लोग यह कुटिल आक्षेप करते हैं कि आदम और हव्वा तथा मनु और शतरूपा में पिता-पुत्री का सम्बन्ध ठहरा; फिर उनसे सन्तान उत्पन्न होना अनैतिक है। वे यह भूल जाते हैं कि आदम से हव्वा और मनु से शतरूपा की उत्पत्ति मैथुनी नहीं है। इसलिए अमैथुनी अर्थात् दिव्य उत्पत्ति पर सांसारिक मैथुनी आचरण का लाञ्छन उचित नहीं।

---

§ सतयुग १७२८०००, त्रेता १२९६०००, द्वापर ८६४०००, और कलियुग ४३२०००—इस प्रकार एक चतुर्युगी होती है। ७१ चतुर्युगी का एक मन्वन्तर के अन्तर में प्रलय, और ऐसे ही १४ मन्वन्तरों का ब्रह्मा का एक दिन जिसके बाद महाप्रलय होती है। तब चन्द्र, सूर्य आदि सारी सृष्टि नष्ट हो जाती है। इतनी ही ब्रह्मा की एक रात्रि होती है। पश्चात् फिर दिन आरंभ होता है जिसमें पुनः १४ मन्वन्तर होते हैं। प्रथम मन्वन्तर का मनु स्वायंभुव मनु होता है। आजकल वैवस्वत मनु नामक सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है।

☞ 'वाणीसरोवर' की पृष्ठ-संख्या के क्रम को समझिए !

दूसरा वर्ष आरंभ हो जाने पर भी अब भी कभी-कभी 'वाणी-सरोवर' की पृष्ठ-संख्या को लेकर पाठकों के पत्र आ जाते हैं। 'वाणीसरोवर' के प्रत्येक अंक में पृष्ठ-संख्या आद्योपांत क्रम से नहीं होती। प्रत्येक ग्रन्थ के आठ-आठ पृष्ठ दिये गये हैं। अंक का टाँका (स्टिच) खोल देने पर प्रत्येक फ़ार्म (८ अथवा १६ पृष्ठ) अलग होकर सम्बन्धित ग्रन्थ में जोड़ा जा सकता है, और इस प्रकार फ़ार्मों को पृथक कर लेने पर कुछ समय में प्रत्येक ग्रंथ पूरा हो जायगा। (जुलाई, १९७१ के) प्रस्तुत अंक को ही लीजिए। इसमें 'सिर्रे अक्बर' पृष्ठ ११३ से आरंभ होकर १२८ पर समाप्त होने के बाद 'मलयाळम महाभारत' का पृष्ठ १२१ शुरू हो जाता है। इसके पहले अप्रैल, १९७१ के अंक में सिर्रे अक्बर पृष्ठ ९७ से ११२ तक प्रकाशित हुआ है। 'मलयाळम महाभारत' ७१ अप्रैल, में पृष्ठ १०५-१२०, प्रस्तुत जुलाई १९७१ में पृष्ठ १२१-१३६ और आगामी अंक अक्तूबर १९७१ में पृ० १३७-१५२ में प्रकाशित होगा। प्रत्येक ग्रंथ की पृष्ठ-संख्या का सम्बन्ध उसके पिछले और आगामी अंकों की पृष्ठ-संख्या से सम्बन्धित है। एक ग्रंथ की पृ० संख्या का किसी भी दूसरे ग्रंथ की पृ० संख्या से सम्बन्ध नहीं है।

—सम्पादक

सि० अ०—'जैसे सम्राट्, सामंत (सूबेदार) को आदेश देता है कि इस नगर का प्रशासक तू रह और उस नगर का प्रशासक तू रह, इसी प्रकार मुख्य प्राण समस्त ज्ञानेन्द्रियों को यत्र-तत्र आदेश देता है कि वे सर्वत्र अपना-अपना कार्य करें। [४]

'पायूपस्थेऽपानं; चक्षुःश्रोत्रे, मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते; मध्ये तु समानः। एष ह्येतद्धुतमन्नं समं नयति। तस्मादेताः सप्तार्चिषो[1] भवन्ति ॥५॥

अनु०—'पायु और उपस्थ में अपान है; मुख और नासिका के साथ नेत्र और श्रोत्र में प्राण स्वयं स्थित होता है; मध्य में तो समान रहता है। यह (समानवायु) ही खाये हुए अन्न को [पचा कर] सम कर देता है। उस से [दो नेत्र, दो कर्ण, दो नासारन्ध्र, और एक रसना] ये सात ज्वालाएँ फूटती हैं। (५)

सि० अ०—'[वह] अपान हो कर उन दोनों अवयवों (उपस्थ और पायु) में रहता है जो मूत्र और पुरीष के मार्ग हैं। चक्षु, श्रोत्र, नासिका, और मुख में प्राण स्वयं रहता है। [वह] आमाशय में समान होकर रहता है और भोजन को पचा कर समस्त शरीर में समान रूप से पहुँचा देता है। यही कारण है कि इस का नाम समान है। जब वह भोजन पच कर शरीर के अवयवों को पहुँचता है, तब सात स्थानों को शक्ति प्रदान करता और प्रकाशित करता है—दोनों चक्षु, दोनों श्रोत्र, दोनों नासिका-रंध्र, और मुख।[2] [५]

'हृदि ह्येष आत्मा। अत्रैतदेकशतं[3] नाडीनाम्। तासां शतं शतमेकैकस्यां, द्वासप्ततिर् द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि[4] भवन्ति। आसु व्यानश् चरति ॥६॥

अनु०—'हृदय में ही यह आत्मा है। इस (हृदयदेश) में वे एकसौ एक नाड़ियाँ हैं। उन में से एक-एक की सौ-सौ शाखाएँ हैं, [उन में भी प्रत्येक की] बहत्तर-बहत्तर सहस्र प्रतिशाखा-नाड़ियाँ हैं। इन में व्यान सञ्चरण करता है। (६)

---

१ मुण्डकोपनिषद् २.१.८ में उल्लिखित

२ 'सिरें अक्बर' के सम्पादक द्वारा यहाँ विराम-चिह्नों के प्रयोग में विशेष असावधानी हो गयी प्रतीत होती है, जिस से वाक्यार्थ अस्तव्यस्त हो जाता है। हिन्दी अनुवादक ने यह गड़बड़ी दूर करने की चेष्टा की है।

३ कठोपनिषद् २.३. १६; छान्दोग्योपनिषद् ८.६.६ में उल्लिखित

४ बृहदारण्यकोपनिषद् २.१.१९ में उल्लिखित

सि० अ०—'[वह] सूक्ष्म शरीर हो कर हृदय-कमल में [रहता है] जिस में एक सौ एक नाड़ियाँ निहित हैं, उन एक सौ एक नाड़ियों में से प्रत्येक नाड़ी में सौ-सौ अन्य (नाड़ियाँ) निहित हैं, और उन नाड़ियों में से प्रत्येक नाड़ी में अन्य नाड़ियाँ निहित हैं, जिन नाड़ियों की संयुक्त संख्या बहत्तर सहस्र नाड़ी तक पहुँचती है। व्यान वायु इन बहत्तर सहस्र नाड़ियों में संचार करता है। [६]

'अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति, पापेन पापम्, उभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥७॥

अनु०—'अस्तु, एक [नाड़ी सुषुम्ना[1]] द्वारा ऊपर की ओर उन्मुख उदान [वायु जीव को] पुण्य-कर्म के द्वारा पुण्यलोक को ले जाता है, पापकर्म के द्वारा पाप [लोक] को, [और पुण्य-पाप] दोनों [अर्थात् मिश्रित] कर्मों के द्वारा मनुष्यलोक को। (७)

सि० अ०—'उन एक सौ एक नाड़ियों में जो हृदय में निहित हैं एक महानाड़ी कण्ठ से चल कर मूर्धा तक पहुँचती है। प्राण उदान बन कर उस मार्ग से मूर्धा तक पहुँच कर मृत्यु के समय उसी मार्ग से उत्क्रमण कर जाता है। यदि [पुरुष ने] पुण्य कर्म किया है, तो पुण्य के भोग के लिए पुण्य लोकों को प्राप्त होता है; और यदि पाप किया है, तो प्राण पाप-फल भोगने के लिए उधर न पहुँच कर अन्य मार्गों से उत्क्रमण करता है, और कर्मानुसार अन्य लोकों को प्राप्त होता है। यदि उस पुरुष का पुण्य और पाप बराबर होता है, तो उस की वासना उस की संतान में आती है; ताकि उस की संतान से जो पुण्य-कर्म अनुष्ठित हों उन के द्वारा [वह] मोक्ष लाभ करे। अतः ऐसा पुरुष इसी लोक में बद्ध रहता है और यही लोक उस का लोक होता है। [७]

'आदित्यो ह वै बाह्यः प्राणः। उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्य, अन्तरा यदाकाशः स समानो, वायुर् व्यानः ॥८॥

अनु०—'निश्चय आदित्य ही बाह्य प्राण है। यही इस चाक्षुष (नेत्रेन्द्रियस्थित) प्राण पर अनुग्रह करता हुआ उदित होता है। पृथिवी में जो यह देवता है वह पुरुष के अपान [वायु] को धारण किये हुए है। इन के मध्य में जो आकाश है वह समान है, वायु व्यान है। (८)

सि० अ०—'बाह्य प्राण जो सूर्य है, आभ्यन्तर प्राण पर, जो चक्षु में निवास करता है, अनुग्रह करता हुआ उदित होता है, क्योंकि चक्षु का देवता सूर्य है। बाह्य

१ तुलनीय मैत्रायण्युपनिषद् ६.२१

अपान जो पृथ्वी का देवता है, आभ्यन्तर अपान को, जो दो विशिष्टि अवयवों (उपस्थ और पायु) में स्थित है, अनुगृहीत करता हुआ उस के अधिष्ठान पर दृष्टि रखता है। आकाश का देवता, जो बाह्य समान है, आभ्यन्तर समान पर, जो भोजन को पचा कर सम्पूर्ण शरीर में पहुँचा देता है, अनुग्रह करता हुआ उस के अधिष्ठान पर दृष्टि रखता है। वायु का देवता, जो बाह्य व्यान है, आभ्यन्तर व्यान पर अनुग्रह करता है। [८]

'तेजो ह वा उदानः। तस्मादुपशान्ततेजाः पुनर्भवमिन्द्रियैर् मनसि सम्पद्यमानैः ॥९॥

अनु०—'निश्चय तेज ही उदान है। अतः जिस का तेज शान्त हो जाता है वह मन में लीन हुई इन्द्रियों-सहित पुनर्जन्म को [प्राप्त होता है]। (९)

सि० अ०—'अग्नि का देवता जो बाह्य उदान है, आभ्यन्तर उदान पर अनुग्रह करता है। यही कारण है कि मृत्यु के समय उदान वायु जब उत्क्रमण करता है तो शरीर की नैसर्गिक उष्णता न्यून हो जाती है और मरण-काल में सभी इन्द्रियों की शक्तिआँ अपने-अपने अधिष्ठानों का त्याग कर हृदय में जमा हो जाती हैं। [९]

'यच्चित्तस् तेनैष प्राणमायाति। प्राणस् तेजसा युक्तः सहात्मना यथासंकल्पितं लोकं नयति ॥१०॥[1]

अनु०—इस का जैसा चित्त (संकल्प अथवा वासना) होता है उस से यह प्राण को प्राप्त होता है। प्राण तेज से युक्त हो [जीव को] आत्मा के सहित संकल्प किये हुए लोक को ले जाता है। (१०)

सि० अ०—[प्राण] हृदय से एकीभूत हो कर हृदय की वासना से, चाहे भली हो चाहे बुरी, उन लोकों में शरीर धारण करता है जो उस वासना के अनुरूप हैं। वही प्राण पुण्य और पाप कर्मों का फल भोगने के लिए उदान बन कर भोगलोक (परलोक) को प्राप्त कराता है। [१०]

'य एवं विद्वान् प्राणं वेद न हास्य प्रजा हीयते,ऽमृतो भवति। तदेष श्लोकः —॥११॥

अनु०—'जो विद्वान् प्राण को इस प्रकार जानता है निश्चय उस की सन्तान नष्ट नहीं होती, [वह] अमर हो जाता है। अतएव यह श्लोक है—(११)

सि० अ०—'जो कोई प्राण को जैसा वर्णित किया गया है जान लेता है उस की संतान का कदापि क्षय नहीं होता और वह स्वयं अमर हो जाता है। इस विषय में वेद-मंत्र भी साक्षी है जो यह है:—[११]

---

१ तुलनीय मुण्डकोपनिषद् ३.१.१०; गीता ८.६

' "उत्पत्तिमायतिं, स्थानं, विभुत्वं चैव पञ्चधा,
अध्यात्मं चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते,
विज्ञायामृतमश्नुते" इति' ॥१२॥

अनु०–' "प्राण की उत्पत्ति, आगमन, स्थिति, [वृत्ति-भेद से] पाँच प्रकार की व्यापकता, और अध्यात्म जान कर [मनुष्य] अमरत्व प्राप्त कर लेता है, जान कर अमरत्व प्राप्त कर लेता है।" ' (१२)

सि० अ०—' "जो कोई प्राण की पाँच वृत्तिओं को जान लेता है–जो हैं प्राण की उत्पत्ति, शरीर में प्राण का आगमन, शरीर में प्राण की अवस्थिति, [उस का] सभी इन्द्रियों में व्यापन, और [उस का] आत्मा की छाया होना—वह अमर हो जाताहै।" ' [१२]

॥ इति तृतीयः प्रश्नः ॥

चतुर्थः प्रश्नः

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ—'भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति ? कान्यस्मिञ् जाग्रति ? कतर एषः देवः स्वप्नान् पश्यति ? कस्यैतत् सुखं भवति ? कस्मिन्नु सर्वे संप्रतिष्ठिता भवन्ति ?' इति ॥१॥

अनु०–तदनन्तर उन (पिप्पलाद मुनि) से सूर्य के पौत्र गार्ग्य ने पूछा—'भगवन् ! इस पुरुष में कौन [इन्द्रियाँ] सोती हैं ? कौन इस में जागती हैं ? कौन देव स्वप्नों को देखता है ? किसे यह सुख होता है ? किस में सब प्रतिष्ठित हैं ?' (१)

सि० अ०—इस के पश्चात् सौर्यायणि ऋषीश्वर ने पिप्पलाद से पूछा—'हे भगवन् ! पुरुष के शरीर में कौन सोते हैं, कौन जागते हैं, कौन देवता है जो स्वप्न देखता है, सुखानुभव किसे होता है, और सब का आश्रय कौन है ?' [१]

तस्मै स होवाच—'यथा, गार्ग्य ! मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस् तेजोमण्डल एकीभवन्ति, ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति, एवं ह वै तत् सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति, न रसयते, न स्पृशते, नाभिवदते, नादत्ते, नानन्दयते, न विसृजते, नेयायते; स्वपितीत्याचक्षते ॥२॥

अनु०–तब उस से उन्हों ने कहा–'जिस प्रकार, हे गार्ग्य ! सूर्य के अस्त होने पर समस्त किरणें उस तेजोमण्डल में एकीभूत हो जाती हैं, और उस का उदय होने पर पुनः फैल जाती हैं, उसी प्रकार वह सब परम देव मन में एकीभूत हो जाता है। इस से तब वह पुरुष न सुनता है, न देखता है, न सूँघता है, न चखता है, न स्पर्श करता है, न बोलता है, न ग्रहण करता है, न आनन्द भोगता है, न मलोत्सर्ग करता है, न कोई चेष्टा करता है। [तब] कहते हैं, "सोता है"। (२)

सि० अ०––पिप्पलाद बोले—"हे सौर्यायणि ! जब सूर्य अस्त होता है तो उस की समस्त किरणें उस के मण्डल में लौट जाती है और फिर जब उदित होता है तो उस की समस्त किरणें जो उस के मण्डल में निहित रहती है, बहिर्गत हो कर फैल जाती हैं। इसी प्रकार सभी इन्द्रियाँ जमा हो कर मन में प्रविष्ट हो जाती हैं जो इन्द्रियों में श्रेष्ठ है। उस समय यह पुरुष कुछ नहीं सुनता, कुछ नहीं देखता, कुछ नहीं सूँघता, रसना से कोई रस नहीं लेता, कुछ स्पर्श नहीं करता, कुछ नहीं बोलता, हाथ से कुछ नहीं ग्रहण करता, मैथुन में कोई रस नहीं लेता, और मलमूत्र का उत्सर्ग नहीं करता। उस पुरुष को "स्वाप" कहते हैं, अर्थात् [इस ने] अपने को पा लिया है। [२]

'प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो, व्यानोऽन्वाहार्यपचनो, यद् गार्हपत्यात् प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥३॥

अनु०–'इस [शरीररूप] पुर में प्राणाग्नि ही जागते हैं। निश्चय यह अपान ही गार्हपत्य अग्नि है, व्यान अन्वाहार्यपचन (दक्षिणाग्नि) है, जो गार्हपत्य [अग्नि] से ले जाया जाता है वह प्राण प्रणयन (ले जाये जाने) के कारण आहवनीय अग्नि है। (३)

सि० अ०––'इस ब्रह्मपुर में जो कि देह है यही पाँच प्राण जागते रहते हैं जो पाँच वायु हैं और ज्योतिर्मय हैं––अपान एक अग्नि है, व्यान द्वितीय अग्नि है, और प्राण इन अग्निओं में श्रेष्ठ अग्नि है। [३]

'यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समं नयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमानः। इष्टफलमेवोदानः। स एनं यजमानमहरहर् ब्रह्म गमयति ॥४॥

अनु०–'जो इन उच्छ्वास- और निःश्वास- रूपी आहुतिओं को सम

रखता है वह समान। निश्चय मन ही यजमान है। इष्टफल ही उदान है। वह इस यजमान को नित्यप्रति ब्रह्म के पास पहुँचाता है। (४)

सि० अ०—'समान वह अग्नि है जिस में जो कुछ हवन करते हैं उसे वह भस्म कर देता है, अर्थात् भोजन का पाचक है, और अग्निहोत्र का उच्छ्वास और निःश्वास है जिसे अग्नि में हवन करते हैं, और हृदयरूपी यजमान है। अग्निहोत्र का फल उदान है, क्योंकि उदानवायु फल को हृदय में पहुँचाता है। वह फल यह है कि नित्य प्रति सुषुप्ति-काल में जो आनन्दपूर्ण निद्रा है मन को ब्रह्म तक पहुँचा देता है। [४]

'अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति—यद् दृष्टं दृष्टमनुपश्यति, श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति; देशदिगन्तरैश् च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति; दृष्टं चादृष्टं च, श्रुतं चाश्रुतं च, अनुभूतं चाननुभूतं च, सच् चासच् च सर्वं पश्यति; सर्वः पश्यति ॥५॥

अनु०—'इस [स्वप्नावस्था] में यह देव अपनी महिमा का अनुभव करता है। जिस से [वह] देखे-भाले को [ही] देखता है; सुनी-सुनी बातों को ही सुनता है; देश-देशान्तर में अनुभव किये हुए को ही पुनः - पुनः अनुभव करता है; देखे और बिना देखे, सुने और बिना सुने, अनुभव किये हुए और बिना अनुभव किये हुए, सत् और असत् सभी को देखता है; सर्वरूप हो कर देखता है। (५)

सि० अ०—'पुरुष जो मन में स्थित है और जो जीवात्मा है, स्वप्नावस्था में अपनी विभूति का दर्शन करता है, जो चाहता है उत्पन्न कर लेता है, जो कुछ जागरण में देखा हुआ होता है उसे स्वप्न में देखता है, जो कुछ जागरण में सुना हुआ होता है उसे स्वप्न में सुनता है, जो कुछ नगर में अथवा अन्यत्र देखा हुआ होता है और अनुभव किया हुआ होता है उसे पुनः देखता है। दृष्ट और अदृष्ट, श्रुत और अश्रुत, ज्ञात और अज्ञात, सत्य और असत्य—सब कुछ आप ही हो कर सब कुछ देखता है। चूंकि आत्मा समस्त कार्य करता है और सच्चा स्रष्टा है, [अतः] जीवात्मा भी जो अहंकार-द्वारा आत्मा से भिन्न हो गया है, स्वप्न में समस्त कार्य करता है और अपने स्वाभाविक स्वरूप का परित्याग नहीं करता। [५]

'स यदा तेजसाभिभूतो भवति, अत्रैष देवः स्वप्नान् न पश्यति। अथ तदैतस्मिन् शरीर एतत् सुखं भवति ॥६॥

अनु०—'जब यह तेज से अभिभूत होता है तब यह देव स्वप्न नहीं देखता। उस समय इस शरीर में यह सुख होता है। (६)

सि० अ०—'स्वप्नावस्था में [जीवात्मा] जिस समय एक नाड़ी से जिस का नाम पुरीतत् है, जिस से पित्त उत्पन्न होता है, और जिस में मन प्रवेश करता है, पित्त के स्खलन का मार्ग अवरुद्ध करता है, उस समय जीवात्मा कोई स्वप्न नहीं देखता; क्योंकि मन उस समय उस नाड़ी को बन्द कर देता है जो वासना का मार्ग है, और जब वासना-मार्ग बन्द हो गया तो स्वप्न नहीं देखता। जीवात्मा शरीर में उस समय आत्मा ही बन जाता है जो आनन्दस्वरूप है। [६]

'स यथा, सोम्य ! वयांसि वासोवृक्षं संप्रतिष्ठन्ते, एवं ह वै तत् सर्वं पर आत्मनि संप्रतिष्ठते—॥७॥

अनु०—'वह जिस प्रकार, हे सोम्य! पक्षी अपने बसेरे के वृक्ष पर बसेरा लेते हैं, निश्चय उसी प्रकार वह सब परम आत्मा में बसेरा लेता है—(७)

सि० अ०—'हे सोम्य ! जैसे सभी पक्षी वृक्ष के ऊपर विश्राम करते हैं जो उन के बसेरे का ठौर है, उसी प्रकार यह सब परमात्मा अर्थात् महानात्मा में स्थित हो कर विश्राम करते हैं जो जीवों का जीव है—[७]

'पृथिवी च पृथिवीमात्रा च, आपश् च, आपोमात्रा च, तेजश् च तेजोमात्रा च, वायुश् च वायुमात्रा च, आकाशश् चाकाशमात्रा च, चक्षुश् च द्रष्टव्यं च, श्रोत्रं च श्रोतव्यं च, घ्राणं च घ्रातव्यं च, रसश् च रसयितव्यं च, त्वक् च स्पर्शयितव्यं च, वाक् च वक्तव्यं च, हस्तौ चादातव्यं च, उपस्थश् चानन्दयितव्यं च, पायुश् च विसर्जयितव्यं च, पादौ च गन्तव्यं च, मनश् च मन्तव्यं च, बुद्धिश् च बोद्धव्यं च, अहङ्कारश् चाहङ्कर्तव्यं च, चित्तं च चेतयितव्यं च, तेजश् च विद्योतयितव्यं च, प्राणश् च विधारयितव्यं च ॥८॥

अनु०—पृथिवी और पृथिवी-मात्रा (गन्ध-तन्मात्रा), जल और जल-मात्रा (रस-तन्मात्रा), तेज और तेजोमात्रा (रूप-तन्मात्रा), वायु और वायु-मात्रा (स्पर्श-तन्मात्रा), आकाश और आकाश-मात्रा (शब्द-तन्मात्रा), नेत्र और द्रष्टव्य (रूप), श्रोत्र और श्रोतव्य (शब्द), घ्राण और घ्रातव्य (गन्ध), रसना और रसयितव्य (रस), त्वचा और स्पर्शयितव्य (स्पर्श-योग्य पदार्थ), वाक् और वक्तव्य, हस्त और ग्रहण करने योग्य पदार्थ, उपस्थ और भोग्य, पायु और मल, पाद और गन्तव्य स्थान, मन और मन का विषय, बुद्धि और बोद्धव्य, अहंकार और अहंकार का विषय, चित्त

और चित्त का विषय, तेज और प्रकाश्य पदार्थ, प्राण और धारण करने योग्य पदार्थ। (८)

सि० अ०—'स्थूल और उद्भूत पृथ्वी, स्थूल और उद्भूत जल, स्थूल और उद्भूत अग्नि, स्थूल और उद्भूत वायु, स्थूल और उद्भूत आकाश जो भूताकाश और हृदयाकाश है, चक्षु और जो कुछ दिखायी देता है, श्रोत्र और जो कुछ सुना जाता है, घ्राण और जो कुछ सूँघा जाता है, रस और जो कुछ चखा जाता है, स्पर्श और जिस का स्पर्श होता है, वाणी और जो कुछ बोला जाता है, हस्त और जो कुछ उस के द्वारा गृहीत होता है, पैर और स्थान जहाँ पैर से जाया जाय, पायु और मल, उपस्थ और उस का आनन्द, मन और मनोरथ, बुद्धि और बुद्धि का गुण, अहंकार और अहंकार का गुण जिसे अहं-अहं कहते हैं, चित्त और चित्त का गुण अर्थात् हृदय और हृदयवृत्ति, प्रकाशमान और प्रकाश, शक्ति और शक्ति की क्रिया—ये सब सुषुप्तिकाल में परमात्मा में विश्राम करते हैं। [८]

'एष हि द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता, बोद्धा, कर्ता, विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥९॥

अनु०—'यही द्रष्टा, स्प्रष्टा, श्रोता, घ्राता, रसयिता, मन्ता (मनन करने वाला), बोद्धा, कर्ता, विज्ञानात्मा पुरुष है। वह परम अक्षर (अक्षय) आत्मा में स्थित हो जाता है। (९)

सि० अ०—'वह परमात्मा इन सब का अधिष्ठान है। यही परमात्मा द्रष्टा है, स्रष्टा है, श्रोता है, घ्राता है, रसयिता है, मन की क्रियाओं का कर्ता है, बुद्धि की क्रियाओं का कर्ता है, कर्ता अर्थात् सर्वकर्ता है, विज्ञानात्मा है, और पुरुष है अर्थात् सब में "पुर" (पूर्ण, भरा हुआ) है। [९]

'परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते—यस् तु, सोम्य! स सर्वज्ञः सर्वो भवति। तदेष श्लोकः—॥१०॥

अनु०—'वह परम अक्षर को ही प्राप्त होता है जो कोई इस छायाहीन, अशरीरी, अलोहित, शुभ्र अक्षर को जानता है—जो भी, हे सोम्य! वह सर्वज्ञ [हो कर] सर्वरूप हो जाता है। अतएव यह श्लोक है—(१०)

सि० अ०—'इस आत्मा के छाया नहीं, शरीर नहीं, रंग नहीं। [वह] पवित्र सूक्ष्म, और शुद्ध है। [इसे] जो कोई इस प्रकार जानता है वह सर्वज्ञ और सर्वरूप हो जाता है। वेद-मंत्र में इसी अर्थ के अनुसार [आता] है, कि—[१०]

' "विज्ञानात्मा सह देवैश् च सर्वैः,
प्राणा, भूतानि संप्रतिष्ठन्ति यत्र
तदक्षरं वेदयते यस् तु, सोम्य !
स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेश" इति' ॥११॥

अनु०–' "हे सोम्य ! जिस में समस्त देवों सहित विज्ञानात्मा, प्राण, और भूत सम्यक् प्रकार से स्थित होते हैं उस अक्षर को जो जानता है उस सर्वज्ञ की सभी में गति हो जाती है।" ' (११)

सि० अ०—' "यह आत्मा विज्ञानात्मा है। जीवात्मा और समस्त ज्ञानेन्द्रियाँ और उन के देवता और विषय उसी तत्त्व में लीन हो जाते हैं। हे सोम्य ! जो कोई उस तत्त्व को जान लेता है वह सर्वज्ञ हो जाता है, सर्वात्मा हो जाता है।" ' [११]

॥ इति चतुर्थः प्रश्नः ॥

पञ्चमः प्रश्नः

अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ—'स यो ह वै तद्, भगवन्! मनुष्येषु प्रायणान्तमोङ्कारमभिध्यायीत कतमं वाव स तेन लोकं जयति ?' इति ॥१॥

अनु०–तदनन्तर उन से शिबिपुत्र सत्यकाम ने पूछा–'भगवन् ! मनुष्यों में जो प्राणप्रयाणपर्यन्त इस ओंकार का चिन्तन करे, वह उस से किस लोक को जीत लेता है ?' (१)

सि० अ०—इस के अनन्तर सत्यकाम नामक ऋषीश्वर ने पिप्पलाद से पूछा—'हे भगवन् ! सभी मनुष्यों में से जो मरणकालपर्यन्त प्रणव अर्थात् ओम् का ध्यान करता है, वह ध्यान के द्वारा किस लोक को प्राप्त करता है ?' [१]

तस्मै स होवाच—'एतद् वै, सत्यकाम! परं चापरं च ब्रह्म[1] यदोङ्कारः। तस्माद् विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥२॥

अनु०–उस से उन्हों ने कहा–'निश्चय, हे सत्यकाम ! यह जो ओंकार है वही पर (निर्गुण) और अपर (सगुण) ब्रह्म है। अतः विद्वान् इसी के आश्रय से किसी एक [ब्रह्म] को प्राप्त हो जाता है। (२)

सि० अ०—पिप्पलाद बोले–'हे सत्यकाम ! यही नाम पर ब्रह्म और अपर ब्रह्म,

अर्थात् निर्विशेष (निर्गुण) और सविशेष (सगुण)[१], है। इस नाम को जानने वाला और इस नाम की साधना करने वाला इसी नाम के ध्यान से इन निर्विशेष और सविशेष दो तत्त्वों में से एक को प्राप्त करता है। [२]

'स यद्येकमात्रमभिध्यायीत, स तेनैव संवेदितस् तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते। तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते। स तत्र तपसा, ब्रह्मचर्येण, श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥३॥

अनु०—'वह यदि [ओंकार की] एक मात्रा (अ) का ध्यान करता है तो उसी से बोधयुक्त होकर तुरंत ही संसार को प्राप्त हो जाता है। उसे ऋचाएँ मनुष्यलोक में ले जाती हैं। वह वहाँ तप, ब्रह्मचर्य, और श्रद्धा से सम्पन्न हो कर महिमा का अनुभव करता है। (३)

सि० अ०—'यह नाम साढ़े तीन मात्राएँ रखता है, अर्थात् इस में साढ़े तीन अक्षर होते हैं। यदि [उपासक] इस महाशब्द (प्रणव) की एक मात्रा से उपासना करे तो इस उपासना के पुण्य से ऋग्वेद उसे इसी लोक में भोगों से विरक्ति, तप, श्रद्धा, और सन्मार्ग प्राप्त करा देता है और वह पुरुष मनुष्यों में महिमा प्राप्त कर लेता है। [३]

'अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते, सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकम्, सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥४॥

अनु०—'और यदि वह [ओंकार की] दो मात्राओं (अ+उ) से मन में समाहित होता है, तो उसे यजुःश्रुतिआँ सोम-लोक में ले जाती हैं, [और] सोमलोक में विभूति का अनुभव कर वह फिर लौट आता है। (४)

सि० अ०—'यदि [उपासक] इस महाशब्द की दो मात्राओं से उपासना करे तो इस उपासना के पुण्य से यजुर्वेद उसे आकाश और पृथ्वी से परे ले जा कर, चन्द्रलोक में पहुँचा कर, और उस लोक में महिमान्वित कर दूसरे लोक में पहुँचा देता है। [४]

'यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत, स तेजसि सूर्ये संपन्नः। यथा पादोदरस् त्वचा विनिर्मुच्यत, एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः। स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकम्। स एतस्माज् जीवघनात् परात् परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। तदेतौ श्लोकौ भवतः—॥५॥

अनु०—'जो पुनः [ओंकार की] तीन मात्राओं (अ+उ+म्) से ॐ इस

१ मुण्डकोपनिषद् १.१.४ के परा और अपरा विद्या के विभाग से तुलनीय

अक्षर द्वारा इस परम पुरुष की उपासना करता है वह तेजोमय सूर्य [लोक] को प्राप्त होता है। जिस प्रकार सर्प केंचुली से निकल आता है उसी प्रकार वह पापों से मुक्त हो जाता है। वह सामश्रुतिओं द्वारा ब्रह्मलोक में ले जाया जाता है। वह इस जीवघन से ऊँचे से ऊँचे, हृदय में स्थित, परम पुरुष का साक्षात्कार करता है। अतएव ये दो श्लोक हैं—(५)

सि० अ०—'यदि [उपासक] तीन मात्राओं से इस महाशब्द की उपासना करे तो उसे सामवेद इस नाम के पुण्य से तेजोलोक ले जा कर और वहाँ ऐश्वर्य और महिमा प्रदान कर दूसरे लोक में पहुँचा देता है। यदि [उपासक] इस महाशब्द की पूरी साढ़े तीन मात्राओं से उपासना करता है तो इस महाशब्द के पुण्य से इस नाम का उपासक महाज्योति को प्राप्त करता है। जैसे सर्प केंचुल को त्याग कर केंचुल से पृथक् हो जाता है, उसी प्रकार इस महाशब्द का साधक पापों से निकल आता है। अथर्ववेद उसे ब्रह्मलोक को प्राप्त करा देता है, जहाँ [वह] जीवघन को प्राप्त कर जीवों के जीव को देखता है जो सभी शरीरों में पूर्ण है, अर्थात् परब्रह्म हो जाता है। ये [दो] वेद-मंत्र इस में प्रमाण हैं–[५]

' "तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः[1], प्रयुक्ता,
अन्योन्यसक्ता, अनविप्रयुक्ताः।
क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु
सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥६॥

अनु०–' "[ओंकार की] तीनों मात्राएँ मृत्युयुक्त, संयुक्त, परस्पर सम्बद्ध, तथा अपृथक्सिद्ध हैं। बाह्य, आभ्यन्तर, और मध्यम क्रियाओं में [उन के] सम्यक् प्रयोग से ज्ञाता पुरुष विचलित नहीं होता। (६)

सि० अ०—' "साधक ने इस नाम से तीन मात्राओं तक ध्यान किया है, जो पृथक् भी हैं और संयुक्त भी। उस साधक पर मृत्यु का वश नहीं चलता। इस महाशब्द की साधना तीन प्रकार की है। प्रथम, जिह्वा से ऊँची ध्वनि करना, जो दूसरे को सुनायी दे। यह आरंभिक जपयोग का स्थान है। द्वितीय, जिह्वा से धीमी ध्वनि करना, जिसे स्वयं सुने और दूसरा न सुने। यह मध्यम जपयोग का स्थान है। तृतीय, जिह्वा से बोले बिना और जिह्वा हिलाये बिना मन से बोला जाय। यह उत्तम जपयोग का स्थान है। जो कोई इस साधना का ज्ञाता है और सदा इस उपासना का अनुष्ठान करता है और कुछ दिन कर के छोड़ देता है वह उपासक इस उपासना के पुण्य से निश्चल हो जाता है। [६]

---

१ अगली टिप्पणी देखिए।

'"ऋग्भिरेतं, यजुर्भिरन्तरिक्षं,
सामभिर् यत् तत् कवयो वेदयन्ते ।
तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्
यत् तच्छान्तमजरममृतमभयं परं" इति' ॥७॥

अनु०–'"[साधक] ऋग्वेद द्वारा इस (पृथिवी-लोक) को, यजुर्वेद द्वारा अन्तरिक्ष को, और सामवेद द्वारा जिस [लोक] को [प्राप्त होता है] उसे क्रान्तदर्शी [पुरुष] जानते हैं [अर्थात् द्यो-लोक को][1]। उस ओंकाररूप आलम्बन के द्वारा ही विद्वान् जिस लोक को प्राप्त होता है वह शान्त, अजर, अमर, अभय, एवं परम (श्रेष्ठ) है।"' (७)

सि० अ०—'"ऋग्वेद उसे इस पृथ्वीलोक में महिमा प्रदान करता है, यजुर्वेद उसे चन्द्रलोक में महिमा प्रदान करता है, सामवेद उसे सूर्यलोक में महिमा प्रदान करता है। ज्ञानी और महात्माओं ने ऐसा कहा है—जो कोई पूरी साढ़े तीन मात्राओं से इस महाशब्द की उपासना करता है वह उपासक हिरण्यगर्भ-लोक को प्राप्त कर, ज्ञानी हो कर, उस तत्त्व को पा लेता है जिसे जरा नहीं आती, जिस की मृत्यु नहीं होती, जिस का क्षय नहीं होता, और जिसे भय नहीं होता। वह पर भी है, वह अपर भी है। अर्थात् वह निर्विशेष भी है, वह सविशेष भी है।"' [७]

॥ इति पञ्चमः प्रश्नः ॥

षष्ठः प्रश्नः

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ—'भगवन् ! हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत—"षोडशकलं, भारद्वाज ! पुरुषं वेत्थ ?" तमहं कुमारमब्रुवं—"नाहमिमं वेद। यद्यहमिममवेदिषं, कथं ते नावक्ष्यमिति ? समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति। तस्मान् नार्हाम्यनृतं वक्तुम्।" स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज। तं त्वा पृच्छामि, क्वासौ पुरुष इति ?' ॥१॥

---

१ तुलनीय बृहदारण्यकोपनिषद् १.५.४-५, जिस में ऋग्वेद का सम्बन्ध पृथिवी, यजुर्वेद का अन्तरिक्ष, और सामवेद का द्यो-लोक से बतलाया गया है। ये तीनों लोक विनाशी हैं, अविनाशी ब्रह्मलोक है जो ओङ्कार की साधना से प्राप्य है। प्रसंगतः,

अनु०—तदनन्तर उन (पिप्पलाद से) भरद्वाज के पुत्र सुकेशा ने पूछा—'भगवन् ! कोसलदेश के राजकुमार हिरण्यनाभ ने मेरे पास आ कर यह प्रश्न पूछा था—"भारद्वाज ! क्या तू सोलह कलाओं वाले पुरुष को जानता है ?" मैं ने उस कुमार से कहा—"मैं इसे नहीं जानता। यदि मैं इसे जानता होता, तो तुझे क्यों न बतलाता ? जो मिथ्या-भाषण करता है वह मूलसहित सूख जाता है। अतः मैं मिथ्या-भाषण नहीं कर सकता।" वह चुपचाप रथ पर चढ़ कर चला गया। सो अब मैं आप से पूछता हूँ, वह पुरुष कहाँ है ?' (१)

सि० अ०—इस के अनन्तर उस सुकेशा ऋषीश्वर ने पिप्पलाद से पूछा—'हे भगवन् ! कोसल के राजकुमार हिरण्यनाभ ने आ कर मुझ से प्रश्न किया, "हे भारद्वाज ! क्या तू उस पुरुष को जानता है जिस पुरुष में सोलह कलाएँ हैं ?" मैं ने उत्तर दिया, "मैं उस पुरुष को नहीं जानता; यदि उस पुरुष को जानता तो तुझे क्यों न बतलाता ? वृद्धों ने कहा है कि जो मिथ्या-भाषण करता है वह जड़ से सूख जाता है। अतः मैं तुझ से झूठ क्यों बोलूँ ?" वह राजकुमार यह उत्तर सुन कर और कुछ कहे बिना रथ पर सवार हो चल दिया। हे पिप्पलाद ! मैं आप से पूछता हूँ कि वह पुरुष कहाँ है ?'[१]

तस्मै स होवाच—'इहैवान्तःशरीरे, सोम्य ! स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः[१] प्रभवन्ति' इति ॥२॥

अनु०—उस से उन्हों (पिप्पलाद) ने कहा—'इसी शरीर के भीतर, हे सोम्य ! वह पुरुष वर्तमान है जिस में इन सोलह कलाओं का प्रदुर्भाव होता है'। (२)

सि० अ०—पिप्पलाद उस से बोले—'हे सोम्य ! वह पुरुष इसी शरीर के भीतर वर्त्तमान है। वह पुरुष जिस में सोलह कलाएँ होती हैं, वह उसी में प्रादुर्भूत होता है। [२]

तैत्तिरीयोपनिषद् १.५.२ में क्रम का विपर्यय हो कर यजुर्वेद का सम्बन्ध द्यो-लोक से और सामवेद का अन्तरिक्ष से हो गया है।

शंकर ने द्यो-लोक को एकदम उड़ा दिया है, और सामवेद का सम्बन्ध ब्रह्मलोक से स्थापित कर दिया है, जो वैदिक त्रिलोकी का स्वरूप ध्यान से उतर जाने के कारण हुआ है। दाराशिकोह को मंत्र के वास्तविक अर्थ की पकड़ का श्रेय प्राप्त है।

१ आगे, मंत्र ४ में, परिगणित, जिस की टिप्पणी भी द्रष्टव्य है।

'स ईक्षां चक्रे—"कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि, कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामि ?" इति ॥३॥

अनु०—'उस ने विचार किया—"किस के उत्क्रमण करने पर मैं उत्क्रमण कर जाऊँगा, और किस के स्थित रहने पर मैं स्थित रहूँगा ?" (३)

सि० अ०—'उस पुरुष के मन में आया कि इन सोलह कलाओं के मध्य किस कला की प्रतिष्ठा से प्रतिष्ठित होऊँ और किस के उत्क्रमण से उत्क्रमण कर जाऊँ। [३]

'स प्राणमसृजत; प्राणाच्छ्रद्धां, खं, वायुर्, ज्योतिरापः, पृथिवीन्द्रियं, मनो, ऽन्नम्; अन्नाद् वीर्यं, तपो, मन्त्राः, कर्म, लोका, लोकेषु नाम च ॥४॥[1]

अनु०—'उस ने प्राण को रचा; प्राण से श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, [और] अन्न को; [तथा] अन्न से वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, और लोकों को, एवं लोकों में नाम को। (४)

सि० अ०—'अतः [उस ने] उस पुरुष से प्राण को रचा। प्राण से यहाँ हिरण्यगर्भ अभिप्रेत है। [उस ने] प्राण से श्रद्धा को उत्पन्न किया, श्रद्धा से भूताकाश को उत्पन्न किया, भूताकाश से वायु को उत्पन्न किया, वायु से अग्नि को उत्पन्न किया, अग्नि से जल को उत्पन्न किया, जल से पृथ्वी को उत्पन्न किया, पृथ्वी से समस्त ज्ञानेन्द्रियों को उत्पन्न किया, इन्द्रियों से मन को उत्पन्न किया, मन से अन्न को उत्पन्न किया, अन्न से वीर्य को उत्पन्न किया, वीर्य से तप को उत्पन्न किया, तप से कर्म को उत्पन्न किया, और कर्म से नाम और रूप को उत्पन्न किया। [४]

'स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति, भिद्येते तासां नामरूपे, समुद्र इत्येवं प्रोच्यते; एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडश कलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति, भिद्येते चासां नामरूपे, पुरुष इत्येवं प्रोच्यते। स एषोऽकलोऽमृतो भवति। तदेष श्लोकः—॥५॥

अनु०—'वह [दृष्टान्त] इस प्रकार है—जिस प्रकार बहती हुई ये नदियाँ समुद्र को प्राप्त हो कर अस्त हो जाती हैं, उन के नाम-रूप नष्ट

---

१ ये ही मंत्र ४ में उल्लिखित षोडश कलाएँ हैं। तुलनीय—मुण्डकोपनिषद् ३.२.७; बृहदारण्यकोपनिषद् १.५.१४,१५ अथवा शतपथब्राह्मण १०.४.१.१७; छान्दोग्योपनिषद् ६.७; यजुर्वेद (वाजसनेयी संहिता) ८.३६

हो जाते हैं, और वे "समुद्र" ऐसा कह कर पुकारी जाती हैं; उसी प्रकार इस सर्वद्रष्टा की ये पुरुष में बसने वाली सोलह कलाएँ उस पुरुष को प्राप्त हो कर लीन हो जाती हैं, उन के नाम-रूप नष्ट हो जाते हैं, और वे "पुरुष" ऐसा कह कर पुकारी जाती हैं। वह कलाहीन और अमर हो जाता है। अतएव यह श्लोक है–(५)

सि० अ०—'अतएव समस्त नदियाँ विशाल समुद्र से निकलती हैं,[1] नाम और रूप ग्रहण करती हैं, और फिर नाम और रूप का परित्याग कर और विशाल समुद्र में प्रविष्ट हो विशाल समुद्र बन जाती हैं। इसी प्रकार ये सोलह कलाएँ जीवात्मा से प्रादुर्भूत होती हैं जो सर्वद्रष्टा है, उसी में रहती हैं, उसी में लीन होती हैं, और जब लीन होती हैं तब उन के नाम और रूप जीवात्मा में लीन हो जाते हैं। उस समय जीवात्मा को पुरुष कहा जाता है, क्योंकि सभी उस में "पुर" (पूर्ण) हो जाते हैं। जब वे सोलह कलाएँ अस्त हो जाती हैं तो जीवात्मा आत्मा हो जाता है। [वह] उस समय अमर हो जाता है, क्योंकि [वह] सोलह कलाओं के बन्धन से मुक्त हो जाता है। इन सोलह कलाओं का तात्पर्य है पाँच बाह्य ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच आभ्यन्तर ज्ञानेन्द्रियाँ, पंच महाभूत, और एक मन जो सोलहों कलाओं का योग होता है। जब तक ये सोलह तत्त्व पुरुष में रहते हैं तब तक वह विदेहमुक्त रहता है; अर्थात्, बिना ज्ञान और एकात्मभाव के जिन से इस शरीर के होते हुए जीवन्मुक्त हो जाता है, शरीर से मुक्ति नहीं प्राप्त करता। [५]

'"अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः
तं वेद्यं पुरुषं वेद, यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा" इति' ॥६॥

अनु०–' "जिस में, रथ की नाभि में अरों के समान, कलाएँ स्थित हैं उस ज्ञातव्य पुरुष को जानो, जिस से मृत्यु तुम्हें कष्ट न पहुँचा सके।" ' (६)

सि० अ०—'इस विषय में यह वेद मंत्र भी प्रमाण है[2]—"जिस प्रकार रथ के अरे रथ की नाभि में स्थित हैं, उसी प्रकार ये सोलह कलाएँ पुरुष में सुदृढ़ और आबद्ध

१ दाराशिकोह ने यहाँ मंत्रस्थ 'समुद्रायण' शब्द का अर्थ सीधे-सीधे 'समुद्र जिस का घर है' ऐसा किया है। शंकर के अनुसार इस का अर्थ है—'समुद्रायणाः समुद्रोऽयनं गतिः आत्मभावो यासां ताः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्योपगम्यास्तं नामरूपतिरस्कारं गच्छन्ति' अर्थात् 'समुद्र जिस की गति अर्थात् आत्मभाव हो, अथवा समुद्र को प्राप्त हो कर अस्त अर्थात् नाम रूप को खो देने वाली'।

२ यह वाक्य मूलतः मंत्र ५ का समापन-वाक्य है, जिसे दाराशिकोह ने मंत्र ६ का आरम्भण वाक्य बना दिया है।

हैं, जो वह आत्मा है। यदि इस पुरुष को जान लिया जो जानने योग्य है, तो तुम्हें मृत्यु का कष्ट नहीं होगा।" ' [६]

तान् होवाच—'एतावदेवाहमेतत् परं ब्रह्म वेद। नातः परमस्ति' इति ॥७॥

अनु०—कहते हैं कि उन से [पिप्पलाद मुनि ने] कहा—'इस परब्रह्म को मैं इतना ही जानता हूँ। इस (ब्रह्म) से बड़ा अन्य कुछ नहीं है।' (७)

सि० अ०—यह बात पिप्पलाद ने अपने शिष्यों से कही कि 'मैं परब्रह्म को इतना ही जानता हूँ और इस से अधिक ज्ञातव्य नहीं है।' [७]

ते तमर्चयन्त—'त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसि' इति। नमः परमऋषिभ्यो, नमः परमऋषिभ्यः ॥८॥

उन्हों ने उन की पूजा (स्तुति) की—'आप तो हमारे पिता हैं जिन्हों ने हमें अविद्या के उस पार पहुँचा दिया है।' परमर्षिओं को हमारा नमस्कार, परमर्षिओं को हमारा नमस्कार। (८)

सि० अ०—समस्त शिष्यों ने यह बात सुनकर पिप्पलाद की पूजा की और कहा कि 'आप हमारे मान्य हैं और हमारे पितृतुल्य हैं, क्योंकि [आप ने हमें] इस अविद्या के सागर से जो अज्ञान है, पार कर के दूसरे किनारे पर पहुंचा दिया।'

महाज्ञानियों को नमस्कार! महाज्ञानियों को नमस्कार!! अर्थात् ब्रह्मनिष्ठ महात्माओं को दो बार प्रणाम। [८]

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा! भद्रं पश्येमाक्षभिर् यजत्राः,
स्थिरैरङ्गैस् तुष्टुवांसस् तनूभिर् व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः,
स्वस्ति नस् तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर् दधातु।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

॥ इति प्रश्नोपनिषत् समाप्ता ॥

अन्तमिल्लात दधीचन् तपस्सिनॉ-
रन्तरं आन् वरुत्तीटुकयिल्लॅटो । ३२
शान्तबुद्ध्या पुनरित्थं पऱ्ञ्ञुटन्
चॅन्तामराक्षप्रियनां महाबलन् ३३
तूवलिलॉन्नु पऱिच्चॅऱिञ्ञीटिनान्
देवेन्द्रनाय्कॉण्टु पक्षिकुलेश्वरन् ३४
इन्द्रन् पवनाशनाशनन्तन्नोटु
मन्दस्मितं चॅय्तु चॉल्लिनानन्तरम् ३५
सख्यमिनि नम्मिलुण्टायिरिक्कणम्
विक्रमं तावकं केळ्प्पिक्कयु वेणम् । ३६
अप्पोळमराधिपनोटु चॉल्लिना-
नल्पसारज्ञ ! जळप्रभो! केळ्क्क नी । ३७
आत्मप्रशंस मरणाल्परमॅन्न-
तात्माविलुण्टॅन्निरिक्किलुं चॉल्लुवन् । ३८
सख्यमुण्टाकयालल्लाय्किल् निन्नुटॅ
धिक्कारवुं पोकयिल्लॅन्नु निर्ण्णयम् । ३९
दुर्ब्बोधमुळ्ळवरोटु चॉल्लाय्किलो
सल्ब्बोधमुण्टाकयिल्लवर्क्कॅन्नुमे । ४०
सप्ताचलङ्ङळुं सप्तांबुधिकळुं
सप्तद्वीपान्वितसप्तलोकङ्ङळुं ४१

दधीचि जैसों के अनन्त तप में मैं कभी विघ्न नहीं पैदा करूँगा"। शान्त-बुद्धि के साथ इस प्रकार कहने के बाद पद्मलोचन (विष्णु) के प्रिय महाबल गरुड़ ने अपने पंख की एक तूलिका (रोयाँ) निकाल कर देवेन्द्र के ऊपर फेंक दिया। तब इन्द्र मन्द मुस्कान के साथ पवनाशनाशन[1] (गरुड) से बोले—"अब भविष्य में हम दोनों की दोस्ती होनी चाहिए और [अब तुम अन्य] अपने विक्रमों को भी सुनाओ।" २८-३६ तब गरुण ने अमराधिप (इन्द्र) से कहा—"हे अल्पसारज्ञ! जड़प्रभो! सुन लो! यद्यपि जानता हूँ कि आत्म-प्रशंसा करना मरण से भी निकृष्ट है, फिर भी दोस्ती हो जाने के कारण मैं कह दूँगा; नहीं तो अवश्य तुम्हारा धिक्कार समाप्त नहीं होगा। जिन्होंने ग़लत समझ रखा हो उनको अगर न बतला दिया जाय तो उनका सद्बोध कभी नहीं होगा। सातों

१ हवा पान करनेवाले सर्पों के नाशक।

पक्षपुटंकॊण्टॆटुत्तु पऱप्पॊरु-
पक्षिप्रवरनॆन्नॆन्नॆयऱिक नी । ४२
अप्पोळनुनयमोटु शतक्रतु
सल्पक्षियॆ प्रतिमानिच्चु चॊल्लिनान् । ४३
इत्रयॆल्लां महत्त्वं वळरुं भवा-
नब्धिजमाममृतं कॊण्टु किं फलम् ? ४४
माताविनुळ्ळॊरु दास्यमॊळिक्कॆन्नि-
येतुमिनिक्किल्लितिलॊरु कांक्षितम् । ४५
मातृदास्यमितुकॊण्टु वीण्टाल् पुन-
रादरवोटुमिनिक्कु तरेणं नी । ४६
वेण्टुं वरं तरुन्नुण्टु आनॆन्नोटु-
वेण्टा विरोधवुमिन्नुतॊट्टिन्निमेल् । ४७
इत्तरं वाक्कुकळ् केट्टु गरुडनुं
चित्तमोदाल् मरुत्वानोटु चॊल्लिनान् । ४८
शक्र ! शतक्रतो ! विक्रमवारिधे !
चक्रायुधपदभक्तजनोत्तम ! ४९
चक्रिकळाकिय दुष्कृतजन्तुक्कळ्
वक्रशीलाकृतियुळ्ळवर् मिक्कतुं ५०
दुःखं जगद्वासिकळ्क्कु वरुत्तुवो-
रक्षमन्माराय चक्षुःश्रवणन्मार् ५१

पर्वतों, सातों समुद्रों और सातों द्वीपों सहित सातों लोकों को अपने पक्ष-पुट में लेकर उड़ने की शक्तिवाला मैं एक मात्र पक्षिप्रवर हूँ, यह समझ लो"। ३७-४२ यह सुनकर शतक्रतु (इन्द्र) ने अनुनय के साथ पक्षि-प्रवर का सम्मान करके कहा–"इतने महत्वबाले तुमको सागर से निकले अमृत से क्या प्रयोजन है ?" (गरुड ने उत्तर दिया—) "अपनी माता को दास्य से मुक्त कराने के अलावा मेरा इसमें कोई प्रयोजन नहीं है"। (तब इन्द्र ने कहा—) "तो फिर जब माता का दास्य हट जायगा तब इसे मुझे सादर वापस कर देना। तुम्हें यथेष्ट वर दे दूँगा, आज से मुझ से विरोध करने की आवश्यकता नहीं है"। ४३-४७ इस प्रकार की बातें सुनकर गरुड ने प्रमोद (प्रसन्नता) के साथ मरुत्वान् (इन्द्र) से कहा– "हे शक्र !, हे शतक्रतु ! हे विक्रमसागर ! हे चक्रायुध (विष्णु) के चरण-भक्तों में श्रेष्ठ ! ये जो चक्री (सर्प), पाप करने वाले जन्तु, वक्र शील

पक्षीशनां मम भक्षणमाकणं
रक्ष भूवासिकळ्क्कुण्टाकुवान् विभो ! ५२
ऍल्लां निनक्कॉत्तवण्णं वरिकॅन्नु
नल्ल वरङ्ङळ् कॉटुत्तु महेन्द्रनुम् । ५३
जंभारियुं कूटॅप्पिन्पे नटकॉण्टान्
वन्पनां तार्क्ष्यनुं नागालयं पुक्कान् । ५४
कण्टुकॉण्टालुममृतुं कलशवुं
कॉण्टुवन्नेनमरन्मारॅ वॅन्नु ञान् ५५
शास्यमायुळ्ळतिनियुमुण्टो बहु-
लास्योत्तमन्मारॅ ! साद्ध्यमिनिक्कॅल्लाम् । ५६
दास्यमॉळिप्पतिनॅन्तिनि वेण्टतु
हास्यमल्ल पऱयुन्नतऱिञ्ञालुम् । ५७
एतुमितिल्परमॅन्तिनि वेण्टतु
साधिच्चितु ञङ्ङळ् चिन्तिच्चतॅल्लामे । ५८
इप्पोळ्त्तुटङ्ङीट्टॉळिञ्ञितु दास्यवु-
मद्भुतविक्रम पक्षिकुलोत्तम ! ५९
दर्भं विरिच्चु सुधाकलशं वच्चु
सर्प्पेन्द्रवृन्दं कुळिप्पान् पुऱप्पॅट्टु । ६०

और वक्र आकृति वाले, अधिकांश जगत्-निवासियों को दुःख देनेवाले, क्षमा-रहित चक्षुःश्रवण (आँख के द्वारा सुनने वाले सर्प) हैं, वे मुझ पक्षीश के आहार हो जायँ, ताकि पृथिवी-निवासियों की रक्षा हो जाय"। सब ऐसा ही हो जैसा तुम चाहते हो"—यह कहकर महेन्द्र ने अच्छे वर दिये। ४८-५३ जंभारि (इन्द्र) वापस चले गये और शक्तिशाली तार्क्ष्य (गरुड) नागालय को रवाना हुआ। (वहाँ पहुँचकर) बोला—"अमृत और कलश देख लो! देवों को मारकर मैं छीन लाया हूँ। हे बहुलास्योत्तम (अनेक-मुँहवाले सर्पो!) और कोई आज्ञा है? मेरे लिए सब साध्य है। दास्य हटाने के लिए अब और क्या चाहिए? जान लो कि मैं हँसी नहीं कर रहा हूँ।" (सर्पों ने कहा—) "अब इसके अलावा और क्या चाहिए? हम लोगों की सब इच्छा पूरी हो गयी, आज से लेकर दास्य भी हट गया हे अद्भुतविक्रम! पक्षिकुलोत्तम!" फिर दर्भ[1] बिछाकर उस पर अमृतकलश रख दिया गया; और सारा सर्पेन्द्र-वृन्द[2] स्नान करने चला।

१ कुश। २ सापों का झुण्ड।

आचमनाद्यनुष्ठानङ्ङळुं कळि-
च्चाशीविषन्मार् वरुन्नतिन्मुन्नमे ६१
आशु पीयूषकलशमॅटुत्तुकॉ-
ण्टाशुगवेगाल् मऱ्ऱञ्ञु महेन्द्रनुम् । ६२
वञ्चितन्माराय नागङ्ङळुममृ-
ताञ्चितमाय धरातलं नोक्किनार् ६३
कुञ्चितग्रीवन्मारायवरॉक्कवे
सञ्चितदर्भान्वितस्थलं नक्किनार् ६४
दर्भासिधारया रण्टाय् चमञ्ञितु
सर्प्पकुलत्तिनु जिह्वयुमक्कालम् । ६५
इक्कथ चॉल्कयुं केळ्क्कयुं चॅय्वोर्क्कु
दुःखमकन्तु गतिवरिकॅन्नतुं ६६
पक्षिकुलोत्तमनतानरुळिच्चॅय्तु
पक्षभेदमितिनिल्लॉरुवर्क्कुमे । ६७

सर्प्पङ्ङळुटॅ पेरुं प्रकृतवुम्

सूतनीवण्णं पऱ्ञ्ञतु केट्टति-
मोदं कलर्न्नॉरु शौनकन् चोदिच्चु । १
कद्रुविनादियिलुण्टाय पुत्रन्मा-
रॅत्रयुण्टॅन्नुमवरुटॅ नामवुं २

आशीविषों (सर्पों) के आचमन आदि अनुष्ठान करके लौटने के पहले ही महेन्द्र अमृतकलश को झट से लेकर वायुवेग से तिरोहित[1] हो गये। ५४-६२ वञ्चित[2] सर्पों ने अमृताञ्चित[3] धरातल को देखा। सभी कुञ्चितग्रीवों (सर्पों) ने कुशों से बिछे हुए स्थान को चाट लिया। तभी से दर्भों की असि[4] के समान धार से सर्प कुल की जिह्वाग्र के दो भाग हो गये। तब पक्षिकुलोत्तम (गरुड) ने कहा—"जो यह कथा सुनें या सुनावेंगे उनका दुःख नष्ट हो जायगा और उनकी अच्छी गति होगी, इसमें कोई मतभेद नहीं"। ६३-६७

सर्पों के नाम और स्वभाव

सूतजी की यह बात सुनकर बड़े प्रमोद के साथ शौनक ने पूछा—"पहले कद्रू के कितने पुत्र हुए और उनके क्या-क्या नाम हैं? हे भद्रमते

१ अदृष्ट। २ ठगे गये ३ अमृत से भीगे। ४ कुशों की तलवार जैसी धार।

भद्रमते सूत ! केळ्क्कयिलाग्रह-
मॆत्रयुमुण्टतु चॊल्लुकिल् नन्नॆटो । ३
चॊल्लुवानावतल्लेतुमे संख्ययु-
मिल्लवक्कार्कायालॊन्नु केट्टीटुविन् । ४
नूरुनूरायिरत्तिल् पुरं पिन्नॆयु-
मेरॆयुण्टुळ्ळततिल् प्रधानन्मारिल् ५
आरेळुपेरुटॆ नामङ्ङळ् चॊल्लुवन्
कूरीटुवान् पणियुण्टु मट्टॊक्कवे । ६
मुन्पिलनन्तनुं वासुकि तक्षकन्
वन्पनां कार्क्कोटकन् महापद्मनुं ७
पद्मनुं शंखपालाख्यन् नहुषनुं
काळियनैरावतन् मणिनागनुं
पिंगलन् हेमगुहन् शिखि मुल्गरन् ८
नल्ल दधिमुखन्तानुं मनोमुखन्
निर्म्मलन् पिण्डुकनुं कुमुदाक्षनुं ९
संवृत्तनुं वृत्तनुं गजपादनुं
शंखनखनजनेश्वरन् पाण्डरन् १०
पुष्करन्, भीषणन्, कौरवन् शम्यकन्
श्रीवरन् पुष्कलनुं धृतराष्ट्रनुं ११
मूषिकभक्षन् सुबाहु हरिद्रकन्
शंखशिरस्सुं महापुष्पदंष्ट्रनुं १२

सूतजी ! यह सुनने की इच्छा है ; बतलाओगे तो अच्छा होगा" । (सूतजी ने उत्तर दिया–) "सब कहना बिलकुल असंभव है । वे असंख्य हैं । एक बात तो सुन लीजिए । (सर्प) सौ लाख से अधिक हैं, और उससे भी अधिक हैं । उनमें से छः सात प्रधानों के नाम बतलाऊँगा, औरों के नाम गिनाना बड़ा काम है । सबसे पहले तो अनन्त है, फिर वासुकि, तक्षक, शक्तिशाली कार्कोटक, महापद्म, पद्म, शंखपाल, नहुष, कालिय, ऐरावत, मणिनाग, पिंगल, हेमगुह, शिबि, मुद्गर, १-८ सुन्दर दधिमुख, मनोमुख, निर्मल, पिण्डुक, कुमुदाक्ष, संवृत्त, वृत्त, गजपाद, शंखनख, अजनेश्वर, पाण्डर, पुष्कर, भीषण, कौरव, शम्यक, श्रीवर, पुष्कल, धृतराष्ट्र, मूषिकभक्ष, सुबाहु, हरिद्रक, शंखशिरा, महापुष्पदंष्ट्र कुञ्जर,

कुञ्जरन् पीठरकन् गजभद्रनुं
कुण्डोदरन् कोणनासन् महोदरन् १३
वीरन् प्रभाकरन् चारु विषायुधन्
घोरमुखरनॅन्नित्यादि नागङ्ङ- १४
ळट्टमिल्लातोळमुण्टवर् सन्तति ।
कुट्टमिल्लातवरुं चिलरुण्टतिल् । १५
आयिरमॅण्णूरुमञ्ञूरुं मुन्नूरु-
मेळञ्चु मून्नाॅन्नुमाय तलयुळ्ळोर् । १६
आयुस्सिनुं भेदमुण्टि वर्क्कॅल्लार्क्कु-
मायतनङ्ङळुं वेरुण्टु निर्ण्णयम् १७
अन्तरिक्षस्वर्ग्गभूमिपाताळङ्ङळ्
सिन्धुवनगिरिवृक्षादिकळिलुं १८
नित्यसुखत्तोटिरिक्कुन्नवर्कळिल्
तत्त्वबोधादियुमुण्टु चिलर्क्कॅल्लाम् । १९
ऍन्नितु सूतन् परञ्ञोरनन्तरं
पिन्नॅयुं शौनकमामुनि चोदिच्चु । २०
अग्नियिल् वीणु चाकॅन्नु नागङ्ङळॅ-
क्कद्रु शपिच्चोरनन्तरमॅन्तवर् २१
चॅय्ततॅन्नम्मुनि चोदिच्चतु केट्टु
कैताॅळुतादरवोटु चाॅल्लीटिनान् । २२

पीठरक, गजभद्र, कुण्डोदर, कोणनास, महोदर, वीर, प्रभाकर, चारु, विषायुध, घोरमुखर इत्यादि नाग हैं और उनकी सन्तति अनन्त है। उनमें कई एक निर्दोष भी हैं। ९-१५ उनमें एक हज़ार, आठ सौ, पाँच सौ, तीन सौ, सात, पाँच, तीन, और एक सिर वाले भी हैं। उनकी आयु में भी भेद होता है तथा उनके आयतन (निवास-स्थान) भी अलग-अलग होते हैं"। अन्तरिक्ष, स्वर्ग, भूमि, पाताल, नदी, वन, पर्वत, वृक्ष आदि स्थानों में आराम से रहनेवाले सर्पों में कुछ ऐसे भी हैं जिनको तत्त्वज्ञान हो गया है"। सूतजी के इस प्रकार कहने के बाद महामुनि शौनक ने फिर पूछा—"आग में गिरकर मर जाओ", इस प्रकार कद्रू के शाप देने के बाद उन्होंने (सर्पों ने) क्या किया ?" महामुनि के इस प्रश्न को सुनकर सूतजी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया। १६-२२

अनन्तन्ट्टॆ तपस्सुॅ

शान्तनायुळ्ळोरनन्तननन्तरं
शान्ततयॉट्टुमिल्लातॅ धाताविनॅ १
चिन्तिच्चु पोयित्तपस्सु तुटङ्ङिनान्
बन्धमोक्षप्रभेदावलोकात्मना । २
पुण्यदेशं गन्धमादनं प्रापिच्चु
निन्तु तपस्सोटनेकायिरत्ताण्टुॅ ३
पिन्नॅयव्वण्णं बदर्याश्रमत्तिङ्कल्
चॅन्तु सुखेन तपस्सुचॅय्तान् चिरम् । ४
पुक्कितु गोकर्ण्णमॉट्टुनाळ् पिन्नॅयुं
पुष्करारण्यं प्रवेशिच्चितु पिन्नॅ । ५
दुःखमकन्तु हिमाचलत्तिङ्कलु-
मुळ्क्काम्पुरच्चु तपस्सुचॅय्तान् तुलोम् । ६
नन्दिच्चॅळुन्तरुळी चतुरास्यनुम्
वन्दिच्चु कूप्पिस्तुतिच्चाननन्तनुम् । ७
व्यग्रिक्कवेण्टा वरंतरुन्नुण्टु आ-
नुग्रमायुळळ तपस्सिनि निर्त्तुक । ८
लोकत्रयत्तिनु चूटुपिटिच्चितु
भोगिप्रवर ! तपोबलं कॉण्टु ते । ९

अनन्त की तपस्या

शाप के अनन्तर शान्त अनन्त अपनी शान्तता को बिलकुल खोकर, ब्रह्मा का ध्यान करके चला गया और बन्ध और मोक्ष का भेद देखने के लिए उसने तपस्या प्रारंभ की। [वह] पुण्यदेश गन्धमादन पर्वत पर पहुँचा और वहाँ उसने सहस्रों वर्ष तक तपस्या की। तदनन्तर बदर्याश्रम पहुँचकर उसी प्रकार चिर काल तक तपस्या की। उसके बाद कुछ समय के लिए गोकर्ण में प्रवेश किया, और तदनन्तर पुष्करारण्य में पहुँचा। उसके बाद दुःख छोड़कर हिमालय में भी मन स्थिर करके तपस्या की। १-६ प्रसन्न होकर चतुरास्य (चारमुखवाले ब्रह्मा) प्रत्यक्ष हुए। तब अनन्त ने अभिवादन करके हाथ जोड़कर स्तुति की। (ब्रह्मा ने कहा—) "दुःख मत करो, मैं वर दूँगा। इस उग्र तपस्या को अब बन्द करो। हे नागोत्तम! तुम्हारे तपोबल के कारण तीनों लोक गरम हो गये हैं"। तब

निर्म्मलनाकुमनन्तनतुनेरं
ब्रह्माविनॅत्तॉळुताशु चॉल्लीटिनान् । १०
वैरं विनतयोटुं गरुत्मानॉटुं
पारमुण्टम्मय्क्कुं भ्रातृजनङ्ङळ्क्कुम् । ११
अम्मय्क्कुमॅन्ननुजन्मार्क्कुमुळ्ळॉरु-
दुर्म्मति कण्टु सहियाञ्ञवरोटु- १२
मॉन्निच्चिरिप्पानरुतॅन्नु कल्पिच्चु
निन्नु तपस्सॉटुं देहत्यागं चॅय्वन् । १३
ऍल्लामऱिञ्ञिरिक्कुन्नितु ञानॅटो!
चॅल्ला निनक्कधर्म्मत्तिङ्कल् मानसम् । १४
भूतलमॉक्कवे नी धरिच्चीटुक
भूधरनुं प्रियनाय् वरिकाशु नी । १५
पक्षीन्द्रनुं नीयुमॉन्निच्चिरिक्कणं
लक्ष्मीपतिकलांशोद्भवन्मार् निङ्ङळ् १६
शेषियातॅ ममाण्डं दहिक्कुम्पोळुं
शेषिक्क नीयॅन्ननुग्रहिच्चीटिनान् । १७
शेषनुं पाताळलोकमकंपुक्क-
शेषं तॅळिञ्ञितु लोकङ्ङळुमॅल्लाम् । १८

निर्मल अनन्त ने ब्रह्मा को प्रणाम करके कहा—"मेरी माता और भाइयों का विनता और गरुड से बड़ा वैर है। माता की और छोटे भाइयों की दुर्भावना देख उसे न सहकर, उनके साथ रहना असंभव समझकर, मैं खड़ा तपस्या करता हुआ देहत्याग करूँगा"। ७-१३ (ब्रह्मा ने कहा—) "मैं सब जानता हूँ। तुम्हारा मन अधर्म में न लगेगा। तुम सारे भूतल को धारण करो और भूधर[1] होकर तुम सर्वप्रिय हो जाओ। पक्षीन्द्र (गरुड) और तुम मिलजुल कर रहो क्योंकि तुम दोनों लक्ष्मीपति के कलांश से उत्पन्न हो। जब मेरा अण्ड (ब्रह्माण्ड) निःशेष[2] विलीन हो जायगा तब भी तुम शेष रहोगे"। इस प्रकार [ब्रह्मा ने] अनुग्रह किया। (तब) शेष पाताललोक चला गया और अशेष (समस्त) लोक प्रसन्न हो गये। १४-१८

१ पृथ्वी को धारण करनेवाले शेषनाग २ पूर्ण रूप से।

शापभयमॊळिक्कुवान् सर्प्पङ्ङळुटॆ अभिप्रायम् ।

अग्रजन् पोयतरिञ्ञॊरु वासुकि
व्यग्रिच्चवरजन्मारोटु चॊल्लिनान् । १
मातृशापं तटुक्कावल्लॊरुत्तनुं
भ्राताक्कळेयतल्लो नमुक्कायतुम् । २
ऎन्नालुमापत्तु वन्नाल् निरूपण-
मॆन्निये मट्टॊन्नुमावतुमिल्लल्लो । ३
आर्क्कुमसाद्ध्यमायिल्लॊरु कार्यवु-
मोर्क्क विवेकमुण्टॆन्नु वरुन्नाकिल् ४
नल्लतिनियॆन्नितिनॆन्नु सन्तत,
मॆल्लावरुमॊरुमिच्चु चिन्तिक्कणम् । ५
शापबलं कॊण्टु वंशं मुटिच्चिटुं
भूपन् जनमेजयनूतन् महाक्रतु । ६
नामतु चॆन्नु मुटक्केणमॆङ्किले
कामं वरू नमुक्कॆन्नतु निर्ण्णयम् । ७
अन्तणराय् चॆन्नपेक्षिच्चु यागत्ति-
नन्तरं नां वरुत्तीटुकॆन्नु चिलर् । ८
मन्त्रिकळाय् चॆन्नु सेविच्चु पुक्कु नां
चिन्तिक्करुतॆन्नु चॊल्लुकॆन्नु चिलर् । ९

शापभय से मुक्त होने के लिए सर्पों के उपाय

बड़े भाई के चले जाने का वृत्तान्त जानकर दुखित वासुकि ने छोटे भाइयों से कहा–"भाइयो ! माता के शाप से कोई नहीं बच सकता और वही हमको लगा है। फिर भी जब विपत्ति आ पड़ती है तब उपाय सोंचने के अलावा और कोई मार्ग नहीं है। यह स्मरण रहे कि अगर विवेक हो तो किसी का कोई भी काम असाध्य नहीं है। अब सब से अच्छा उपाय क्या है, इस विषय पर हम सब मिलकर निरन्तर विचार करें। शाप-बल के कारण भूपति [राजा] जनमेजय का महायज्ञ [हमारे] सारे वंश का नाश करेगा। हम जाकर उसे रोकें। तभी तो हमारी अभिलाषा की पूर्त्ति होगी"। १-७ कइयों ने कहा–"हम ब्राह्मण बनकर चलें और कुछ माँगकर यज्ञ में विघ्न पैदा करें"। औरों ने कहा–"हम मंत्री बनकर चलें, सेवा करें और भीतर से सलाह दें कि यज्ञ के लिए

ब्राह्मणरिक्रिय चॅय्युन्नताकयाल्
ब्राह्मणराय् चॅन्तु शालयिल् पुक्कु नां १०
धार्म्मिकन्माराय् क्रियय्क्कु कूटॅक्कूटि-
ब्राह्मणरॅक्कटिच्चाशु कॉन्नीटुक ११
मन्नवन्तन्नॅयुं पिन्नॅक्कटिच्चुकॉ-
न्नॉन्ने सुखमे वसिक्क नामॅल्लारुम् । १२
भूदेवन्मारॅ वधिक्करुतॅन्तुमे
खेदमॅन्नालॉरुनाळुमॉटुङ्ङुमो १३
शापभयपरिहारं वरुत्तुवान्
पापकरङ्ङळायुळ्ळव नन्नल्ल । १४
अग्निशमनत्तिनग्नि नन्नल्लल्लो
मग्नमाक्केणं जलत्तिलते नल्लू । १५
ऍङ्किल् जनमेजयनां नरपति
शङ्काविहीनं जलक्रीडचॅय्युम्पोळ् १६
कॉण्टुपोकेणं नां पाताळलोकत्तु
कण्टुकॉळ्ळां पिन्नॅ यागवुमन्तेरम् । १७
वेर्पिरिञ्ञाल् मरं काय्कयिल्लॅन्नति-
कोपिकळां चिल भोगिकळ् चॉल्लिनार् । १८
कल्पान्तजीमूतकल्पवपुस्सॉटु-
मब्धिकळेळुमलरुन्नतुपोलॅ
दिग्भ्रममांवण्णमभ्रं निरञ्ञु ना- १९

सोंचो ही मत"। (पर कइओं ने कहा—) "यह क्रिया (यज्ञ) ब्राह्मण ही करा रहे हैं, इसलिए हम ब्राह्मण बनकर यज्ञशाला में घुसें और धार्मिक होने के कारण क्रिया में शामिल होकर ब्राह्मणों को काटकर मार डालें, और फिर राजा ही को काटकर खतम कर दें, और सब मिलकर सुख से रहें"। (कुछ लोगों ने कहा—) "भूदेवों (ब्राह्मणों) का कभी वध न करना चाहिए, नहीं तो दुःख कभी भी दूर नहीं होगा। शापभय से बचने के लिए पापमय उपाय उचित नहीं हैं। क्या अग्नि से अग्नि का शमन हो सकता है? उसे पानी में डुबो देना ही ठीक होगा"। ८-१५ कुछ क्रुद्ध सर्पों ने निवेदन किया—"राजा जनमेजय के निःशंक जलक्रीडा करते समय उनको पाताल लोक में उठा ले जाना चाहिए और उनका याग फिर देखा जायगा। जब जड़ ही नष्ट हो जायगी तब पेड़ फलेगा ही कैसे?"

मभ्रनादभ्रममुद्भविप्पिच्चुकॊ-
ण्टद्भुताकारं वरिषिच्चु पावकन्-२०
दीप्ति कॆटुत्तुटन् तल्प्रदेशं विष-
व्याप्तमाक्केणमॆन्नाल् मुटङ्ङु मखम् । २१
सर्प्पप्रवरन्मार् नानाविधं मत-
मिप्रकारङ्ङळ् पऱञ्ञोरनन्तरं २२
वासुकियाकिय नागाधिपन् चॊन्ना-
नासुरमाय मतमिवयॊक्कवे । २३
ऍल्लावरुमॊत्तिनियुं निरूपिक्क
नल्लतु तोन्नीटुवोळमॆन्ने वेण्टू । २४
चेर्न्नीलिनिक्किवयॊन्नुमापत्तिङ्कल्
तोन्नुकयिल्लल्लो नल्लतॊरुवनुम् । २५
कालानुरूपमायुळ्ळ विवेकवुं
कालारियोटु पॊळि पऱञ्ञान् विधि २६
वेलयत्रे विवेकं विनाशत्तिङ्कल्
मालॊळिप्पान् निरूपिप्पिनिन्नु निङ्ङळ् । २७
इङ्ङनॆ वासुकि चॊन्नॊरु वाक्कुकळ्
मंगलमाम्मारु केट्टोरनन्तरम् २८
एलापत्रन् ताळुतॊन्नु चॊल्लीटिना-
नेला पलर्क्कुमितॆङ्किलुं केळ्क्कणम् । २९

[औरों ने कहा—] "हमको चाहिए कि हम कल्पान्त के मेघ के समान रूप धारण करके सारे आकाश को ऐसा भर दें कि सभी दिशाएँ काँप उठें और सातों समुद्रों के गर्जन के समान मेघनाद पैदा करें और भयंकर वर्षा करके यागाग्नि की दीप्ति को नष्ट कर दें और यज्ञभूमि को अपने विष से व्याप्त कर दें। इससे यज्ञ बन्द हो जायगा"। १६-२१ सर्पप्रवरों के इस प्रकार के भिन्न-भिन्न मत प्रकट करने के बाद नागाधिप वासुकि ने कहा—"ये सब आसुर मत हैं। सब मिलकर फिर विचार करो, जब तक एक अच्छा उपाय किसी को न सूझे। जो कुछ कहा गया है [वह] मुझे ठीक नहीं प्रतीत होता है। यह प्रसिद्ध है कि विपत्ति में अच्छा उपाय नहीं सूझता और [समय के अनुसार] विवेक भी नहीं होता। विधि ने कालारि से झूठ कहा। विनाश के समय विवेक दिखलाना कठिन है, इसलिए दुःख दूर करने के लिए आप सब विचार कीजिए"। २२-२७ वासुकि की यह बात सादर सुनकर एलापत्र ने हाथ जोड़कर निवेदन किया—"कुछ लोग

व्याधियऱिञ्ञु वेणं चिकित्सिप्पति-
नेतॉरु वैद्यनुमन्तु धरिक्कणम् । ३०
अम्म कोपंपूण्टु नम्मॅ शपिच्चनाळ्
निर्म्मलन्माराय देवकळॅल्लारुं ३१
अंभोजसंभवन् तन्नोटु चोदिच्चार् ।
तम्पुराने ! तिरुवुळ्ळत्तिलेऱीले ३२
कद्रुशापं कॉण्टु नागकुलमॅल्ला-
मग्नियिल् वीणॉटुङ्ङीटुं दयानिधे ! ३३
सृष्टिच्च जन्तुक्कळिल् चिलतिङ्ङन्नॅ
नष्टमाय्पोवतॉळिच्चरुळेणमे ! । ३४
ऍन्नतु केट्टरुळ्चॅय्तु कमलज-
निन्नऱियाञ्ञटङ्ङीटुकयल्ल ञान् । ३५
दुष्टर् कटिच्चु कॉन्नीटुं पलरॅयु-
मॉट्टॉटुङ्ङॅणमॅन्निट्टुतन्नेयतुम् । ३६
शिष्टरायुळ्ळोर् मरिक्कयुमिल्लतिल् ।
दिष्टमॅन्तॅन्नु चॉल्लां विबुधन्मारे । ३७
आर्यकुलवरजातन् जरल्कारु
भार्ययवनु जरल्कारुवाय्वरुम् । ३८
अट्मिल्लात गुणङ्ङळोटुमवळ्
पॅट्टुटनुण्टाकुमस्तिकनां मुनि ३९

मेरी बात को पसन्द नहीं करेंगे। फिर भी सुन लीजिए। समझ लीजिए कि वैद्य कोई भी हो, पहले व्याधि क्या है यह जानकर ही इलाज कर सकता है। जब क्रुद्ध होकर माता ने हमलोगों को शाप दिया तब सभी निर्मल देवगणों ने अंभोजसंभव (ब्रह्मा) से पूँछा—'स्वामी ! अपने श्रीयुक्त मन में सोंचिए ! कद्रू के शाप के कारण सारे नागलोग आग में गिरकर समाप्त हो जायँगे। हे दयानिधे ! ऐसा उपाय बतलाइये कि आपके सृष्ट जन्तुओं में से कुछ यों समाप्त न हो जायँ।' २८-३४ यह सुनकर (कमलसे उत्पन्न) ब्रह्मा ने कहा—'मैं इसलिए उदासीन नहीं हूँ कि मैं यह नहीं जानता हूँ। दुष्ट सर्प बहुतों को काटकर मार डालेंगे, कुछ नष्ट ही हो जायँ, इस बुद्धि से मैं उदासीन हूँ। उनमें जो अच्छे हैं उनका नाश नहीं होगा। हे देवगण ! क्या विधि है, यह मैं बतलाऊँगा। आर्यकुल में उत्पन्न जरत्कारु की जरत्कारु नामक भार्या होगी। वह अनन्त गुणवाली होगी और मुनि

अक्षिकर्ण्णान्वयरक्षवरुत्तुवान्
दक्षनवनॅन्नरिकमरन्मारे ! ४०
वानवरोटजनिङ्ङनॅ चॊन्नतु
आनरिञ्ञेनिनि वेण्टतु वैकातॅ ४१
सोदरियाय जरत्कारुनारियॅ-
स्सादरं नल्कू जरत्कारुविन्नॅटो । ४२
ऍन्नितेलापत्रवाक्यङ्ङळ् केळ्क्कयाल्
नन्दितन्माराय् चमञ्ञितु नागङ्ङळ् ४३
वासुकि पण्टु पालाळि कटञ्ञनाळ्
पाशमायानॅन्न बन्धुत्वमोर्त्तिट्टु ४४
नाशमवनु वराय्वानमरन्मा-
राशु विधिमतं चॊन्नारवनोटु । ४५
शौनकन् सूतनोटप्पोळरुळ् चॅय्ति-
तानन्दमुण्टु निन् वाक्कु केळ्क्कुन्तोरुम् । ४६
ऍन्तु जरत्कारुनामत्तिनर्त्थमॅ-
न्नन्तर्म्मुदा परञ्ञीटुक सूत नी । ४७
भीषणमाय शरीरं दिनं प्रति
शोषणं चॅय्युं तपसा पुनरवन् ४८
कारणं पेरतिनॅन्नु वरुमॅन्तु
सारनां सूतन् परञ्ञोरनन्तरम् । ४९

अस्तीक को जन्म देगी। जान लीजिए, हे देवगण! कि वह अक्षिकर्ण[1] (सर्पों) के कुल की रक्षा में कुशल होगा'। अज (ब्रह्मा) द्वारा देवगण से कही यह बात मुझे मालूम हुई। अब बिना विलम्ब के बहिन जरत्कारु को मुनि जरत्कारु को सादर दान कीजिए।" ३५-४२ एलापत्र की यह बात सुनकर सभी सर्प बड़े प्रसन्न हुए। प्राचीन काल में क्षीरसागर के मन्थन के अवसर पर वासुकि पाश (रस्सी) बन गया था। उस सेवा को स्मरण करके देवगण ने ब्रह्मा के वचन को उसे सुनाया ताकि उसका नाश न हो जाय। उस समय शौनक ने सूतजी से कहा—"आपका वचन सुनते-सुनते आनन्द आता है। 'जरत्कारु' इस नाम का क्या अर्थ है? सूतजी! प्रमोद के साथ यह बतलाइए"। "भीषण शरीर को वह प्रतिदिन अपने तप के द्वारा शोषण करता रहता है। उस नाम का यही कारण है"—सारवान् सूत के इस प्रकार कहने के अनन्तर—४३-४९

१ आँखों से सुनने वाले।

श्रीपरीक्षिच्चरितम्

चॊल्लु शेषं कथयॅन्नितु शौनकन्
चॊल्लिनानानन्दमुळ्क्कॊण्टु सूतनुम् । १
भार्यापरिग्रहणाग्रहं कूटातॅ
पारिल् जरत्कारु संचरिक्कुं कालं २
इन्द्रात्मजात्मजनन्दनन् भूपति
चन्द्रान्वयोद्भवन् नायाट्टिनु पोयान् । ३
दुष्टमृगङ्ङळॅ नष्टमाक्किक्तनि-
क्किष्टमोटुं विळयाटुन्नतुनेरं ४
अन्पुकॊण्टोटुं मृगत्तॅ तिरञ्ञतिन्
पिन्पे नटन्नितु सत्वरं भूपति । ५
काणाञ्ञु नीळत्तिरञ्ञुळन्नॅत्रयुं
क्षीणनाय् वन्नितु पैदाहपीडया । ६
काणायितप्पोळविटॅयॊरु मुनि
तानेयिरिक्कुन्नतेतुमिळकातॅ । ७
गोवत्सवक्त्रफेनाशनशीलना-
न्तापसनाय शमीकन् मौनव्रतन् । ८
चोदिच्चानम्मुनियोटु ञानॅयतम्पु
वेधिच्चु पोय मृगत्तॅयुण्टो कण्टु ? ९

श्री परीक्षित् का चरित्र

शौनक ने कहा–"शेष कथा सुनाइए"। सूतजी ने सानन्द सुनाया भी। जब पत्नी-परिग्रह की इच्छा के विना जरत्कारु पृथिवी पर संचार कर रहे थे, तब इन्द्रात्मजात्मजनन्दन (अर्जुन का पौत्र) चन्द्रवंश में उत्पन्न राजा परीक्षित् शिकार खेलने गये। दुष्ट जन्तुओं को नष्ट करते हुए, और अपनी इच्छा के अनुसार खेलते हुए, वे जा रहे थे। एक दौड़ते हुए हरिन के पीछे भूपति अपना धनुष-बाण लेकर दौड़े। जब वह न मिला तो उसको ढूँढने बहुत दूर चले गये और थककर भूंख और प्यास से पीड़ित हुए। १-६ उस समय एक मुनि दिखाई दिये जो अकेले निश्चल बैठे थे। वे तापस शमीक थे जो मौनव्रत का पालन करते थे और केवल बछड़े के मुँह का फेना खाते थे। राजा ने उन मुनि से पूंछा–"क्या तुमने मेरे बाण से घायल एक हरिन को देखा है ?" तापस ने कोई उत्तर नहीं

तापसनॉन्तुमुरियाटीलन्नेरम्
भूपतिवीरनभिमन्युनन्दनन् १०
कोपेन सर्प्पशवत्तॅ विल्कॉण्टॅटु-
त्तापत्ततिनाल् वरुमॅन्नतोरातॅ ११
तापसश्रेष्ठन् कळुत्तिलिट्टीटिनान्
तापवुं पिन्नॅ नरपतिक्कुण्टायि । १२
पापमितिनाल् वरुमॅन्नरिञ्ञवन्
शोभतेटुं पुरि पुक्किरुन्नीटिनान् । १३
अन्तु विधाताविनॅक्कण्टनुग्रहं
नन्नाय् लभिच्चु सुरालयं पुक्कॉरु १४
शृंगियाकुन्न शमीकसुतनोटु
मंगलात्मा कृशनाय मुनिसुतन् १५
चॉन्नान् परिहासमोटथ शृंगियुं
तन्नुटॅ तातवृत्तान्तमरिञ्ञप्पोळ् १६
तापमोटाचमनादिकळुं चॅय्तु
शापमिट्टीटिनान् भूपतितन्नॅयुम् । १७
इच्चॅय्त कश्मलनाय नराधिपन्
निश्चयमेळां दिवसं मरिक्कणं १८
तक्षकन् वन्तु कटिच्चॅन्नरुळ्चॅय्तु
तल्क्षणं तातनॅक्कण्टिव चॉल्लिनान् १९

दिया। अभिमन्यु के पुत्र भूपतिवीर (परीक्षित) ने क्रुद्ध होकर एक मृत सर्प को अपने बाण से उठाकर, इसका बुरा परिणाम क्या होगा यह न सोंचकर, तापस के गले में डाल दिया। तदनन्तर राजा पछताने लगे। ७-१२ यह समझकर कि इसका परिणाम पाप ही होगा राजा अपने सुन्दर नगर को चले गये। उन दिनों शमीक का पुत्र शृंगी ऋषि ब्रह्मा की स्तुति करके उनका अनुग्रह लेने के लिए देवलोक गये। जब लौटे तब उनके मित्र कृश नामक मुनिपुत्र ने उन से दिल्लगी में पिता का वृत्तान्त सुना दिया। पिता का वृत्तान्त सुनने के बाद शृंगी ऋषि ने दुःखित होकर आचमन आदि करके राजा (परीक्षित) को इस प्रकार शाप दे दिया। "जिस पापी नराधिप ने यह काम किया है वह आज के सातवें दिन तक्षक के काटने से अवश्य मर जाय," और तत्काल ही पिताजी से यह बात कह दी। १३-१९ तब शमीक ने यह सब बात जानकर अपने मन में सोंचकर

अप्पोळरिञ्ञु शमीकनिवयॅल्ला-
मुळ्प्पूविलोर्त्तु मकनोटरुळ्चॅय्तु २०
उण्णी चॅरुप्पं निनक्करिविल्लॉट्टुं
पुण्यवानाय गुणवान् महीपति । २१
सप्त व्यसनङ्ङळुण्टां नृपन्मार्क्क-
तॅप्पेरुमोर्त्ताल् प्रजकळ् पॉरुक्कणम् २२
आपत्तिनायुळ्ळ सप्तव्यसनङ्ङळ्
शोभिक्कयिल्ल नृपोत्तमन्मार्क्कतुम् । २३
स्त्रीसेव चूतु नायाट्टु सुरापानं
वाक्यपारुष्यवुं दण्डपारुष्यवुं
एळ्ळामतामर्त्थदूषणमायतुं २४
ऍन्नतिल् नायाट्टुकॉण्टवन्बुद्धिक्कु
वन्न विकल्पत्तिनिङ्ङनॅ चॅय्यामो ? २५
नल्ल राजाक्कळ्क्कॉरु पिळ्युण्टाकिल्
नल्लवरोर्त्तु पॉरुक्कुन्नतल्लयो ? २६
मन्नवनिङ्ङनॅ कर्म्ममाकुन्नतु-
मॅन्नुटॅ दोषमल्लॅन्निनु शृंगियुम् २७
ऍन्नालुमित्थं शपिक्करुतारॅयुं
वन्नुपोमॅन्नाल् तपस्सिनु नाशवुम् । २८

पुत्र से कहा—"बेटा ! तुम जवान हो । तुम बिलकुल नहीं जानते हो । राजा तो पुण्यवान् और गुणवान् है । राजाओं के सात व्यसन (दोष) होते हैं । उन सबको स्मरण करके प्रजाओं को क्षमा करना चाहिए । जब यह व्यसन विपत्तिजनक हैं तब वे नृपोत्तमों को भी शोभा नहीं देते हैं । स्त्रीसेवा, जुआ, मृगया (शिकार), मद्यपान, वाक्पारुष्य (गाली देना), दण्डपारुष्य (अतितीव्र दण्ड देना) और सातवाँ है अर्थदूषण (लालच से धन लेना) । उनमें से मृगया के कारण राजा को जो बुद्धिभ्रम हुआ क्या इसलिए यह किया जा सकता है ? (अर्थात् शाप दिया जा सकता है?) जब अच्छे राजाओं से भूल हो जाती है तब क्या सज्जनों को क्षमा नहीं करना चाहिए ?" २०-२६ शृंगी ने कहा—"यह मेरा दोष नहीं है कि राजा का यह कर्मफल होने वाला है" । शमीक ने कहा—"फिर भी किसी को इस प्रकार शाप नहीं देना चाहिये । नहीं तो अपना तप ही नष्ट हो जायगा । गुरु का काम है कि वह अपने शिष्य और पुत्र की, चाहे वे बड़े

कोटि सूर्य्य जिनिया सौन्दर्य्य खरतर ❊ रथेर किरण कत देख रघुवर
कृत्तिवास पण्डितेर कवित्व सुन्दर ❊ राम-रावणेर युद्ध शुनि अतः पर २९

रावण-सैन्येर परिचय

कहितेछे विभीषण, रथे देख नारायण, छत्रदण्ड धरे देवगण।
कपालेते दशमणि, दीप्त येन दिनमणि, ऐ राजा लंकार रावण॥
हासि रघुनाथ कन, चिनिलाम दशानन, योग्य बटे लंका अधिकारी।
कुबुद्धि एमन केने, देवकन्या केन आने, परनारी केन करे चुरि॥
पाइया ब्रह्मार वर, नाम धरे लंकेश्वर, देवमाया ना बुझे रावण।
आमि रावणेर यम, ना थाकिबे पराक्रम, मोर हाते सवंशे मरण॥
कहे सुमित्रानन्दन, एइकि राजा रावण, आर केबा उहार संहति।
हाते धनु सुरचित, ऐ पुत्र इन्द्रजित, संगेते उहार सेनापति॥
कुम्भ निकुम्भ दुजन, कुम्भकर्णेर नन्दन, संगे सैन्य आइल अपार।
शारदा चरण सेवि, वाल्मीकि ये महाकवि, रामायण करिल प्रचार३०॥

रावणेर प्रथम दिनेर युद्ध

विभीषण कहिछे लंकार समाचार ❊ राम बले, विभीषण हओ आगुसार

उसी रथ पर सवार होकर आज वह आया है। हे रघुवर! इस रथ से निकलती हुई किरणें कितनी प्रखर और सौन्दर्य से पूर्ण हैं। कृत्तिवास पंडित का कवित्व दिव्य है। इसके बाद राम-रावण के युद्ध के बारे में सुनो॥ २९॥

रावण-सैन्य का परिचय

विभीषण कह रहा है, हे नारायण! माथे पर दशमणि लगाये दिनमणि सा ज्योतित वह राजा रावण है, जिसके सिर पर देवता छत्र पकड़े हैं। हँस कर रघुनाथ ने कहा, ठीक है दशानन को पहचान लिया, लंका के योग्य अधिकारी जैसा ही रूप-रंग है। लेकिन इसमें ऐसी कुबुद्धि क्यों आ गई कि देवकन्याओं को पकड़कर लाता है और परनारियों को चुराता है। ब्रह्मा का वर-दान पाकर लंकेश्वर कहलाता है किन्तु रावण देवताओं की माया को समझता नहीं है। मैं रावण का यम-स्वरूप हूँ, मेरे सम्मुख उसका पराक्रम जाता रहेगा और मेरे ही हाथों उसका सवंश निधन होगा। सुमित्रानन्दन ने कहा, क्या यही राजा रावण है और उनके साथ वे कौन हैं? हाथों में सुनिर्मित धनुष लिये वह उसका पुत्र इन्द्रजीत है—और साथ में उनके दो सेनापति हैं। कुम्भकर्ण के दो पुत्र कुम्भ और निकुम्भ अपार सेना के साथ आये हैं। महाकवि वाल्मीकि ने शारदा के चरणों की सेवा कर रामायण का प्रचार किया॥ ३०॥

रावण के प्रथम दिवस का युद्ध

विभीषण लंका का समाचार बखानने लगा। राम ने कहा, विभीषण

जिज्ञासा करिल यदि प्रभु रघुनाथ ❋ कटक चिनाये देय तुलि डान हात
रावणेर धनु ओइ रतने खचित ❋ राजार दक्षिणे ऐ कुमार इन्द्रजित
मेघ सम अंग, ताम्रवर्ण द्विलोचन ❋ नागपाशे बेंधेछिल तोमा दुइजन
नगेन्द्र-देवेन्द्र-आदि रणे पराभव ❋ कोटि-इन्द्र जिनि दशाननेर वैभव
एमन ऐश्वर्य आज हाराय रावण ❋ तोमार संग्रामे ना बाँचिबे कोनजन ३१
रावणेरे देखिया सुग्रीव ज्वले कोपे ❋ रुषिया सुग्रीव-राजा जाय वीरदापे
कुपिया सुग्रीव से पर्व्वते दिल टान ❋ एकटाने उपाड़े पर्व्वत एक खान
घुराय पर्व्वतगोटा अतिशय रोषे ❋ गर्ज्जिया हानिल वीर रावणे-उद्देशे
रावण कोपेते एड़े दशगोटा बाण ❋ बाणे काटि पर्व्वत करिल खान-खान
व्यर्थ गेल पर्व्वत, सुग्रीव-राजा देखे ❋ कोपेते रावण बाण जुड़िल धनुके
तिनशत बाण रावण जुडिल धनुके ❋ गर्ज्जिया मारिल बाण सुग्रीवेर बुके
बाण खेये सुग्रीव सघने घुरे बुले ❋ भाग्येते बाँचिल प्राण पूर्व्वपुण्यफले ३२
सुग्रीव हारिल यदि, पलाय बानर ❋ कोपेते धनुक करे निला रघुवर
सन्धान पूरिया जान करिबारे रण ❋ हेनकाले जोड़हाते बलेन लक्ष्मण
लक्ष्मण बलेन, प्रभु थाक तुमि ब'से ❋ आमि मारि दशानने चक्षुर निमिषे

आगे बढ़ो। प्रभु रघुनाथ ने पूछा तो विभीषण दाहिना हाथ उठाकर सैन्य का परिचय कराने लगा। रत्न-खचित धनुष वाला तो रावण है और उसके दक्षिण में कुँवर इन्द्रजीत है जिसके शरीर का रंग बादलों सा है और आँखें ताम्रवर्ण हैं। उसीने तुम दोनों को नागपाश से बाँधा था। नगेन्द्र, देवेन्द्र आदि रण में उससे पराभव मान चुके हैं। कोटि इन्द्रों सा दशानन का वैभव है, ऐसा वैभव आज रावण गँवा रहा है। तुम्हारे साथ संग्राम में किसी के भी प्राण नहीं बचेंगे ॥ ३१ ॥

रावण को देखकर सुग्रीव क्रोध से तिलमिला उठा और वीरदर्प से आगे बढ़ गया। गुस्से में आकर सुग्रीव ने एक पर्वत को पकड़कर खींचा और समूचा पर्वत ही उखड़कर उसके हाथों में आ गया। समूचे पर्वत को उसने रोष से रावण के प्रति फेंका, तो रावण ने दश बाण चलाकर उस पर्वत को खंड-खंड कर दिया। सुग्रीव राजा ने देखा कि पर्वत फकना व्यर्थ गया। कुपित होकर रावण ने धनुष में तीन सौ बाण लगाकर गरजते हुए फेंका। सुग्रीव के सीने पर जाकर वे बाण टकराये। बाणों के आघात से सुग्रीव को चक्कर आ गया। केवल पूर्वपुण्य के कारण ही उसके प्राण बच गये ॥ ३२ ॥

सुग्रीव का हारना था कि भय से सब बन्दर भागने लगे। यह देखकर रघुवर हाथ में धनुष लेकर प्रत्यंचा चढ़ाकर युद्ध करने आगे बढ़े। ऐसे ही समय लक्ष्मण ने हाथ जोड़कर कहा, प्रभो! तुम बठे रहो मैं पलभर में रावण को मार गिराता हूँ। राम ने कहा, लक्ष्मण तुमको भला कितने कौशल ज्ञात

राम बले, कत सन्धि जानह लक्ष्मण ❋ रावण-सन्मुखे जुद्धे संशय जीवन
बाहुबले त्रिभुवन जिनिल राक्षस ❋ रावणेर संगे युद्धे ना कर साहस
तथापि लक्ष्मण जान पूरिया सन्धान ❋ हेनकाले लक्ष्मणेरे बले हनूमान ३३
हनूमान् बले, तुमि तिष्ठह लक्ष्मण ❋ कौतुक देखह, आमि मारिब रावण
आमार संग्रामे यदि पाय से निस्तार ❋ तबे त लक्ष्मण, तव जुझिवार भार
लक्ष्मणेर पदधूलि ल'ये हनू माथे ❋ लाफ दिया पड़े गिया रावणेर रथे
सन्मुखे दाँड़ाय वीर परम-सन्धाना ❋ सारथिर केड़े लय हातेर पाँचना
देव-दानव जिन बेटा, ब्रह्मार कारण ❋ बानर हइया तोर बधिब जीवन
हेर हेर मुण्ड मोर सुमेरुर चूड़ा ❋ हेर हेर पद मोर कैलासेर गोड़ा
हेर हेर हस्त मोर पर्व्वतेर सार ❋ हातेर अंगुली हेर सर्पेर आकार
हेर हेर नख मोर बज्रेर सोसर ❋ एकचड़े पाठाइब तोरे यमघर ३४
रावण बले, तोरे पेले अन्ये नाहि कथा ❋ पड़िलि आमार हाते, जाबि आर कोथा
हनू बले, तोरे कि मारिब एइक्षणे ❋ पूर्व्वे मारियाछि बेटा भेवे देख मने
से अक्ष-कुमारे मारि पोड़ालाम शोके ❋ से शोक रावण, तोर बिन्धियाछे बुके
आपना पासरे कोपे वीर हनूमान ❋ रावणे चापड़ मारे वज्रेर समान

हैं ? रावण के साथ युद्ध में प्राणों का भय है। बाहुबल से इस राक्षस ने त्रिभुवन पर विजय प्राप्त की है। रावण के साथ युद्ध में प्रवृत्त होने का साहस मत करो। फिर भी लक्ष्मण धनुष पर बाण चढ़ाये आगे बढ़े तो हनुमान ने लक्ष्मण से कहा ॥ ३३ ॥

हनुमान ने कहा, लक्ष्मण तुम ठहरो। जरा तमाशा तो देखो, मैं रावण को मारता हूँ। मुझसे अगर वह बच गया तो इसके साथ भिड़ने का भार तुम पर है। लक्ष्मण के पैरों की धूल सिर से लगाकर हनुमान छलाँग मारते हुए रावण के रथ पर जा धमके। रथ के सामने खड़े होकर परम दक्ष वीर सारथी के हाथों से रास छीन कर रावण से बोले– ब्रह्मा के वर से तुम देव-दानवों पर विजय प्राप्त किये हुए हो। बन्दर होकर भी आज तेरे मैं प्राण ले लूँगा। मेरे मुंड की ओर देख, देख वह सुमेरु का शिखर है। मेरे पैरों की ओर देख, देख वह कैलाश का मूलप्रदेश है। मेरे हाथों की ओर देख, देख यह पहाड़ के समान है। मेरी अँगुलियों की ओर देख, ये सर्प के समान हैं। मेरे नाखून की ओर देख, देख ये वज्र के समान हैं। एक ही झाँपड़ में तुझे यमालय भेज दूँगा ॥ ३४ ॥

रावण ने कहा, तू मिल जाय तो फिर दूसरों से मेरा क्या लेना-देना है। अब तू मेरे चंगुल में आ गया है, बचकर निकल नहीं सकता। हनुमान ने कहा, तुझे क्या मैं अभी मारूँगा ? जरा सोचकर देख, तुझे मैंने इससे पूर्व भी मारा है। जिस अक्षय-कुमार को मैंने मारा उसके शोक से मैंने तुझे जलाकर

चापड़ खाइया रावण हैल अचेतन ❋ भाग्येते रहिल प्राण ब्रह्मार कारण
संवित् पाइया पुनः उठिल सत्वर ❋ डाक दिया हनूमाने कहिछे उत्तर
रावण बले, बानरा रे, तुइ बड़ वीर ❋ तोर चापड़ेते मोर काँपिल शरीर
बले हनूमान, मोर किसेर बाखान ❋ मोर चापड़ेते तोर रहिल पराण
तोरे मारिलाम बेटा, उठि तोर रथे ❋ हारि सिद्ध ह'लो तोर सबार साक्षाते
आपना पासरि कोपे राजा से रावण ❋ हनूरे चापड़ मारे करिया गर्ज्जन
हनूमान बुके मारे से वज्र-चापड़ ❋ रथ हैते पड़ि हनू करे धड़फड़
भूमे पड़ि हनूमान घुरे घुरे बुले ❋ हनूमाने छाड़ि बिन्धे सेनापति नीले
संवित् पाइया उठे वीर हनूमान ❋ डाक दिया बले, रावण हओ सावधान
राक्षस रावणा, तोर एइ वीरपणा ❋ मोर सने युद्ध क' रे अन्ये दाओ हाना
हनूमान यत बले, रावण ना शुने ❋ नील सेनापति बिन्धे आपनार मने
बाछिया बाछिया मारे चोख-चोख शर ❋ नीलेरे बिंधिया वीर करिल जर्ज्जर ३५
आपन रक्तेते तिते नील सेनापति ❋ केमने जिनिब रण, करेन युकति
दीर्घाकार नील वीर, येमन देउल ❋ माया करि नील वीर हइल नेउल
नेउल-प्रमाण वीर हइल मायाते ❋ एक लाफे पड़े गिया रावणेर रथे

खाक किया। ऐ रावना, वह शोक तेरे दिल में चुभ गया है। क्रोध से वीर हनुमान अपने आपे में न रहा और वज्र के समान एक झाँपड़ रावण को मार बैठा। झाँपड़ खाकर रावण बेहोश हो गया। केवल ब्रह्मा के वर के कारण ही उसके प्राण रह गये। सुध पाकर फिर वह उठा और हनुमान को बुलाकर कहने लगा। रावण ने कहा, ऐ बानर तू तो बड़ा वीर है, तेरे झाँपड़ से मेरा शरीर झनझना गया। हनुमान ने कहा, मेरा क्या बखान करता है, धन्य है कि मेरे झाँपड़ खाने के बाद भी तेरे प्राण रह गये। तेरे रथ पर चढ़कर तुझे मारा, सभी के सम्मुख तेरी हेठी सिद्ध हुई। रावण राजा भी आपे से बाहर हो गया और क्रोध से गरजते हुए उसने हनुमान के एक झाँपड़ मारा। हनुमान के वक्ष पर वह प्रहार वज्र सा लगा और रथ से गिरकर हनुमान तड़फड़ाने लगे। जमीन पर गिर कर वह लोट पोट हो गये। अब हनुमान को छोड़कर रावण सेनापति नील को बाणों से छेदने लगा। होश में आकर वीर हनुमान उठे और ललकारते हुए बोले, ऐ रावण, सावधान हो जा। अरे राक्षस रावण, क्या यही तेरी वीरता है कि मेरे साथ लड़ते समय दूसरों पर हमला कर रहा है। हनुमान कितना ही कहते रहे लेकिन रावण ने एक न सुना। वह अपनी ही धुन में नील सेनापति पर चुने हुए पैने-पैने बाण फेंकने लगा। नील का सारा शरीर जर्जर हो गया ॥ ३५ ॥

नील सेनापति अपने ही खून से तर हो गये। युद्ध कैसे जीता जा सकता है इसी पर सोच विचार करने लगे। दीर्घ आकार के नीलवीर अटारी जसे

रावणेर रथे पड़ि नाहि करे डर ※ नीलेर विक्रम देखि रावण फाँफर
नीलेरे मारिते धनुकेते बाण जोड़े ※ लम्फ दिया नील गिया रथ ध्वज धरे
माथा तुलि रावण से उपर नेहाले ※ नील वीर पड़े तार धनुकेर हुले
नीलवीरे धरिवारे रावण चिन्तिल ※ लाफ दिया नील तार मस्तके उठिल
नीलेरे धरिते हात बाड़ाय रावण ※ माथा हैते मुकुटे उठिल ततक्षण
रावणेर मुकुट शोभिछे सारि-सारि ※ मुकुट उपरे बेड़ाय फिरि घुरि घुरि
माया करि बेड़ाय रावणे दिया फाँकि ※ घनपाके घुरे येन नाचनीया पाखी
कुड़िचक्षे चाय, तबु ना देखे रावण ※ चाहे पुनः पुनः, नाहि पाय दरशन
क्षणेक देखिते पाय चक्षुर निमिषे ※ धरि धरि मने करे स्थानान्तरे आसे
नाना-माया जाने वीर मायार निदाने ※ नेउल-प्रमाणे वीर फिरे स्थाने-स्थाने
कुपिल से नील-वीर बुद्धिर सागर ※ लाथि मारे रावणेर मुकुट उपर
भाग्य बले रावणेर रहे दश-माथा ※ बहुमते रावणेर करिल अवस्था
नीलेर विक्रम येन सिंहेर प्रताप ※ रावणेर मस्तकेते करिल प्रश्राव
रावणेर मुकुटेते नील-वीर मुते ※ मुख वये पड़े मूत्र, सर्व्व-अंगतिते
प्रस्रावेर धारा बहे रावण-अंगेते ※ आभरन कुंकुम भासिया गेल स्रोते

ऊँचे थे, माया से वे नेवला जैसे बन गये और कूद कर रावण के रथ पर चढ़ गये। रावण के रथ पर आकर वह भयभीत नहीं होते। नील का पराक्रम देख-कर रावण हक्का-बक्का हो गया। नील को मारने के लिए उसने धनुष पर बाण चढ़ाया। नील रूपी नेवला भी कूद कर रथ-ध्वजा पर चढ़ गया। सिर उठाकर रावण ने ऊपर की ओर देखा तो नीलवीर कूदकर उसके धनुष पर आ गिरा। ज्योंही नीलवीर को पकड़ने के लिए रावण ने सोचा त्योंही कूद कर नील उसके सिर पर चढ़ गया। नील को पकड़ने के लिए रावण ने हाथ बढ़ाया। वह भी सिर से मुकुट पर चढ़ गया। रावण के मुकुट-पंक्ति में सुशोभित था, वह फुदक-फुदक कर एक से दूसरे मुकुट पर विचरने लग गया। माया का जाल फेंक वह रावण को भरमाता रहा और नाचनेवाले पक्षी की तरह फुदकता रहा। रावण बीस आँखों से उसे देखता रहा पर देख न सका, बार-बार देखने पर भी उसका दर्शन नहीं मिलता। क्षणभर को वह दिखाई पड़ता तो क्षणभर में ओझल हो जाता, पकड़ने का उपक्रम करते ही वह अन्य स्थान पर पहुँच जाता। यह वीर तो बड़ा मायावी है, विभिन्न मायाओं का जानकार है। बुद्धि के सागर नीलवीर ने रावण के सिर पर लात मारी—भाग्य के बल से रावण के दश मुंड साबित रह गये। विभिन्न प्रकार से उसने रावण की दुर्दशा कर दी। नील का पराक्रम मानों सिंह के प्रताप के समान है—रावण के सिर पर उसने पेशाब कर दिया। रावण के सिर पर नीलवीर ने पेशाब कर दिया और मूत्र उसके मुख पर से टपकते हुए सारा अंग भिगोने

देखिया त देवगण दिल टिटकारी * कुपिल रावण-राजा लंका अधिकारी
धनुके जुड़िया वाण आछे त सन्धाने * देखिते ना पाय, बाण मारिबे केमने
एक बार माया करि उठे मुकुटेते * आर बार लाफ दिया पड़े गिया रथे
मुकुट ह'ते रथे जेते देखिलेक छाया * सन्धान पूरिया नीलेर भांगि दिल माया
बाण खेये नील वीर पड़े भूमि तले * भाग्येते बांचिल प्राण पूर्व्व-पुण्यफले ३६
नील वीर हनूमान हइले विमुख * लक्ष्मण आइल रणे पातिया धनुक
लक्ष्मण बलेन, तोर बुझि वीरपण * आमार संगेते युद्ध करह रावण
लक्ष्मणेर कथा शुनि रावण-राजा हासे * पला रे तपस्वि बेटा, प्राण ल'ये देशे
एत यदि दुइजने हैल गालागालि * दुइजने युद्ध बाजे, दोंहे महाबली
दुइ शत बाण एड़े राजा दशानन * बाणेते काटिया पाड़े ठाकुर लक्ष्मण
व्यर्थ गेल बाण-सब, चिन्तित रावण * लक्ष्मण-उपरे करे बाण-वरिषण
तिनशत बाण मारे जुड़िया धनुके * फुटे तिनशत बाण लक्ष्मणेर बुके
बुके फुटि वाणेर ये बिन्धि रहे फला * लक्ष्मणेर अंगे येन रक्तपद्म-माला
बाणे-बाणे लक्ष्मणेर नाहि चले दृष्टि * खसि पड़े लक्ष्मणेर धनुकेर मुष्टि
संवरिया लक्ष्मण सुस्थिर कैल बुक * काटिलेन रावणेर हातेर धनुक

लगा। मूत्र की धारा से रावण के अंग से आभरण कुंकुम आदि बह गये। यह देखकर देवता उसकी खिल्ली उड़ाने लगे। लंका का अधिकारी रावण इस पर बड़ा क्रोधित हुआ—धनुष पर वाण तो लगाया हुआ है लेकिन निशाना किस पर साधे, वह तो दिखाई ही नहीं पड़ता, बाण कहाँ मारे। एक बार वह मुकुट पर चढ़ा, फिर कूद कर रथ पर चढ़ गया। मुकुट से रथ पर चढ़ते समय की उसकी छाया रावण ने देख ली और वाण चला दिया। नील की माया धरी रह गई और वाण खाकर वह धरती पर जा गिरा। पूर्व-पुण्य के कारण ही उसके प्राण बचे ॥ ३६ ॥

नीलवीर और हनुमान ने जब रण में नीचा देखा, तब लक्ष्मण धनुष उठाये रणक्षेत्र में आये। लक्ष्मण ने ललकारते हुए कहा, अरे रावण, तेरी वीरता तो देखूँ, मेरे साथ भी जरा लड़ कर देख ले। लक्ष्मण की बातें सुनकर रावण राजा हँसने लगा, बोला, अरे तपस्वी के बेटे ! प्राण लेकर अपने देश लौट जा। इतने गाली-गलौज के उपरान्त दोनों महावीरों में युद्ध छिड़ गया। राजा दशानन ने दो सौ बाण चलाये और लक्ष्मण ने वाणों से काटकर उनको नीचे गिराया। सारे वाण व्यर्थ गये देखकर रावण चिन्तित हुआ और लक्ष्मण पर वाण बरसाने लगा। धनुष पर तीन सौ वाण साध कर लक्ष्मण के सीने पर फेंके। सीने को छेद कर वाण के फल अटके रह गये और यों लगा कि लक्ष्मण के अंग पर रक्तकमल की माला पड़ी हुई है। वाणों की वर्षा में लक्ष्मण की दृष्टि धुँधली पड़ गई और धनुष से लक्ष्मण की मुट्ठी

काटा गेल धनुक, बानरगण हासे ❋ आर धनु लय रावण चक्षुर निमिषे
लक्ष्मण-उपरे करे बाण-बरिषण ❋ रावणेर बाणे आच्छादिल ये गगन
कोप करि लक्ष्मण धनुके दिला चाड़ा ❋ काटिलेन रावण-रथेर अष्टघोड़ा
घोड़ा काटा गेल, रथ हइल अचल ❋ सारथिर माथा काटि पाड़े भूमितल
पड़िल सारथि अश्व, देवगण हासे ❋ आर रथ योगाइल चक्षुर निमिषे
लाफ दिया दशानन सेइ रथे चड़े ❋ तिनशत बाण तबे एकेबारे जोड़े
देखिया गन्धर्व्व-बाण जुड़िल लक्ष्मण ❋ रावणेर यत बाण कैल निवारण
लक्ष्मण-रावण करे बाण-वरिषण ❋ दू'जनार बाणे ढाके रविर किरण
दुइजने बाण वर्षे नाहि लेखा जोखा ❋ प्राणपणे मारे बाण, यार यत शिक्षा
अमर्त समर्थ बाण, बाण ब्रह्मजाल ❋ चारिदिके पड़े येन अग्निर उथाल
अरुण वरुण बाण, बाण खरशाण ❋ अग्निबाण यमबाण यमेर समान
सूचीमुख शिलीमुख बाण विरोचन ❋ सिंहदन्त वज्रदन्त घोर-दरशन
कालदन्त ऐषिक ओ दीर्घ-कर्णिकार ❋ क्षुरपार्श्व शेलान्तक अति तीक्ष्णधार
नील हरिताल बाण विकट-दर्शन ❋ अर्द्धचन्द्र चक्रबाण साक्षात् शमन
एत बाण दुइजने करे अवतार ❋ दशदिक् जल-स्थल हैल अन्धकार

ढीली पड़ गई। अपने को सँभाल कर लक्ष्मण ने हौसला किया और रावण के हाथ का धनुष काट डाला। धनुष कट गया और बन्दर हँसने लगे। रावण ने तुरन्त दूसरा धनुष हाथ में ले लिया। लक्ष्मण पर वाणों की वर्षा करने लगा—और आकाश वाणों से भर गया। लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर धनुष की प्रत्यंचा खींची और रावण के रथ के आठों घोड़ों को काट डाला। घोड़े कट गये, अतः रथ अचल हो गया। सारथी का सिर कटकर धरती पर जा गिरा। सारथी और अश्व के गिरने से देवगण हँसने लगे। पर तुरन्त ही दूसरा रथ आ गया और रावण कूद कर उस रथ पर जा सवार हुआ। फिर एक साथ उसने तीन सौ वाण चला दिये। यह देखकर लक्ष्मण ने गन्धर्व-बाण चला कर रावण के सारे वाणों को व्यर्थ कर दिया। रावण और लक्ष्मण में वाणों की वर्षा होने लगी—जिसकी कोई गिनती ही नहीं। जिसकी जितनी शिक्षा थी उसी के अनुसार वह वाण चलाता रहा। अमर्त्य, समर्थ नामक वाण, ब्रह्मजाल वाण—ये चारों ओर यों गिरने लगे मानों आग की लौ हो। अरुण, वरुण वाण, खरशान वाण, अग्नि वाण, यमवाण, कालान्तक वाण जैसे। सूचीमुख, शिलीमुख, विरोचन, सिंहदन्त, वज्रदन्त जैसे घोर-दर्शन वाण, कालदन्त, ऐषिक, दीर्घ-कर्णिकार, क्षुरपार्श्व, शेलान्तक जैसे अत्यधिक तीक्ष्णधार वाण, विकट दर्शन नील और हरिताल वाण, अर्धचन्द्र चक्रवाण मानों साक्षात् मृत्यु हो। इतने वाण दोनों ने मिलकर फके और जल-थल में दशों दिशाएँ अन्धकारमयी हो गईं। लक्ष्मण यों वाण फेंकते मानों कोई

लक्ष्मण वरिषे बाण, तारा येन छुटे ❋ रावणेर हातेर धनकखान काटे
आर ये पञ्चाश-बाण पूरिल सन्धान ❋ रावणेर बुके बाजे वज्रेर समान
खाइया पञ्चाश-बाण भावे मने-मने ❋ ब्रह्मा दियाछेन शेल, ताहा पड़े मने
मंत्र पड़ि रावण से शेलपाट एड़े ❋ यमेर दोसर शेल देखि प्राण उड़े
शेलपाट एड़िलेक दिया हुहुंकार ❋ स्वर्ग-मर्त्य-पाताले लागिल चमत्कार
लक्ष्मण एड़ेन बाण शेल काटिवारे ❋ ठेकिया शेलेर मुखे भस्म ह'ये उड़े
राखा नाहि जाय शेल ब्रह्मार येवरे ❋ वायुवेगे पड़े शेल लक्ष्मण-उपरे
पड़िल लक्ष्मण-वीर शेलेर आघाते ❋ पुनराय शेल जाय रावणेर हाते
लक्ष्मण पड़िल रणे ह'ये अचेतन ❋ कुड़िहस्ते लक्ष्मणेरे धरिल रावण
रथे तुलि लंकार भितरे लइते चाय ❋ शत-मेरु-भार हैल लक्ष्मणेर काय
कुड़िहाते टानिछे लंकार अधिपति ❋ नाड़िते लक्ष्मण-वीरे नहिल शकति
हात दिया कटिते भाविछे दशानन ❋ जटिल तपस्वी बेटा भारी कि एमन
तुलिलाम हिमालय पर्व्वत मन्दर ❋ ता ह'ते अधिक कि मनुष्य बेटा भर
कैलास-पर्व्वत तुलिलाम बामहाते ❋ कुड़िहस्ते लक्ष्मणेरे ना पारि नाड़िते ३७
लक्ष्मणे नाड़िते नारे, हैल अपमान ❋ दूर हैते देखे ताहा वीर हनूमान

तारा लपक रहा हो और उसने जाकर रावण का धनुष काट डाला। और जो पचास बाण उन्होंने फेंके वे रावण की छाती पर वज्र के समान जा गिरे। पचास बाण खाने के बाद रावण मन ही मन सोचने लगा, ब्रह्मा ने शेल दिया है, यह भी उसे याद आ गया। मंत्र पढ़कर रावण ने वह शेल फेंका—मृत्यु के समान वह शेल देखकर भय से होश उड़ते हैं। हुँकारते हुए उसने वह शेल फेंका और स्वर्ग, मर्त्य, पाताल विस्मय करने लगे। शेल को काटने के लिए लक्ष्मण ने बाण फेंके लेकिन शेल से टकराकर वे बाण भस्म हो गये। ब्रह्मा के वरदान से वह शेल रोका नहीं जा सकता, वायुवेग से वह आकर लक्ष्मण के वक्ष पर गिरा। वीर लक्ष्मण भी शेल के आघात से धरती पर गिर पड़े। पुनः वह शेल रावण के हाथों में लौट गया। रणक्षेत्र में लक्ष्मण अचेतन होकर गिर पड़े। बीस हाथों से रावण ने लक्ष्मण को उठाना चाहा। चाहा कि उन्हें रथ पर उठाकर लंका में ले जाये। लेकिन लक्ष्मण का शरीर शत-मेरुपर्वतों से भी अधिक भारी हो गया। लंकाधिपति बीस हाथों से लक्ष्मण को उठाने की चेष्टा करने लगा लेकिन वीर लक्ष्मण को हिलाने की भी शक्ति उसमें नहीं रही। कमर पर हाथ रख कर दशानन सोचने लगा—यह जटाधारी तपस्वी कैसे इतना वजनी हो गया। मैंने हिमालय, मन्दर पर्वत तक को उठा लिया, उससे भी क्या यह मनुष्य का जामा ज्यादा भारी हो गया। बाएँ हाथ से मैंने कैलाश पर्वत उठा लिया और बीस हाथों से मैं लक्ष्मण को हिला नहीं पा रहा हूँ !॥ ३७॥

रावणेर गालेते मारिल एक चड़ ❋ चड़ खेये दशानन उठि दिल रड़
चड़ खेये दशानन लागिल घुरिते ❋ घुरिते घुरिते रावण पड़े गिया रथे
पलाइल रावण देखिया हनूमाने ❋ करिया पाथालि-कोला तुलिल लक्ष्मणे
वैरि-स्पर्शे ह'येछिला पर्व्वतेर भार ❋ सेवकेर हाते हैला तूलार आकार
लक्ष्मणे राखिल ल'ये श्रीरामेर पाशे ❋ धेयाने जीयान राम चक्षुर निमिषे ३८

राम-रावणेर प्रथम युद्ध

रावण बसिया आछे आपनार रथे ❋ संग्रामेते यान राम धनुर्व्वाण-हाते
रावणे मारिते यान पूरिया सन्धान ❋ हेनकाले जोड़ हाते बले हनूमान
रथे चड़ि जुझे रावण, श्रम नाहि जाने ❋ भूमिते थाकिया तुमि जुझिबे के मने
मोर पृष्ठे रघुनाथ, कर आरोहण ❋ आमार पृष्ठेते चड़ि मारह रावण
हनूमान-पृष्ठेते चड़ेन रघुवर ❋ ऐरावते वार येन दिला पुरन्दर
रावणे बलेन राम उपजिया क्रोध ❋ यत दुःख दिलि, आजि लब तार शोध
दश मुख साजायेछ नाना-अलंकारे ❋ दश मुंड काटिया बधिब आजि तोरे
ब्रह्मा विष्णु महेश्वर आर यत देवे ❋ पड़ेछ आमार हाते, के आर राखिबे

लक्ष्मण को हिला न सकने से वह अपमानित बोध करने लगा। दूर से हनुमान ने यह देखा और दौड़कर उन्होंने रावण के गाल पर एक झाँपड़ जड़ दिया। झाँपड़ खाकर रावण भाग खड़ा हुआ, चक्कर खाते-खाते अपने रथ पर जा गिरा। रावण भागा, यह देखकर हनुमान ने अपनी बाहों में लक्ष्मण को उठा लिया। वैरी के स्पर्श से जिस शरीर का भार पर्वत के समान हो गया था, सेवक के निकट वह रुई के समान हो गया। लक्ष्मण को उन्होंने श्रीराम के बगल में ले जाकर रखा। राम ने ध्यान-शक्ति से उन्हें पल भर में जीवित कर दिया ॥ ३८ ॥

राम-रावण का पहला युद्ध

रावण अपने रथ पर बैठा था कि राम धनुष-वाण हाथ में लिये युद्ध के लिए चल पड़े। रावण को मारने के लिए जो वे आगे बढ़े तो हनुमान ने हाथ जोड़ कर कहा, रावण रथ पर चढ़कर लड़ रहा है, उसको कोई परिश्रम से पाला नहीं पड़ रहा है, आप धरती पर खड़े कैसे युद्ध करेंगे। हे रघुनाथ! आप मेरी पीठ पर सवार हो जायें और रावण का वध करें। रघुवर हनुमान की पीठ पर इस प्रकार बैठ गये मानो पुरन्दर ऐरावत पर विराजमान हों। क्रुद्ध राम ने रावण से कहा, तूने आज तक जितना क्लेश पहुँचाया उसका बदला मैं आज चुकाऊँगा। तूने विभिन्न अलंकारों से अपना दशमुख सुसज्जित किया है, उन्हीं दशमंडों को काट कर आज तेरा वध करूँगा। तू अब मेरे हाथ में पड़ गया है; ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर—कौन तेरी रक्षा करेगा। राम के

रामेरे वचने रावण ना करे उत्तर ❋ हनूमाने देखिया कुपिल लंकेश्वर
मारे अक्ष-कुमारे पोड़ाय लंकापुरी ❋ वद्ध आछे घरपोड़ा, एइ बेला मारि
बन्दी हइयाछे बेटा, पृष्ठे ल'ये राम ❋ आजि दिब प्रतिफल करिया संग्राम
निज बुद्धे बाँधा गेछे आपना-आपनि ❋ नड़िते पड़िते नारे एइबेला हानि
बाछिया बाछिया एड़े चोख-चोख शर ❋ बाणे बिन्धि हनूमाने करिल जर्ज्जर
जुझिते ना पारे हनू, पृष्ठेते श्रीराम ❋ बाण फुटि हनूर छुटिल काल-घाम
लक्ष-लक्ष बाण मारे हनूर बुकेते ❋ क्रोधे हनूमान-वीर लागिल फुलिते
दश-योजन देह कैल आड़े परिसर ❋ दीर्घे त्रिश-योजन हइल कलेवर
लेज कैल दीर्घाकार योजन पञ्चाश ❋ हनूमानेर लेज गिया ठेकिल आकाश
हनूमानेर लेज देखि रावणेर भय ❋ बालि-राजेर मत पाछे लेजे बाँधि लय ३९
श्रीराम एड़ेन बाण ज्वलन्त आगुनि ❋ सब-बाण काटे रावण परम-सन्धानी
श्रीराम ऐषिक-बाण जुड़ेन धनुके ❋ सन्धान पूरिया मारे रावणेर बुके
बाण खेये दशानन हैल अचेतन ❋ क्षणेके संवित् पाय राजा से रावण
डाक दिया बले राम, शुन रे रावण ❋ मोर बाण खेये तुइ ह'लि अचेतन
आजि ना मारिया तोर छिन्न करि केश ❋ लौकिकता ल'ये जाह, येमन सन्देश

वचन सुनकर, लंकेश्वर रावण की नजर हनुमान पर पड़ी। वह बेहद गुस्सा हो गया। इसी ने अक्ष-कुमार को मारा, इसी ने लंका-दहन किया, यह मुँहजला इस समय बंधन में है, इसको इस समय मार डाला जाय। पीठ पर राम को चढ़ाकर यह इस समय बन्धन में है, आज बदला चुकाऊँगा। अपनी बुद्धि के कारण ही इसने अपने आपको फँसा रखा है—इस वक्त वह हिलने-डुलने में अशक्त है, इसलिए अभी उस पर आक्रमण करूँ। चुन-चुन कर वह पैने-पैने वाण चलाने और वाणों से छेद-छेद कर हनुमान को बेहाल करने लगा। पीठ पर श्रीराम के होने के कारण हनुमान लड़ नहीं सकते थे। वाणों के चुभने से उनके पसीना निकल आया। हनुमान के सीने पर लाख-लाख वाण मारने लगा और गुस्से से हनुमान का बदन फूलने लगा। शरीर की चौड़ाई बढ़कर दश योजन की हो गयी और तीस योजन ऊँचा कलेवर बन गया। पूँछ को बढ़ाकर उन्होंने पचास योजन लम्बी कर दी, कि वह आकाश से बातें करने लगी। पूँछ देखकर रावण को डर लगने लगा, कहीं बालि राजा की तरह यह भी न पूँछ में उसे लपेट ले ॥ ३६ ॥

श्रीराम ज्वलन्त अग्नि के समान वाण फेंकने लगे और रावण उनको कुशलता से काटने लगा। श्रीराम ने धनुष पर ऐषिक वाण चढ़ाया और निशाना साध कर रावण के सीने पर मारा। वाण की चोट से दशानन अचेतन हो गया। फिर थोड़ी ही देर में वह अपने होश में आ गया। राम ने ललकार कर कहा, अरे रावण सुन, मेरे वाण के प्रहार से तू अचेतन हो

रघुवंशे जन्म मोर राम-नाम धरि ❋ एकदिनेर रणे आमि बैरी नाहि मारि
आजि तोरे मारिले विवाद घुचे जाबे ❋ ज्ञाति-बन्धु-आदि तोर अनेक बाँचिबे
एक लक्ष पुत्र तोर, सओया-लक्ष नाति ❋ एक जन ना राखिब वंशे दिते बाति
शेषे तोरे बधिब करिया लंड-भंड ❋ विभीषण-उपरे धराव छत्रदण्ड
सभाखंड सकले रामेर कथा शुने ❋ अर्द्धचन्द्र-बाण राम पूरेन सन्धाने
बाणे दशदिक् आलो, उल्का-हेन छुटे ❋ दश-माथार मुकुट एकइ बाण काटे
काटा गेल मुकुट, खसिल दश-पाग ❋ भंगदिल दशानन, नाहि पाय लाग
सारथिरे आज्ञा दिल राजा दशानन ❋ लंकाते चालाओ रथ त्वरित-गमन
रावणेर आज्ञा पेये सारथि सत्वर ❋ शीघ्रगति निल रथ लंकार भितर
काटा गेल मुकुट, पलाय दशानन ❋ धर धर डाक छाड़े यत कपिगण
कृत्तिवास-कवित्व शुनिते बड़ रंग ❋ लंकाकाण्डे गान गीत रावणेर भंग ४०

अकाले कुम्भकर्णेर निद्राभंग ओ रावणेर सहित कथोपकथन

भंग दिया गेल रावण पेये अपमान ❋ पात्र-मित्र ल'ये बैसे करिया देयान

गया। आज तेरा वध न कर तेरे बाल नोच लेता हूँ—लोकाचार के रूप में मेरा यही उपहार तू आज ले जा। मेरा नाम राम है और मैंने रघुवंश में जन्म लिया है। एक दिन के रण में मैं अपने शत्रु का वध नहीं करता हूँ। आज अगर तुझको मैं मार डालूँ तो झगड़ा ही खत्म हो जायगा और तेरे नाते-रिश्तेदार बहुत सारे जीवित रह जाएँगे। तेरे एक लाख पुत्र हैं और सवा लाख पौत्र हैं। मैं उनमें से एक को भी जिन्दा नहीं छोड़ जाऊँगा कि तेरे कुल के दीपक के रूप में जीवित रहें। पूरा हुड़दंग मचाने के उपरान्त ही तेरा वध करूँगा और विभीषण पर राजछत्र शोभा देगा। उपस्थित सारे लोगों ने राम की घोषणा सुनी। राम ने धनुष पर अर्ध-चन्द्र वाण साधा। बाण से दशों दिशाएँ प्रकाशमय हो गईं—उल्का सी वह लपकी। एक ही बाण से उन्होंने दस सिरों पर शोभायमान मुकुट काट डाले। मुकुट कट गये और दस पगड़ियाँ भी गिर गईं, यह देखकर दशानन भाग खड़ा हुआ। तब दशानन ने रथ चलाने के लिए सारथी को आज्ञा दी। रावण की आज्ञा पाकर सारथी द्रुतगति से रथ लेकर लंका की ओर चल पड़ा। दशानन के मुकुट गिर गये, और वह लंका की ओर भाग रहा है यह देखकर सारे कपि 'पकड़ो पकड़ो' का शब्द करने लगे। कृत्तिवास का कवित्व सुनने में बड़ा आनन्द आता है। लंकाकांड में उन्होंने रावण के पलायन का गीत गाया ॥ ४० ॥

असमय कुम्भकर्ण का निद्राभंग और रावण से वार्त्तालाप

अपमानित होकर रावण रणक्षेत्र से भाग खड़ा हुआ। सारे पात्र-मित्र सभासदों को लेकर वह सभा में बैठा। चारों ओर तीस-कोटि सेनापति घेरे

त्रिशकोटि सेनापति चौदिके वेष्टन ❋ सभा मध्ये सिंहासने बसिल रावण
रावण बले, बुझिलाम देवतार फन्दि ❋ एतदिने गड़ाइल, या बलिल नन्दी
कुबेरे जिनिया आसि कैलास-शिखरे ❋ नन्दी दाँड़ाइया छिल शिवेर दुयारे
शिव-दुर्गा-दर्शने वासना आमार ❋ विस्तर कहिनु, नन्दी ना छाड़िल द्वार
विकृत बानर-मुख नन्दी जे दुयारी ❋ मुखपाने चाहि तार दिनु टिट्कारी
कोप करि नन्दी मोरे दिल अभिशाप ❋ सेइ शापे पाइ आमि एत मनस्ताप
नन्दी कहिलेक, आमि शिवेर किंकर ❋ मोरे उपहास कर दुष्ट निशाचर
कपिमुख देखि तुइ कैलि उपहास ❋ एइ मुख हबे तोर सवंशे विनाश
फलिल नन्दीर शाप एतदिन परे ❋ पराजय करिलेक वनेर बानरे
क'रेछि विस्तर तप हइते अमर ❋ अमर हइते ब्रह्मा नाहि दिलवर
एइ वर दिला ब्रह्मा हइया सदय ❋ यक्ष रक्ष देवता गन्धर्व्व नाहि भय
सवारे जिनिब रणे, मागि निलाम वर ❋ सबे मात्र वाकि छिल नर ओ बानर
भेवेछिनु भक्ष्य मध्ये एरा दुइजन ❋ के जाने, बानर-नर दुर्जय एमन
पुनः ब्रह्मा वर दिला अनुकूल ह'ये ❋ काटामुंड जोड़ा जाबे स्कन्धेते आसिये
देव-दानव-गंधर्वेते नाहि तोर डर ❋ सवंशे मारिबे तोरे नर ओ बानर

हैं और बीच में रावण सिंहासन पर बैठा है। रावण ने कहा, देवताओं का छल अब समझ में आया। नन्दी ने जो कहा था वह इतने दिनों में फला। कुबेर पर विजय प्राप्त कर मैं कैलास पर्वत पर आया। शिव जी के दरवाजे पर नन्दी खड़ा था। शिव-दुर्गा के दर्शन के लिए मेरे मन में अभिलाषा थी। बहुत कहता रहा लेकिन नन्दी ने दरवाजा नहीं छोड़ा। बन्दर सरीखे विकृत मुखवाले नन्दी की मैंने बहुत खिल्ली उड़ाई। गुस्से में आकर नन्दी ने मुझे शाप दिया। उसी शाप से मेरे मन में इतना दुख है। नन्दी ने कहा, मैं शिव का किंकर हूँ। तू दुष्ट निशाचर मेरा कपिमुख देखकर उपहास कर रहा है। इसी मुखवालों द्वारा तेरे वंश का विनाश होगा। नन्दी का शाप इतने दिनों में फैला। मुझको वन के वानरों ने पराजित किया। अमर बनने के लिए मैंने कितनी ही तपस्या की है लेकिन फिर भी ब्रह्मा ने मुझे अमरत्व का वर नहीं दिया। ब्रह्मा ने सदय होकर यह वर दिया कि यक्षों, राक्षसों, देवताओं और गन्धर्वों से मुझको कोई भय नहीं रहेगा—सभी पर मुझको विजय प्राप्त होगी—यही वर मैंने उनसे माँग लिया। बाकी रह गये नर और बानर—ये तो मेरे भक्ष्य हैं ऐसा सोचा था मैंने। कौन जानता था कि नर और वानर इतने दुर्जय होते हैं। फिर ब्रह्मा ने मेरे प्रति सदय होकर वर दिया कि मेरे कटे मुंड फिर से स्कन्ध से जुड़ जायेंगे। देवों-दानवों-गन्धर्वों से तुझे कोई भय नहीं। नर और वानर ही तेरे सारे वंश को नष्ट करेंगे। ये ब्रह्मा के वाक्य थे, इसमें कोई बात अन्यथा नहीं हो सकती। इतने दिनों

ब्रह्मार वचन इहा, कभु नहे आन ❋ एतदिने पाइलाम बड़ अपमान
सर्वांग पुड़िछे मोर मनुष्येर बाणे ❋ राजा ह'ये हारिलाम, जिने कोन जने
निद्रा जाय कुम्भकर्ण, जागिवेक कबे ❋ विचार करिया देख सभाखंड सबे
जाय अर्द्ध लंकापुरी कुम्भकर्ण-भोगे ❋ छयमास निद्रा जाय, एक दिन जागे
पाँच मास गत, निद्रा एकमास आछे ❋ आजिलंका मजिले से कि करिबे पाछे
कुम्भकर्णे जागाइते करह जतन ❋ प्राणसत्वे मोर जेन हय सचेतन४१
एत यदि आज्ञा दिल राज लंकेश्वर ❋ तिन लक्ष रक्षः चले कुम्भकर्ण-घर
भक्ष्य-द्रव्य मद्य-मांस अनेक प्रकार ❋ सुगन्धि चन्दन-पुष्प आने भारे-भार
पाले-पाले महिष-हरिण आने कत ❋ छागल गाड़ल नाहि हय परिमित
सोनार निर्मित गृह अति मनोहर ❋ विश्वकर्मा-निर्मित विचित्र बहुतर
सारि-सारि सोनार कलस-सब साजे ❋ नेतेर पताका उड़े, जयघंटा बाजे
त्रिश-योजन घरखान दीर्घ-निरूपण ❋ आड़े दश-योजन देखिते सुगठन
चारिक्रोश जुड़े द्वार आड़ेते निर्णय ❋ दीर्घेते योजन-अष्ट, दृष्ट नाहि हय
चारिदिके एइरूप द्वार शोभे चारि ❋ मध्ये-मध्ये गवाक्ष शोभिछे सारि-सारि
रत्नखाटे कुम्भकर्ण घुमे अचेतन ❋ नाकेर निश्वास जेन प्रलय-पवन

में मुझको इतना बड़ा अपमान सहन करना पड़ा। मनुष्य का बाण खाकर मेरा सारा तन-बदन जला जा रहा है। राजा होकर भी मैं हार गया जिसको कोई हरा नहीं सकता था। कुम्भकर्ण निद्रा में मग्न है, जाने कब उसकी नींद टूटेगी। सारी सभा से मैं यह विचारने का अनुरोध करता हूँ कि आधी लंका-पुरी कुम्भकर्ण के भोग में स्वाहा हो जाती है। छह महीने सोता है तो एक दिन जागता है। पाँच महीने बीत चुके हैं और एक महीना शेष है। अगर आज ही लंका ध्वंस हो जाय तो बाद में जागकर वह क्या करेगा। इसलिए उसे जगाने का यत्न करें—कि वह जीवितावस्था में सचेतन हो जाय॥ ४१॥

जब राजा लंकेश्वर ने यह आज्ञा दी तो तीन लाख राक्षस कुम्भकर्ण के गृह की ओर चल पड़े। तरह-तरह के भोजन-पदार्थ एवं मदिरा-मांस लेकर वे चले। सुगन्धि, चन्दन और ढेर के ढेर पुष्प भी लेकर वे चले। वे न जाने कितने भैंसे, हिरन और बकरे ले चले जिनकी कोई गिनती नहीं। विश्वकर्मा द्वारा निर्मित स्वर्ण का बना वह भवन बड़ा ही विचित्र और सुन्दर है। पंक्तियों में सोने के कलश सजे हुए और वस्त्र निर्मित पताकाएँ फहरा रही हैं और जयघंटे बज रहे हैं। भवन की लम्बाई तीस योजन है और चौड़ाई दस योजन। लम्बाई में दरवाजा चार कोस का है तो ऊँचाई में आठ योजन—आँखों से दिखाई नहीं पड़ता। भवन के चारों ओर इस प्रकार के चार दरवाजे शोभित हो रहे हैं और बीच-बीच में गवाक्षों (झरोखों) की

दूयारेर निकटेते जे राक्षस आसे ❋ उड़ाइया फेले तारे नाकेर निश्वासे
टानिया प्रश्वास जबे लय निशाचर ❋ राक्षस कतेक ढोके नाकेर भितर
ये-सब राक्षस जाने सन्धि उपदेश ❋ अनेक शक्तिते घरे करिल प्रवेश
अंग-भंगे आलस्ये जखन तुले हाइ ❋ मुखेर गह्वर येन बड़ गड़ खाइ
कि रूपेते कुम्भकर्णेर हबे निद्राभंग ❋ कत-शत निशाचर करे कत रंग
बाजाइल लक्ष-डाक चारिदिके बेड़े ❋ निद्रा जाय कुम्भकर्ण, कर्ण नाहि नड़े
घड़ा-घड़ा चन्दन डालिया दिल बुके ❋ सुगन्ध-शीतले आरो निद्रा जाय सुखे
बाजाय कानेर काछे तिन-लक्ष शाँख ❋ द्विगुण बाड़िल आरो नासिकार डाक
शाँख-नाक-गर्जने गभीर महाशब्द ❋ शंकाय लंकार लोक ह'ये रहे स्तब्ध
पाले-पाले आनिल ये छागल गाड़र ❋ प्रवेश कराय तार नाकेर भितर
तिलार्द्धओ नासारन्ध्रे रहिते ना पारे ❋ निश्वासे पड़िल उड़े दिग्-दिगन्तरे
यतेक प्रबन्ध करे निशाचरगणे ❋ ब्रह्मा-वरे निद्रा जाय, किछु नाहि जाने
रावण-गोचरे वार्ता कहिल सत्वरे ❋ राजाज्ञाते राक्षसेरा चारिभिते मारे
राजभ्राता बलि केह नाहि करे डर ❋ बुकेर उपरे मारे वृक्ष ओ प्रस्तर

पंक्तियाँ भी सुशोभित हैं। रत्ननिर्मित पलंग पर कुम्भकर्ण निद्रा में अचेतन है। नाक से जो श्वास छोड़ रहा है वह मानों प्रलय का पतन हो। दरवाजे के निकट जो भी राक्षस जा पहुँचता उसी को उसाँस दूर उड़ा ले जा रही है। जब वह साँस खींचता तो कितने ही राक्षस खिंच कर नाक के भीतर जा पहुँचते। जिन राक्षसों को कौशलों का पता है वे ही काफी शक्ति के साथ भवन में प्रवेश कर सके। आलस्य से जब भी वह जमुहाई लेने लगता तो उसका मुँह एक खाई की तरह लगने लगता। कुम्भकर्ण की निद्रा कैसे टूटे इस पर सैकड़ों निशाचर कितने ही प्रकार के तमाशे करने लगे। चारों ओर से घेर कर एक लाख धौंसे बजाये गये। कुम्भकर्ण सोता ही रहा उसके कानों में जूँ नहीं रेंगी। सीने पर घड़ों चन्दन उँडेला गया—सुगन्ध और शीतलता पाकर वह और भी सुख से सोने लगा। कानों के पास तीन लाख शंख बजने लगे। नाक का स्वर दुगुना हो गया। शंख और नाक के गर्जन से घोर नाद होने लगा और शंका से लंका के निवासी स्तब्ध रह गये। जो ढेर के ढेर भेड़ और बकरे लाये गये थे उनको उसकी नाक में प्रवेश करा दिया गया। क्षणभर के लिए भी वे नथुनों में टिक न सके, साँस से वे दिग्-दिगन्तरों की ओर उड़ गये। जितने ही प्रबन्ध निशाचर करने लगे, ब्रह्मा के वर से वह सोता ही रहा और कुछ भी न जान सका। तब तुरन्त ही सब लोगों ने जाकर रावण से यह वार्त्ता सुनाई। राजा की आज्ञा पाकर वे चारों तरफ से उसे पीटने लगे—राजा का भाई जानकर कोई भी डरा नहीं। उसके सीने पर पेड़ और पत्थर बरसाने लगे। कोई-कोई तो उस पर ताव

मुषल मुद्गर केह अंगे मारे तेड़े * साँड़ासिते मांस टाने, शेल-शूल फोंड़े
केह कामड़ाय, केह चुले धरि टाने * ब्रह्मा-वरे निद्रा जाय, किछुइ ना जाने
मार खेये कुम्भकर्ण हइल विवर्ण * सकल राक्षस बले, मैल कुम्भकर्ण
महोदर बले, एक युक्तिमने गणि * लंकार भितर हैते आनह कामिनी
शोयाओ से सबाकारे कुम्भकर्ण-पाशे * आपनि जागिबे वीर नारीर परशे
एत शुनि सब वीर धाइल सत्वर * विद्याधरी-तुल्या नारी आनिल विस्तर
शुइल ताहारा कुम्भकर्णेर आसने * सर्व्वांग लेपन तार करिल चन्दने
तार पाशे कन्या-सब करे आलिंगन * अति-सुशीतल लागे कन्या-परशन
एके कुम्भकर्ण, ताहे स्त्रीगण पाइया * पाश फिर शोय वीर अंग मोड़ा दिया
ताकेर निश्वास येन प्रलयेर झड़ * भय पेये कन्या-सब उठि दिल रड़
महोदर बले, एक युक्ति अनुमानि * मदिरा-मांसेर देह खुलिया ढाकनि
जागाइते ना पारिबे ए-सब प्रबन्धे * आपनि जागिबे वीर मद्य-मांस-गन्धे ४२
अनन्त-बासुकि येन तुलिलेक हाइ * चन्द्र-सूर्य दुइ चक्षु देखिया डराइ
घूर्णित-लोचन वीर उठि वैसे खाटे * निद्राभंग ह'ये तबे कुम्भकर्ण उठे

में आकर मूसल और मुद्गर चलाने लग गया। कोई तो सँड़सी से मांस नोचने लग गया तो कोई शेल और शूल धँसा देने लगा। तो कोई उसके बाल नोचने लगा। पर वह ब्रह्मा के वरदान से निद्रामग्न रहा, कुछ भी न जान सका। मार खाकर कुम्भकर्ण के शरीर का रंग उड़ गया तो सभी राक्षसों ने कहा कुम्भकर्ण मर गया। महोदर ने कहा, मेरा एक परामर्श मानो। लंका के भीतर से कामिनियों को ले आओ और सबको कुम्भकर्ण के बगल में लिटा दो। नारी के स्पर्श से स्वयं वीर जाग जायगा। इतना सुनकर सभी वीर तुरन्त दौड़ पड़े और अनेक संख्या में विद्याधरी नारियों को ले आए। वे कुम्भकर्ण के बिस्तर पर लेट गयीं और उसका सारा अंग चन्दन से पोत दिया। बगल में लेट कर जब इन नारियों ने उसे आलिंगनबद्ध किया तो कुम्भकर्ण को इन नारियों का स्पर्श बड़ा सुखद लगा। एक तो कुम्भकर्ण है फिर नारी का स्पर्श। अंगड़ाई लेते हुए वीर ने करवट बदली। नाक से निकलने वाली निःश्वास मानों प्रलय की आँधी हो, डर कर सभी नारियाँ भाग खड़ी हुईं। महोदर ने कहा, एक युक्ति मेरी और सुन लो। मदिरा और मांस के पात्रों के ढक्कन खोल दो। इन सब तरकीबों से उसे नहीं जगा सकोगे। वह स्वयं मदिरा मांस की गन्ध से जाग जायगा ॥ ४२ ॥

मानों अनन्तनाग ने जमुहाई ली—चन्द्र-सूर्य जैसे धधकती दो आँखें देखकर डर लगता। नींद से जागकर कुम्भकर्ण उठ कर पलंग पर बैठ गया और उसके दोनों नेत्र उस समय घूर्णित हो रहे थे। बिस्तर पर बैठकर वीर निशाचर ने कहा, किस कारण तुम लोगों ने मुझको बेवक्त नींद से जगा दिया।

शय्याय बसिया वीर निशाचरे बले ❋ कि लागिया निद्राभंग करिलि अकाले
अकाले जागालि मोरे, छोट नहे काज ❋ कोनबेटा उल्लंघने रावणमहाराज १४३
धेये गिया रावणे बले निशाचर ❋ कुम्भकर्णे जागिलेन, शुन लंकेश्वर
भाइके देखिते हैल रावणेर साध ❋ कुम्भकर्णे जानाइल रावण-संवाद
शय्या हैते उठि वीर चक्षे दिल पानि ❋ भक्षणेर द्रव्य दिल थरे थरे आनि
मद्यपान करिलेक साताश-कलसी ❋ पर्व्वत-प्रमाण मांस खाय राशि-राशि
हरिण महिष वरा सापटिया धरे ❋ बारो-तेर-शत पशु खाय एक बारे
कुम्भकर्ण बले, बुझिलाम अनुमाने ❋ अकाले जागाय मोरे याहार कारणे
कोन लाजे इन्द्र बेटा दिते एलो हाना ❋ वारे वारे हेरे जाय ना भावे भावना
आछुक इन्द्रेर काज, यम यदि आसे ❋ यम ह'ये ताहारे गिलिब एकग्रासे १४४
विरूपाक्ष राक्षस से धर्म्म-अधिष्ठान ❋ जोड़हाते कहे कुम्भकर्ण-बिद्यमान
देवे कोप न कर, निर्दोष पुरन्दर ❋ प्रमाद पाड़िल एत नर ओ वानर
शूर्पणखा गियाछिल पंचवटी-वने ❋ अग्रे तार नाक-कान काटिल लक्ष्मणे
श्रीरामेर सीता राजा आने सेइ रोषे ❋ सागर डिंगिया हनू लंकापुरे आसे
लंका दग्ध करिल वानर हनूमान ❋ तुमि थाक्‌ते लंकार एतेक अपमान

असमय ही तुम लोगों ने मुझको जगा दिया है—यह कोई सामान्य काम नहीं। महाराजा रावण की आज्ञा का किसने उल्लंघन किया ? ॥ १४३ ॥

राक्षसों ने दौड़कर रावण से जाकर कहा, सुनो लंकेश्वर, कुम्भकर्ण जाग पड़ा है। रावण का जी चाहा कि भाई को देखें। रावण का सन्देश कुम्भकर्ण को भेजा गया। बिस्तर से उठकर वीर ने आँखों पर पानी का छींटा मारा। तरह-तरह की भोज्य-सामग्री लाकर सामने रख दी गई। उसने सत्ताईस घड़े मदिरा के पी डाले और पर्वत के ढेर के समान मांस खा गया। भैंसे, हिरन और बराह पकड़-पकड़ कर वह खाने लगा। एक-एक निवाले में वह बारह-तेरह सौ जानवर खाने लगा। कुम्भकर्ण ने कहा, मैंने अनुमान लगा लिया है कि मुझको किस कारण असमय जगा दिया गया है। यह इन्द्र भी कैसा निर्लज्ज है फिर धावा बोलने आ गया। बार-बार हार जाने पर भी उसको कोई चिन्ता नहीं। इन्द्र तो अलग रहा, अगर यम भी आ जाये तो उसका यम बनकर मैं उसको भी निगल जाऊँगा ॥ १४४ ॥

धर्म का पुजारी विरूपाक्ष नामक एक राक्षस था। उसने हाथ जोड़ कर कुम्भकर्ण से कहा, देवताओं पर नाराज मत हो, पुरन्दर निर्दोष है। नर और वानर यह प्रमाद ले आए हैं। पंचवटीवन में सूर्पनखा गयी थी, वहाँ लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट डाले। उसी क्रोध में राजा रावण जाकर श्रीराम की सीता को ले आया। सागर लाँघ कर हनुमान लंकापुरी आया और उस बन्दर हनुमान ने लंकापुरी जला डाली। तुम्हारे रहते हुए लंका का इतना बड़ा अपमान हो।

सॅय्यामर् सॅट्रार्क्कुम् इन्नाद सॅय्दपिन्
उय्या विळुमम् तरुम् ।। ३ ।।

सहज-दुष्ट[1] पीड़ा पहुँचाते, सदा अकारण हैं प्रतिकूल।
उनका भी अनिष्ट करना, अपने ही लिए दुःख का मूल ।। ३ ।।

अकारण पीड़ा पहुँचाने वाले दुष्ट शत्रु को भी हानि पहुँचाना तुम्हारे लिए अनन्त दुःखों का कारण होगा ।। ३ ।।

इन्ना सॅय्दारै ऑरुत्तल् अवर्नाण
नन्नयम् सॅय्दु विडल् ।। ४ ।।

अपराधी को क्षमादान से लज्जित करो, त्याग कर रोष।
क्षमादान का अहं बिसारो, भूलो सकल शत्रु के दोष ।। ४ ।।

पीड़ा पहुँचाने वालों को बदले में बजाय पीड़ा पहुँचाने के उनको क्षमा करके लज्जित करना अधिक बड़ा दण्ड है। [बुराई के बदले भलाई करना और] उसके अपराध और अपनी क्षमा [के गर्व] को भूल जाना श्रेयस्कर है ।। ४ ।।

अरिविन्नान् आहुव दुण्डो पिरिदिन्नोय्
तन्नोय्पोर् पोट्राक् कडै ।। ५ ।।

अगर न समझे पीर-पराई[2] को कोई निज पीर समान,
बलिहारी उस बुद्धिमान् की, हुआ अकारथ[3] उसका ज्ञान ।। ५ ।।

दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा के समान न समझ सके तो बुद्धि किस काम की ? ।। ५ ।।

इन्ना ऍन्नत्तान् उणर्न्दवै तुन्नामै
वेण्डुम् पिरन्कट् सॅयल् ।। ६ ।।

जो आचरण तुम्हें दुखदाई, जिन बातों से क्लेश अपार,
बचना सदा, किसी के प्रति भी करना कभी न वह आचार[4] ।। ६ ।।

जो बातें अपने लिए अपार दुखदाई हैं वह बातें दूसरों के प्रति करने से सदैव बचो ।। ६ ।।

ऍन्नैत्तानुम् ऍञ्ञान्रुम् याक्कुम् मन्नत्तानाम्
माणासॅय् यामै तलै ।। ७ ।।

किसी जीव को, किसी घड़ी भी, किसी भाँति देना नुकसान—
इससे बचना परम धर्म है, सब धर्मों में धर्म महान् ।। ७ ।।

---

१ स्वभाव से ही दुर्जन २ दूसरे की पीड़ा ३ व्यर्थ ४ व्यवहार।

अपनी जान में किसी भी प्राणी को, किसी अवसर पर, किसी भी प्रकार क्षति न पहुँचाना सब धर्मों में श्रेष्ठ धर्म है ॥ ७ ॥

तन्नुयिर्क् किन्नामै तान् अरिवान् ऍन्नॉलो
मन्नुयिर्क् किन्ना सॅयल् ? ॥ ८ ॥

जिसने दुख की चोट सही है, जिसने कभी सही है पीर,
दुख पहुँचाना अन्य जीव को—यह भावना न उसके तीर ॥ ८ ॥

जिस व्यक्ति ने दुःख उठाया है और उसे पीड़ा की अनुभूति हो चुकी है, वह किस प्रकार दूसरे प्राणी को पीड़ा पहुँचायेगा ? ॥ ८ ॥

पिऱर्किन्ना मुऱ्पहऱ् सॅय्यिट् ऱमविकन्ना
पिऱ्पहट् ऱामे वरुम् ॥ ९ ॥

आज किसी का बुरा करोगे, कल प्रतिफल[1] उसका तैयार ।
पर-अपकार[2] तुम्हारे हित में सिरजेगा अनिष्ट-संसार[3] ॥ ९ ॥

दोपहर को किसी को पीड़ा पहुँचाओगे, तो तीसरे ही पहर उससे अधिक पीड़ाएँ तुम्हारे सामने उपस्थित होंगी [कारण और कर्म का प्राकृतिक नियम है। एक बुराई अनेक बुराइयों को जन्म देती है। कुआँ खोदने वाले के लिए खाईं तैयार हो जाती है।] ॥ ९ ॥

नोय्ऍल्लाम् नोय्सॅय्दार् मेलवाम्; नोय्सॅय्यार्
नोयिन्मै वेण्डु पवर् ॥ १० ॥

अशुभ[4] किसी का किया, कि उपजे निज के लिए अशुभ के फन्द!
जो पर-अशुभ न मन में लाते, वे ही जन दुख से निर्द्वन्द ॥ १० ॥

किसी का अनिष्ट करोगे तो वह तुम्हारा दुष्कर्म तुम्हारे लिए अनेक अनिष्टों को जन्म देगा। जो किसी का अनिष्ट नहीं करते वह अनिष्टों से मुक्त रहते हैं [अर्थात् उन्हें क्लेश नहीं पहुँचता।] ॥ १० ॥

अदिकारम् (अध्याय) ३३

कॊल्लामै (अहिंसा)

अऱविऩै यादॅऩिर् कॊल्लामै; कोऱ्ऱल्
पिऱविऩै ऍल्लाम् तरुम् ॥ १ ॥

अहा ! अहिंसा परम धर्म है, हिंसा सदा धर्म-प्रतिकूल,
[किसी भाँति भी] जीवों की हत्या अनन्त दुःखों का मूल ॥ १ ॥

---

१ बदला २ दूसरे के साथ बुराई ३ असंख्य बुराइयाँ ४ अहित ।

धर्म क्या है ? अहिंसा ही परम धर्म है; क्योंकि हिंसा सकल बुराइयों का स्रोत है ॥ १ ॥

पहुत्तुण्डु पल्लुयिर् ओम्बुदल् नूलोर्
ताॅहुत्तवट्रुळ् एॅल्लाम् तलै ॥ २ ॥

सकल शास्त्र इस पर अभिमत[1] हैं, सब को जीने का अधिकार ।
सब धर्मों का सार, हमारे भोजन में सब भागीदार ॥ २ ॥

संसार की सभी आचार-संहिताओं की नीति का यह सार है कि मिल-बाँट कर खाओ और जीव मात्र की रक्षा करो [जो दूसरों को अंश दिये बिना अपने पेट खाता है वह चोर है। वह खाता नहीं बल्कि पेट में अंगारे भरता है।] ॥ २ ॥

ऑन्ऱाह नल्लदु कॉल्लामै; मट्ऱदन्
पिन्सारप् पॉय्यामै नन्ऱु ॥ ३ ॥

'करें न हिंसा कभी किसी की'—धर्मों में है धर्म महान्;
सत्यवादिता-सदृश धर्म का, बाद अहिंसा के (अ)स्थान ॥ ३ ॥

अहिंसा अच्छाइयों में सर्वोपरि अच्छाई है। उसके बाद झूठ बोलने से परहेज की गणना है ॥ ३ ॥

नल्ला रॅन्नप्पडुव दियादॅन्निन् यादॉन्ऱुम्
कॉल्लामै सूऴुम् नॅऱि ॥ ४ ॥

कभी किसी को क्षति पहुँचाना, किसी जीव का लेना प्रान ।
इससे बचना सिखलाता जो, वही जगत् में धर्म महान् ॥ ४ ॥

धर्म क्या है ? एक ही उत्तर है कि जो हिंसा से बचना सिखाये ॥ ४ ॥

निलैयञ्जि नीत्तारुळ् एॅल्लाम् कॉलैयञ्जिक्
कॉल्लामै सूऴ्वान् तलै ॥ ५ ॥

पुनर्जन्म के भय से, जग में जिन सन्तों ने लिया विराग,
उनमें सब से सफल श्रेष्ठ वे, जो करते हिंसा का त्याग ॥ ५ ॥

पुनर्जन्म के भय से संसार से संन्यास लेने वाले त्यागी-तपस्वियों में वही सर्वश्रेष्ठ है जो जीवहिंसा का परित्याग करता है ॥ ५ ॥

कॉल्लामै मेर्कॉण् डॉऴुहुवान् वाणाळ्मेल्
सॅल्लादु उयिरुण्णुम् कूट्रु ॥ ६ ॥

---

१ एकराय, सर्वसम्मत ।

कभी न हिंसा, सदा सुरक्षा सब जीवों की, जिसका अर्थ[1],
उस मृत्युञ्जय[2] के जीवन को लेने में यम[3] भी असमर्थ ॥ ६ ॥

निरंतर जीवों का आहार करने वाला यमराज भी उसके प्राण नहीं लेता जो हिंसा नहीं करता और अहिंसा को प्रोत्साहन देता है ॥ ६ ॥

तन्नुयिर् नीप्पिनुम् सॅय्यर्क तान्पिरिदु
इन्नुयिर् नीक्कुम् विनै ॥ ७ ॥

निज प्रानों की रक्षा-हित भी लेना नहीं अन्य का प्रान ।
हमको, उसको—सब जीवों को मोह प्रान का एक समान ॥ ७ ॥

अपने प्राणों पर संकट होने पर भी दूसरों की हत्या न करना चाहिए [क्योंकि उनको भी अपना जीव उतना ही प्यारा है जितना तुमको तुम्हारा जीव ।] ॥ ७ ॥

नन्नूराहुम् आक्कम् पॅरिदॅन्निनुम् सान्रोर्क्कुक्
कॉन्नूराहुम् आक्कम् कडै ॥ ८ ॥

बलि देने, हत्या करने से यद्यपि निधि अनन्य हों सिद्ध,
विज्ञ-सदाशय[4] सदा समझते जीव-हनन[5] को महा निषिद्ध ॥ ८ ॥

बलिदान (क़ुर्बानी) में जीवों की भेंट चढ़ाना भले ही उत्तम फलदाई हो, परंतु साधुजन इस हिंसा को भी पातक ही मानते हैं ॥ ८ ॥

कॉलैविनैयर् आहिय माक्कळ् पुलैविनैयर्
पुन्मै तॅरिवा रहत्तु ॥ ९ ॥

हिंसा जिनकी वृत्ति[6]—अधम हैं, निर्मम[7] हैं ऐसे जन दुष्ट—
इनके लिए विवेकी पुरुषों की है यही धारणा पुष्ट ॥ ९ ॥

जीवहिंसा पर बसर करने वाले निर्मम जन, दुष्ट और अधम कोटि के हैं—ऐसा बुद्धिमानों का मत है ॥ ९ ॥

उयिरुडम्बिन् नीक्कियार् ऍन्ब सॅयिरुडम्बिर्
सॅल्लात्ती वाळ्क्कै यवर् ॥ १० ॥

हिंसा से जीविका कमाते, कभी न ऐसों का कल्यान—
रोगी, दुखी, दरिद्री होकर सहते सदा घोर अपमान ॥ १० ॥

हिंसा पर जीने वाले व्यक्ति निर्धन, अपमानित और दुखी-रोगी ही रहते हैं ॥ १० ॥

---

१ अफीष्ट २ मृत्यु को जीतने वाले ३ यमराज ४ ज्ञानी और सज्जन
५ जीव-हिंसा ६ रोज़ी ७ निर्दय ।

अदिकारम् (अध्याय) ३४

निलैयामै (क्षण-भंगुरता)

निल्लाद वट्रै निलैयित्त एॅन्रुणरुम्
पुल्लरि वाण्मै कडै ॥ १ ॥

इस दुनिया के नाम-रूप को नित्य[1] समझते जो इन्सान,
भ्रमित कर रहा है उनको, यह उनका निपट अधम अज्ञान ॥ १ ॥

इस परिवर्त्तनशील संसार [के नाम रूप] को शाश्वत अर्थात् सदैव क़ायम रहने वाला समझने वाले लोग अधम कोटि के अज्ञानी हैं ॥ १ ॥

कूत्ताट्टु अवैक्कुळात् तट्रे पॅरुञ्जॅल्वम्;
पोक्कुम् अदुविळिन् दट्रु ॥ २ ॥

किसी खेल के मजमे के अनुरूप सम्पदा का व्यवहार;
जुटने में लगता बिलम्ब, पर नहीं बिखरते लगती बार[2] ॥ २ ॥

तमाशा [अथवा किसी खेल] को देखने के लिए इकट्ठा मजमा (भीड़) के समान धन धीरे-धीरे जुटता है; और तमाशा समाप्त होते ही तुरंत भीड़ के छँट जाने के समान वह [धीरे-धीरे जुटाया हुआ] धन ग़ायब हो जाता है ॥ २ ॥

अऱ्का इयल्विट्रुच् चॅल्वम्; अदुपॅट्राल्
अऱ्कुब आङ्गे सॅयल् ॥ ३ ॥

धन चंचल के अधिपति बनने का यदि कभी मिले संयोग,
अमर सुफल देने वाले कर्मों में करो तुरंत प्रयोग ॥ ३ ॥

धन [सदैव चलायमान और] नाशवान् है, इसलिए उस धन के साधन से ऐसे सत्कार्य कर चलो जिनका सुपरिणाम तुम्हारे लिए स्थायी रहे ॥ ३ ॥

नाळॅन्न ऑन्रुपोऱ् काट्टि उयिरीरुम्
वाळ दुणर्वार्प् पॅरिन् ॥ ४ ॥

'दिन' मोहक है, प्रति दिन का दर्शन हमको देता उल्लास ।
किन्तु दिवस की आरी करती नित्य हमारी आयु विनाश ॥ ४ ॥

देखने में 'दिन' समय की एक नाप है [और नित्य उसके प्राप्त होने पर हम प्रसन्न होते हैं,] परंतु बुद्धिमान् लोगों की दृष्टि में 'दिन' सचमुच एक वह आरी है जो नित्य आयु का एक अंश काटती रहती है ॥ ४ ॥

---

१ सदा रहने वाला, शाश्वत २ समय, देर ।

नाच्चॅट्रु विक्कुण्मेल् वारामुऩ् नल्विऩै
मेऱ्चॅऩ्रु सॅय्यप् पडुम् ॥ ५ ॥

बोल बन्द हो, मृत्यु-समय जब छूट रही हो अंतिम श्वास,
जीवन रहते पुण्य कर चलो, मिले न तुमको यम का त्रास[1] ॥ ५ ॥

बोल बन्द होने और मरते समय अन्तिम हिचकी आने से पहले समय रहते ही [सचेत रहो और] सत्कर्म कर चलो जो मरणोपरांत भी तुम्हारे काम आयें ॥ ५ ॥

नॅरुनल् उळऩ्ऑरुवऩ् इऩ्ऱिल्लै ऍऩ्ऩुम्
पॅरुमै युडैत्तिव् वुलहु ॥ ६ ॥

कल तक था प्रत्यक्ष, न उसका आज जगत् में नाम-निशान।
इस दुनिया की यही असलियत! भरम रहा है क्यों, इन्सान! ॥ ६ ॥

अभी कल तक जो था, आज ही उसका नाम निशान नहीं! इस [नश्वर, अस्थायी] संसार की यही अद्भुत महिमा है! ॥ ६ ॥

ऑरुपॉऴुदुम् वाऴ्वदु अऱियार् ; करुदुब
कोडियुम् अल्ल पल ॥ ७ ॥

कल की ख़बर न किन्तु बाँधता जीवन के अगणित बन्धान[2]—
मृगमरीचिका[3] में कैसा है भरम रहा मानव नादान! ॥ ७ ॥

हमको अगले क्षण की ख़बर नहीं [कि एक मिनट बाद हम रहेंगे भी या नहीं,] किन्तु करोड़ों योजनाओं [और सुनहले स्वप्नों] में हमारा मन उमंगें लेता रहता है ॥ ७ ॥

कुडम्बै तनित्तुऑऴियप् पुट्पऱन् दट्ऱे
उडम्बॉडु उयिरिडै नड्पु ॥ ८ ॥

नव-पखेरुओं[4] को अण्डे को तजने में जिस भाँति न मोह,
उसी भाँति तन और जीव का एक दिवस है अमिट बिछोह[5] ॥ ८ ॥

आत्मा का शरीर से बस वैसा ही सम्बन्ध है जैसा पंख उगते ही पखेरू का अण्डे से [कि उसको खोखला छिलका मात्र करके उसका परित्याग कर देता है।] ॥ ८ ॥

उऱङ्गुवदु पोलुम् साक्का डुऱङ्गि
विऴिप्पदु पोलुम् पिऱप्पु ॥ ९ ॥

---

१ मृत्यु-यातना २ मन्सूबे ३ सुनहले सपने ४ चिड़िया के पंख-उगते बच्चे
५ निश्चय ही वियोग होना है।

मृत्यु नहीं कुछ और—सत्य में वह प्रगाढ़ निद्रा का रूप।
उस प्रगाढ़ निद्रा से जगना—पुनर्जन्म का यही स्वरूप ॥ ९ ॥

मृत्यु प्रगाढ़तर [हमारी नित्य की नींद से गहरी और अधिक स्थायी] निद्रा के समान है; और जन्म उस [प्रगाढ़ निद्रा] से जागने के समान है ॥ ९ ॥

पुक्किल् अमैन्दिन्रु कॉल्लो उडम्बिनुळ्
तुच्चिल् इरुन्द उयिर्क्कु ! ॥ १० ॥

कुछ दिन का मेहमान[1] आत्मा का शरीर है क्षणिक निवास।
तन में तब तक, अन्य न जब तक उसको मिल जाता आवास[2] ॥ १० ॥

आत्मा इस शरीर में अतिथि के समान है, क्योंकि उसका कोई स्थायी निवास नहीं है [और वह एक शरीर में उसी घड़ी तक है जिस तक उसे अन्य शरीर के आश्रय का अवसर नहीं आता।] ॥ १० ॥

अदिकारम् (अध्याय) ३५

तुऱवु (त्याग, संन्यास)

यादनिन् यादनिन् नीङ्गियान् नोदल्
अदनिन् अदनिन् इलन् ॥ १ ॥

त्याग 'वस्तु' का नहीं, वस्तु का मोह-त्याग ही सच्चा त्याग।
सचमुच वही स्वतंत्र दुःख से, जिसने तजा विषय-अनुराग[3] ॥ १ ॥

संसार की वस्तुओं के प्रति मोह के बन्धन से अपने को यदि तुमने अलग कर लिया है, तो मानो तुमने सचमुच अपने को सारे दुःखों से स्वतंत्र कर लिया [संसार में आसक्ति न रहना ही सच्चा त्याग अर्थात् संन्यास है। आसक्ति ही दुःख और बन्धन का मूल है; जितना ही उससे छुटकारा पाओगे उतना ही आनन्द प्राप्त करोगे।] ॥ १ ॥

वेण्डिनुण् डाहत् तुऱक्क; तुऱन्दपिन्
ईण्डियऱ् पाल पल ॥ २ ॥

वे अनन्त सुख के अधिकारी, जिन्हें न विषयों में आसक्ति।
रहते समय, इस लिए जग के मोहजाल से पाओ मुक्ति ॥ २ ॥

यदि अनन्त सुख चाहते हो तो इन सांसारिक नाशवान् सुखों का मोह तुरंत त्याग दो ॥ २ ॥

---

१ अतिथि २ रहने-ठहरने का स्थान ३ सांसारिक सुखों में आसक्ति।

अडल्वेण्डुम् ऐन्दन् पुलत्तै विडल्वेण्डुम्
वेण्डिय वॆल्लाम् ऑरुङ्गु ॥ ३ ॥

ज्ञान-इन्द्रियों पर संयम पुनि विषय-वासनाओं का त्याग,
पहला है कर्त्तव्य कि दुख के इन मूलों से रहे विराग ॥ ३ ॥

पञ्च ज्ञानेन्द्रियों पर क़ाबू करके [शब्द रूप, रस, गंध, स्पर्श के विकारों से मुक्ति पाओ और समस्त] वासनाओं का त्याग करो ॥ ३ ॥

इयल्बाहुम् नोन्पिर्कॊन् रिल्मै; उडैमै
मयलाहुम् मट्रुम् पॆयर्त्तु ॥ ४ ॥

सब से मोह हटा कर उनके संग्रह पर न कभी हो दृष्टि,
किञ्चित् संग्रह मोहजाल बन, उपजाता दुःखों की सृष्टि ॥ ४ ॥

सभी वस्तुओं की ओर से आसक्ति हटा कर, उसके संग्रह अथवा उन पर अधिकार की भावना का त्याग ही वस्तुतः संन्यास है। थोड़ा संग्रह अथवा थोड़ा स्वामित्व भी विक्रय और मोह को उत्पन्न कर बन्धन में फँसाता है ॥ ४ ॥

मट्रुम् तॊडर्प्पाडु ऍवन्कॊल् ? पिऱप्परुक्कल्
उट्राक्कु उडम्बुम् मिहै ॥ ५ ॥

नाना जन्मों से बचने में क्या कम बाधक अधम शरीर।
अन्य बन्धनों में फिर अपने को क्यों जकड़ बढ़ावें पीर ॥ ५ ॥

बार-बार जन्म लेने से मुक्ति पाने के हेतु आत्मा के लिए यह शरीर [ही क्या कम] बाधक है; फिर अन्य बन्धनों में अपने को जकड़ने से क्या लाभ ? ॥ ५ ॥

यान्ऍन्न दॆन्नुम् सॆरुक्करुप्पान् वान्नोर्क्कु
उयर्न्द उलहम् पुहुम् ॥ ६ ॥

अहंभाव—'यह मैं हूँ, मेरा'—जिसने काट दिया यह फन्द,
उसको सुलभ देव-दुर्लभ है शाश्वत[1] ब्रह्मधाम-आनन्द ॥ ६ ॥

मैं और मेरा—इस अहम् भाव के पाश को जो काट डालता है, वही देवदुर्लभ आनन्दलोक को प्राप्त करता है ॥ ६ ॥

पट्रि विडाअ इडुम्बैहळ् पट्रिनैप्
पट्रि विडाअ तवर्क्कु ॥ ७ ॥

---

१ सदैव रहनेवाला।

माया के बन्धन से कस कर चिपका जो रहता इन्सान,
उसे जकड़ता नाना क्लेशों में उसका विमूढ़ अज्ञान ॥ ७ ॥

संसार से मोह रूपी भ्रमजाल में जिसने अपने को जकड़ रखा है, उसको नाना दुःख अपने में जकड़ कर कभी उसको दुःखों से मुक्त न होने देंगे ॥ ७ ॥

तलैप्पट्टार् तीरत् तुऱन्दार्; मयङ्गि
वलैप्पट्टार् मट्ऱै यवर् ॥ ८ ॥

विषयों से संलग्न न बिलकुल, उसको खुला मुक्ति का द्वार,
अन्य सभी जन दुख-जंजालों से न कभी पाते उद्धार ॥ ८ ॥

पूर्ण संन्यासी [अर्थात् वासनाओं में तनिक भी संलग्न न होने वाला व्यक्ति] ही मुक्ति को प्राप्त करता है; अन्य जन सदैव भ्रमजाल में फँसे रहते हैं ॥ ८ ॥

पट्ऱट्ऱ कण्णे पिऱप्परुक्कुम्; मट्ऱु
निलैयामै काणप् पडुम् ॥ ९ ॥

पुनर्जन्म से मुक्त, जिन्होंने मायापाश कर दिया छिन्न,
शेष जन्मते-मरते, रहते सदा भोगते योनि विभिन्न ॥ ९ ॥

संसार के मोह रूपी बन्धन से रहित आत्मा ही पुनर्जन्म से मुक्त होता है, अन्यथा नाशवान् जगत् में बार-बार जन्म-मरण के चक्र में भरमता रहता है ॥ ९ ॥

पट्रुह पट्ऱट्ऱान् पट्ऱिनै अप्पट्ऱैप्
पट्रुह पट्रु विडर्कु ॥ १० ॥

यदि तुझको है शौक कि बन्धन ही में रहे सदा परतन्त्र,
सकल बन्धनों से बचने को, बँध उससे जो परमस्वतंत्र[1] ॥ १० ॥

उसी अनन्त शक्ति से अपने को संलग्न करो जो समस्त बन्धनों से असंलग्न है। उससे मन को बाँधने पर सारे बन्धनों से छुटकारा मिल जायगा ॥ १० ॥

अदिकारम् (अध्याय) ३६

मॅय्युणर्दल् (सत्यदर्शन)

पॉरुळल्ल वट्ऱैप् पॉरुळॅन् ऱुण्ऱुम्
मरुळान्ऩाम् माणाप् पिऱप्पु ॥ १ ॥

---

१ सर्वबन्धनरहित परम-स्वतंत्र परमात्मा।

नित्य बदलने-मिटनेवाला, लुभावना यह सुख-संसार—
दुखी मोह में भ्रमित जीव जन्मता जगत् में बारम्बार ॥ १ ॥

मिथ्या और असार वस्तुओं को सत्य और सारयुक्त समझना [अपने जीवन को मिथ्या सुखों के पीछे लगा देना]—यह अज्ञान और भ्रम ही पुनर्जन्म [तथा संसार के अनेक दुःखों] का कारण है ॥ १ ॥

इरुळ्नीङ्गि इन्बम् पयक्कुम् मरुळ्नीङ्गि
मासऱु काट्चि यवर्क्कु ॥ २ ॥

निर्मल-बुद्धि-प्रबुद्ध[1] जिन्होंने मोह-तिमिर[2] का किया विनाश,
रहते देह, विदेह[3]; उन्हींको मिलता परमानन्द-प्रकाश ॥ २ ॥

भ्रमों से रहित निर्मल दृष्टि वाले व्यक्ति ही अज्ञानरूपी अन्धकार से निकल कर परमानन्द के प्रकाश को प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥

ऐयत्तिन् नीङ्गित् तॅळिन्दार्क्कु वैयत्तिन्
वानम् नणिय तुडैत्तु ॥ ३ ॥

शुद्धाशुद्धविवेक[4] जिन्हें है, मेट दिया संशय का नाम,
धरा-धाम से अधिक निकट है उनके लिए स्वर्ग का धाम ॥ ३ ॥

सत्य और असत्य को पहचानने की बुद्धि रखने वाले संशयरहित आत्माओं के लिए, पृथ्वी पर रहते हुए भी, दिव्यलोक अधिक समीप है ॥ ३ ॥

ऐयुणर् वॅय्दियक् कण्णुम् बयमिन्ऱे
मॅय्युणर् विल्ला दवर्क्कु ॥ ४ ॥

पञ्चेन्द्रिय का बोध भले है, उन पर संयम तुम्हें महान् !
किन्तु व्यर्थ वह यम-संयम है, उपजा यदि न 'सत्य' का ज्ञान ॥ ४ ॥

अपनी पञ्च ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त समस्त ज्ञान पर अधिकार होने पर भी यदि 'सत्य' के दर्शन नहीं हुए हैं तो ऐसे जनों को उनका इन्द्रिय-ज्ञान लाभ नहीं पहुँचता ॥ ४ ॥

ऍप्पॉरुळ् ऍत्तन्मैत् तायिनुम् अप्पॉरुळ्
मॅय्प्पॉरुळ् काण्बदु अऱिवु ॥ ५ ॥

नाम, रूप, गुण पर न मुग्ध हो, देखें उसका सत्य-स्वरूप ।
सब के पीछे परमसत्य है एक—यही है ज्ञान अनूप ॥ ५ ॥

---

१ विवेक-बुद्धि वाले शुद्धात्मा २ मोह रूपी अन्धकार ३ शरीर रहते हुए भी शरीर में आसक्ति नहीं ४ वास्तव में क्या सत्य है और क्या भ्रम है, इसका ज्ञान ।

वस्तु का कोई भी रूप, कोई भी प्रकार हो, उसके पीछे-पीछे सत्य को देख लेना ही सच्चा ज्ञान है ॥ ५ ॥

कट्रिण्डु मॅय्प्पॉरुळ् कण्डार् तलैप्पडुवर्
मट्रिण्डु वारा नॅऱि ॥ ६ ॥

परमसत्य का दर्शन पाकर, जग-माया से जो स्वच्छन्द,
उस ज्ञानी के लिए जगत् में पुनर्जन्म का मारग बन्द ॥ ६ ॥

पृथ्वी पर जिन्होंने सत्य का ज्ञान प्राप्त कर लिया है, वे आवागमन से रहित हो जाते हैं ॥ ६ ॥

ओर्त्तुळ्ळम् उळ्ळ दुणरिन् ऑरुतलैयाप्
पेर्त्तुळ्ळ वेण्डा पिऱप्पु ॥ ७ ॥

मनन और चिन्तन के द्वारा जिसने सत्य लिया पहचान,
पुनर्जन्म के भ्रमरजाल से वह उन्मुक्त[1] हुआ मतिमान ॥ ७ ॥

जिसने [जन्म के हेतु और रहस्य को जान लिया है और] वास्तविक सत्य को चिन्तन-मनन द्वारा भली प्रकार समझ लिया है, वह पुनर्जन्म की स्थिति में नहीं आता ॥ ७ ॥

पिऱप्पॅन्नुम् पेदैमै नीङ्गच् चिऱप्पॅन्नुम्
सॅम्बॉरुळ् काण्बदु अऱिवु ॥ ८ ॥

परम-आत्मा अविनाशी के गौरव का होते ही भान[2],
जन्म-मरण का, भवबन्धन का होता छिन्न-भिन्न अज्ञान ॥ ८ ॥

आत्मा के दिव्य स्वरूप को पहचानो; इससे अविद्या का नाश होगा और जन्म के बन्धन और तज्जन्य दुःखों से छुटकारा होगा ॥ ८ ॥

सार्पुणर्न्दु सार्बु कॅडआॅळुहिन् मट्रळित्तुच्
चार्दरा सार्दरुम् नोय् ॥ ९ ॥

सकल सहारे झूठे हैं, बस एक सहारा है भगवान् ।
उसी सहारे से घातक दुःखों से बच सकता इन्सान ॥ ९ ॥

यदि सब आश्रयों को त्याग कर एक मात्र सत्यस्वरूप का परमाश्रय ग्रहण कर लिया जाय, तो सारे दुःखों से मुक्ति निश्चित है ॥ ९ ॥

काम्म् वॅहुळि मयक्कम् इवैमून्ऱन्
नाम्म् कॅडक्कॅडुम् नोय् ।

---

१ बन्धन से छूट गया २ आभास, ज्ञान ।

काम, क्रोध, यह मोह—शत्रु हैं, यदि इनका कर सके विनाश,
सब दुखों से मुक्ति सुलभ है निश्चित् परमानन्द-प्रकाश ॥ १० ॥

काम, क्रोध, मोह—इन तीन शत्रुओं का यदि नाश कर सको, तो तुम सारे क्लेशों से मुक्त हो जाओगे ॥ १० ॥

अदिकारम् (अध्याय) ३७

अवा अरुत्तल् (वासना-मूलोच्छेद)

अवाएँन्ऱ्ब एँल्ला उयिर्क्कुम् एँञ्ञान्ऱुम्
तवाअप् पिऱप्पीऩुम् वित्तु ॥ १ ॥

नाना जन्मों, विविध योनियों में सर्वदा भरमता जीव—
एक 'वासना' का अंकुर बस उपजाता यह दुःख अतीव ॥ १ ॥

वासना ही बीज है जिससे प्राणी बार-बार जन्म लेता [और संसार के नाना दुःखों को भोगता] है ॥ १ ॥

वेण्डुङ्गाल् वेण्डुम् पिऱवामै; मट्ऱु
वेण्डामै वेण्ड वरुम् ॥ २ ॥

अगर 'चाहना' ही प्रिय है, तो चाहो 'पुनः न होवे जन्म'—
आवागमन-मुक्ति[1] संभव जब करो कामना तज कर कर्म ॥ २ ॥

यदि कामना ही करना है तो वह कामना करो जिससे पुनर्जन्म से छुटकारा मिले। निष्काम भावना की कामना [और साधना] से ही आवागमन से मुक्ति सम्भव है ॥ २ ॥

वेण्डामै यऩ्ऩ विळुच्चॆल्वम् ईण्डिल्लै;
याण्डुम् अक्दोप्प दिल् ॥ ३ ॥

जिसे बासना से छुटकारा, जिसकी वृत्ति[2] सदा निष्काम,
धराधाम ! सुरधाम ! कहाँ है इससे बढ़ कर दृव्य ललाम? ॥ ३ ॥

वासनाओं से मुक्ति—इससे बड़ा धन न कोई इस लोक में सुलभ है और न परलोक में ॥ ३ ॥

तूउय्मै एँऩ्ब दवाविऩ्मै; मट्ऱु
वाअय्मै वेण्ड वरुम् ॥ ४ ॥

मुक्त वही, वह निर्विकार है, जिसकी सकल वासना दग्ध
'परमसत्य' की विमल साधना से वह 'मुक्ति तत्व' उपलब्ध ॥ ४ ॥

---

१ बार-बार जन्म-मरण से छुटकारा २ मन की स्थिति।

निष्काम होना ही बन्धन-रहित अर्थात् मुक्त होना है। परम सत्य की निष्ठापूर्वक साधना होने पर ही वह निष्काम भाव उपलब्ध होता है [अर्थात् अन्य सांसारिक वासनाओं का त्याग सरल हो जाता है।] ॥ ४ ॥

अट्ऱवर् ऍन्बार् अवावट्ऱार्; मट्ऱैयार्
अट्ऱाह अट्ऱ दिलर् ॥ ५ ॥

त्यागी वही स्वतंत्र, जिन्होंने किया वासनाओं का त्याग;
वृथा त्याग, यदि रहा लेश भी इच्छाओं के प्रति अनुराग ॥ ५ ॥

अपनी इच्छाओं को वश में कर लेने वाले ही लोग वस्तुतः संन्यासी हैं। कामनाओं के त्याग के बिना, अन्य सारे त्याग अधूरे [और जन्म-मरण के चक्र से छूटने के लिए काफी नहीं] हैं; वस्तुओं के त्याग की अपेक्षा वस्तुओं की आसक्ति का त्याग सच्चा त्याग है।] ॥ ५ ॥

ऍञ्जव दोरुम् अऱ्ऱे; ऑरुवऩै
वञ्जिप्प दोरुम् अवा ॥ ६ ॥

मानव को ठगता-भरमाता मोह-लालसा का यह रूप।
रहो सचेत, बचो इस रिपु से, यही धर्म का श्रेष्ठ स्वरूप ॥ ६ ॥

लालसा-लोलुपता सबसे अधिक भरमाने और ठगने वाली पृवृत्ति है। सदैव उससे भय खाओ और उससे बचते रहो—यही सर्वोपरि धर्म है ॥ ६ ॥

अवाविऩै आट्ऱ अरुप्पिट् ऱवाविऩै
तान्वेण्डुम् आट्ऱान् वरुम् ॥ ७ ॥

सकल वासनाओं से जिसने अपने को कर लिया स्वतंत्र
हुआ अमर वह, ऋद्धि-सिद्धि-निधि—सब कुछ हैं उसके परतंत्र ॥ ७ ॥

इच्छाओं का दमन करो, बस मुक्ति के कपाट तुम्हारे लिए सब ओर से खुले हैं ॥ ७ ॥

अवाविल्लार्क् किल्लाहुम् दुन्बम्; अक्दुण्डेल्
तवाअदु मेन्मेल् वरुम् ॥ ८ ॥

दमन वासनाओं का करते—उनको नहीं दुःख का लेश।
दास वासनाओं के मानव सहते सदा क्लेश पर क्लेश ॥ ८ ॥

वासनाओं से रहित व्यक्तियों को दुःख और क्लेश का लेश नहीं रहता; वासनाओं में ग्रस्त व्यक्तिओं पर दुःखों की बाढ़ आती रहती है ॥ ८ ॥

इन्बम् इडैयऱा दीण्डुम् ; अवावॅन्नुम्
तुन्बत्तुट् टुन्बम् कॅडिन् ॥ ९ ॥

सब दुःखों की मूल 'वासना' का जब होता बीज-विनाश,
जीवन में ही सुलभ शाश्वत[1] सुख का परमानन्द-प्रकाश ॥ ९ ॥

सन्तापों में सन्ताप, सारे क्लेशों की जड़ इस वासना [रूपी शत्रु] का यदि दमन कर सको, तो इसी जीवन में यहीं अनन्त परमानन्द की प्राति कर सकते हो ॥ ९ ॥

आरा इयऱ्के अवानीप्पिऩ् अऩ्ऩिलैये
पेरा इयऱ्के तरुम् ॥ १० ॥

सदा अतृप्त-लालसा[2] की यदि एक बार मिट गई पिपास,
सदा तृप्ति[3] के अमर-सरोवर-सुख का मानो हुआ विकास ॥ १० ॥

कभी न तृप्त होने वाली इच्छा [रूपी शत्रु] से छुटकारा पाते ही। कभी न विलग होने वाले परमानन्द की स्थिति प्राप्त हो जाती है ॥ १० ॥

अदिकारम् (अध्याय) ३८
ऊळ् (प्रारब्ध)

आहूळाल् तोऩ्ऱुम् असैविऩ्मै कैप्पॉरुळ्
पोहूळाल् तोऩ्ऱुम् मडि ॥ १ ॥

जब सौभाग्य उदय होता है, यत्न और श्रम सफल सदैव।
अकर्मण्य[4]-आलसी सुनिश्चित होना, जब समीप दुर्दैव[5] ॥ १ ॥

[व्यक्ति के जीवन में] सौभाग्य के उदय होने से यत्न और श्रम का उदय होता है; दुर्भाग्य के उदय होने से ही अकर्मण्यता और आलस्य का आविर्भाव होता है ॥ १ ॥

पेदैप् पडुक्कुम् इळवूळ् अऱिवहट्ऱुम्
आहलूळ् उट्ऱ्क् कडै ॥ २ ॥

सौम्य[6] और सद्बुद्ध मूर्ख बन जाते जब अदृष्ट[7] प्रतिकूल।
होते मूर्ख, प्रबुद्ध-ज्ञानमय, जब उनका अदृष्ट अनुकूल ॥ २ ॥

प्रारब्ध प्रतिकूल होने पर बुद्धिमान् भी मूर्ख और जड़ हो जाते हैं; प्रारब्ध के अनुकूल होने पर मन्दबुद्धि जनों की भी बुद्धि प्रखर और उन्नतिशील हो जाती है ॥ २ ॥

नुण्णिय नूल्पल कऱ्पिनुम् मट्ऱुन्दन्
उण्मै अऱिवे मिहुम् ॥ ३ ॥

---

१ सदैव रहने वाला २ कभी न बुझने वाली ३ सदैव रहने वाला स्थायी शान्ति-सन्तोष ४ निकम्मा ५ बुरी तकदीर ६ शान्त बुद्धि वाला ७ भाग्य।

'सहज-बुद्धि'—कर्मों के फल जो पाई पूर्वजन्म-अनुसार,
मनन-अध्ययन कितना भी हो, उसके आगे सब बेकार ॥ ३ ॥

विद्याओं और शास्त्रों का कितना ही सूक्ष्म अध्ययन क्यों न किया हो, किन्तु व्यक्ति की अपनी सहज स्वाभाविक बुद्धि ही प्रबल रहेगी। [अर्थात् पिछले कर्मों के संस्कारों से प्राप्त बुद्धि के आगे सारे यत्न शिथिल साबित होंगे] ॥ ३ ॥

इरुवे ऱुलहत् तियऱ्कै; तिरुवेऱु
तॅळ्ळियर् आदलुम् वेऱु ॥ ४ ॥

दो स्वभाव जग में होते हैं, पिछले कर्मों के अनुरूप—
एक पुजारी धन-वैभव के, एक ज्ञान-विद्या के रूप ॥ ४ ॥

पिछले कर्मों के प्रतिफल-स्वरूप संसार में दो प्रकार के स्वभाव होते हैं—कोई धन-वैभव का अर्जन करते हैं, कोई विद्या और ज्ञान का। [यत्न करने पर भी ज़रूरी नहीं कि बुद्धिमान् धनी भी हो अथवा धनवान् बुद्धिमान् भी हो जाय—कर्मानुसार भाग्य बन चुका है] ॥ ४ ॥

नल्लवै ऍल्लाम् तीयवाम्; तीयवुम्
नल्लवाम् सॅल्वम् सॅयऱ्कु ॥ ५ ॥

धन-अर्जन[1] में यत्न और श्रम यद्यपि करते एक समान,
भाग्यवान हैं सफल, अभागे विफल सदा होते इन्सान ॥ ५ ॥

अच्छे और बुरे पिछले कर्मों ही के प्रभाव से समृद्धि और सफलता का रूप बनता है। अच्छे से अच्छे प्रयत्न भी दैव प्रतिकूल होने पर व्यर्थ जाते हैं, और दैव अनुकूल होने पर सामान्य प्रयास से सहज ही सफलता हाथ लगती है ॥ ५ ॥

परियिनुम् आहावाम् पालल्ल; उय्त्तुच्
चॉरियिनुम् पोहा तम ॥ ६ ॥

अगर भाग्य अनुकूल, बिखेरा-बिछुड़ा भी धन आता हाथ।
अगर भाग्य प्रतिकूल, हाथ का आया धन होता बेहाथ ॥ ६ ॥

विधि का विधान न होने पर सारे यत्नों के बावजूद अपना सब कुछ बेहाथ हो जाता है; और विधान होने पर सारा विहित अपने लिए अनायास ही उपस्थित हो जायगा ॥ ६ ॥

वहुत्तान् वहुत्त वहैयल्लार् कोडि
ताॅहुत्तार्क्कुम् तुय्त्तल् अरिदु ॥ ७ ॥

---

१ धन कमाने में।

भले अपरिमित[1] धन के स्वामी किन्तु न कर सकते उपभोग!
विना विधाता के विधान के सुख का है दुर्लभ संयोग ॥ ७ ॥

अपरमित धन का संग्रह होने पर भी, यदि भाग्य में नहीं है तो, उसका उपभोग दुर्लभ है; [और यदि भाग्य में विहित है तो यत्न न करने पर भी सारा सौभाग्य सुरक्षित रहेगा] ॥ ७ ॥

तुऱप्पार्मन् तुप्पुर विल्लार् उऱ्ऱ्पाल
ऊट्टा कळि युमॅनिन ॥ ८ ॥

विना 'त्याग' के सहज भाव में त्यागी बन जाते धनहीन !
अगर भाग्य में लिखा न होता उन्हें बिताना जीवन दीन ॥ ८ ॥

धन और वैभव से हीन लोग तो तुरंत त्यागी और संन्यासी होकर परमानन्द प्राप्त कर लेते, यदि उनके भाग्य में दुखी-दरिद्र रहकर संसार के मोहजाल में ही फँसे रहना न लिखा होता। [अन्यथा जिसके पास त्यागने के लिए सुख-सम्पत्ति है ही नहीं, उसको इस दुःख भरे संसार से मोह क्यों होता।] ॥ ८ ॥

नन्ऱाङ्गाल् नल्लवाक् काण्बवर् अन्ऱाङ्गाल्
अल्लर् पडुव दॅवन् ? ॥ ९ ॥

हम अपने सौभाग्य-सुफल[2] का हँस-हँस कर करते उपभोग;
उदय हुआ दुर्भाग्य, कुफल[3] से क्यों विराग है? क्यों अनुयोग?[4] ॥ ९ ॥

सौभाग्य (सत्कर्म) के उदय होने पर सुन्दर प्रतिफलों का मनुष्य स्वागत करता है और उनका आनन्द भोगता है; किन्तु दुर्भाग्य (अपकर्म) के बुरे फलों की प्राप्ति होने पर उसको क्यों शिकायत है और उनसे वह क्यों भागना चाहता है। [क्या यह मनुष्य का अन्याय नहीं है ?] ॥ ९ ॥

ऊळिऱ् पॅरुवलि यावुळ ? मट्ऱॅन्ऱु
सूळिनुम् दान्मुन् दुरुम् ॥ १० ॥

अहा! भाग्य से प्रबल कौन है ? मानव सदा भाग्य-आधीन!
सञ्चित[5] से संचालित[6] मानव! कितना ही हो कुशल-प्रवीन ॥ १० ॥

मानव के सञ्चितों (कृत शुभाशुभ कर्मों के प्रतिफलों) से अधिक प्रबल कौन है ? मनुष्य की सारी योजनाओं और कुशलताओं पर उसके भाग्य का अंकुस रहता है ॥ १० ॥

---

१ अपार २ अच्छे भाग्य का अच्छा फल ३ बुरे भाग्य का बुरा फल
४ शिकायत ५ पिछले जन्म में किये हुए कर्म ६ चलाया जाता है।

नाली के किनारे-किनारे दूब इस ख़ूबसूरती से जमाई गई है कि उसकी शाख़ों ने अक्सर पानी की सतह पर साया कर लिया है। चमन-बन्दी हमवार तख़्ते पर नहीं है। ज़मीन पहले हमवार थी, मगर उससे असली बीहड़ ज़मीन का नमूना बनाया है। उसमें जाबजा कंकरों की पहाड़ियाँ बनाई गई हैं। वह बिलकुल असली मालूम होती हैं। बाज़ मशहूर पहाड़ी मुक़ाम की नक़ल मिर्ज़ा ने बिलकुल पैमाने से नाप कर बनाई है। ज़मीनॅ मज़रुअ[१] का क़िता बहुत बड़ा और बिलकुल हमवार है। यह क़िता ज़मीन का बारह महीने सरसब्ज़ रहता है। पानी के बरहों[२] के किनारे तक बेकार नहीं छोड़े। कोई न कोई शै हर फ़स्ल के मुवाफ़िक़ हर जगह बोई जाती है। मिर्ज़ा आबिदहुसैन की सवानेःउम्री[३] तमाम नहीं हो सकती, जब तक इनके बाज़ ख़ुतूत जो हमने बड़ी मुश्किल से फ़राहम किये हैं, मय उन ख़तों के जिनके जवाब में वह लिखे गए हैं, उसके साथ शामिल न कर दें। हम इस किताब के साथ उनका फ़ोटो भी ज़रूर शाया करते मगर उसकी हमें इजाज़त नहीं है। लेकिन हम इस मौक़े पर उनके शमाइलें ज़ाहरी[४] का एक नक्शः बज़रिये अल्फ़ाज़ खींचे देते हैं। इस मौक़े पर हम मिर्ज़ा साहब को गोया अपने नाज़रीन से बिल्मुशाहदः तआरुफ़[५] कराये देते हैं।

मिर्ज़ा आबिदहुसैन का सिनॅ शरीफ़ अब तक़रीबन पचास साल का है। मगर वजूए एहतियात और जफ़ाकशी का यह नतीजा है कि वह बिल्कुल नौजवान मालूम होते हैं। गन्दुमी[६] रंग है। मियानः[७] क़द, चौड़ी हड्डी, ज़बरदस्त कलाइयाँ, मज़बूत हाथ। उनको एक नज़र देखने से ऐसा मालूम होगा कि उनके हर अज़ों में क़ूवत भरी हुई है। जब वह किसी जिस्मानी मिहनत का इरादा करते हैं, उनके शौक़ और तर्ज़े-आमादगी[८] से ऐसा ज़ाहिर होता है, जैसे कोई बच्चा खेल की तरफ़ मुतवज्जेः होता है। रफ़्तार उनकी किसी क़दर सरीअ[९] है। उनकी हैअतॅ कज़ाई[१०] से ऐसा मालूम होता है जैसे उनको बहुत कुछ काम करना है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि उनको किसी ने किसी हालत में और किसी वक़्त में बेकार न देखा होगा।

बेटे का ख़त बाप के नाम—इंट्रेंस पास करने के मौक़े पर

क़िब्लए मन्, मद्ज़िल्लुहू। आदाब व तस्लीमात के बाद गुज़ारिश यह है कि ख़ुदा के फ़ज़्ल और आपकी दुआ से मैं इंट्रेंस के इम्तहान में कामायाब हो गया। एफ़. ए. के लिए मैंने यह मज़ामीन पसन्द किये हैं। अगर आप इजाज़त दें तो इन्हें इख़्तियार करूँ।

अंग्रेज़ी, साइंस, मन्तिक़, पोलिटिकल इकानमी, रियाज़ी (इल्म-हिसाब, अलजबरा,

---

१ जोती-बोयी २ बहावों ३ जीवनी ४ रूपरेखा ५ प्रत्यक्ष परिचय ६ गेहुँआ ७ मध्यम श्रेणी का ८ तत्परता, मुस्तैदी ९ तेज़ १० ढंग-तरीक़े।

इल्म-हिन्दसः मक़ालः[१] शशुम[२] व याज़दहुम,[३] इल्म मुसल्लस,[४] कानसेक्शन), साइंस (इल्म तबीआ़त व कमेस्ट्री)।

एफ़-ए की रियाज़ी बहुत मुश्किल है। अक्सर तालिब-इल्मों ने यह ज़रूरी कोर्स नहीं लिया। मुसलमानों में से सिर्फ़ मैंने यह कोर्स लिया है।

बाज़ दोस्तों ने बलिहाज़ सुहूलत यह राय दी थी कि फ़ारसी ले लूँ। मगर मैंने इसलिए पसन्द न किया कि कोर्स की किताबों में से अक्सर मेरी देखी हुई हैं। साल भर तक उन्हीं को उलट-फेर कर पढ़ने से दिल उकता जायगा। दूसरे उन किताबों में कोई ऐसी बात नहीं मालूम होती जो सीखने के लायक़ हो। अगर मैं साइंस न लेता तो अ़रबी लेता। मगर जानता था कि साइंस के लिए अक्सर आप ताकीद फ़र्माते रहे हैं। इसलिए मैंने उसी को तर्जीह दी। और वाक़ई मुझको साइंस के पढ़ने का ज़ाती शौक़ है। अक्सर तालिबइल्मों का इरादः ला क्लास में नाम लिखवाने का है। मैं आजकल मन्तिक़ की किताब को बजाए खुद पढ़ रहा हूँ। जो रिसाले मन्तिक़ के आपने घर पर पढ़ा दिये थे उनसे बहुत मदद मिली। पोलीटिकल इकानमी एक नया मज़मून है, मगर दिलचस्पी से खाली नहीं।

जनाब वालिदः साहिबा को तस्लीम और सब को दर्जः ब दर्जः सलामाँ-दुआ। अर्ज़ दीगर यह है कि माली से ताकीद कर दीजिएगा कि मेरे फूलों के नाँदों की अच्छी तरह खबरगीरी करे। मुझे खौफ़ है कि वह बाज़ औक़ात लापरवाई कर जाता है।

अरीज़ए फ़िदवी[५] बाक़र

ख़त आबिदहुसैन का अपने बड़े बेटे के नाम

बाक़रहुसैन ज़ाद क़द्रुहू[६]। बाद दुआ के मालूम हो कि मुझे तुम्हारे इंट्रेंस पास करने का हाल गज़ट-सरकारी से मालूम हो गया था और मैं तुम्हें इस मौक़े पर मुबारकबाद का खत लिखने वाला था कि तुम्हारा खत आया। मुझे इस बात के मालूम होने से बड़ी खुशी हुई कि तुमने अभी से एफ० ए० के इम्तहान की तैयारी शुरू कर दी। इंतखाबॅ-मज़ामीन[७] के बारे में अच्छा किया तुमने मुझसे राय तलब करली।

अंग्रेज़ी और रियाज़ी मज़मून बहुत ज़रूरी हैं। इनके बारे में तो कुछ कहना ही नहीं है। शायद एफ़० ए० की रियाज़ी में यह मज़ामीन हैं। इल्म-हिसाब कामिल मय इल्मॅ-हिसाबॅ-नज़री, जब्रो मुक़ाबलः, हिन्दसः छठा मक़ालः मय ग्यारहवें मक़ाले के और अव्वल के चार मक़ालों पर नज़रॅसानी, क़िताअ मखरूतात बहसॅ मुतनाक़िस

---

१ अध्याय २ छठा ३ ग्यारहवाँ ४ ट्रेग्नामेट्री ५ विनीत प्रार्थी ६ उन्नति करो ७ विषय-चयन।

जिसे बैज़वी कहते हैं और मुतक़ाफ़ी यानी पैराबोलः, शायद मुतज़ाएद की बहस एफ० ए० में छुड़ा दी गई है। मैं बहुत ख़ुश होता अगर वह भी शामिल होती। मगर मैं तुमसे फ़र्माइश करता हूँ कि मुतज़ाइद (यानी हाईपराबोलः) की बहस बजाय ख़ुद देख जाना। इल्म मुसल्लस सतही और उसके साथ लोगारिस्म का इस्तेमाल बहुत ही कारआमद है। एक किताब उम्दः चैम्बर्स मैथमेटिकल टेबिल्स की मैं बतौर इनाम तुमको रवाना करता हूँ। इस किताब से तुमको रियाज़ीयात के अमल में बहुत मदद मिलेगी। इस्टाटिक्स पर ख़ास तवज्जुः करना। इस इल्म की मुल्क को और क़ौम को सख़्त ज़रूरत है। गर्मियों की तातील में घर आओगे तो कलों के नमूने मेरे हाथ के बनाये हुये देखना। उनके फ़ायदे और इस्तेमाल के तरीक़े मैं तुम्हें अमली तौर से बताऊँगा।

एक ग़लत मक़ूलः आज कल बहुत मशहूर हो गया है। क्या अजब है कि तुमने भी सुना हो कि मुसलमानों का दिमाग़ रियाज़ी की तहसील[१] के नाक़ाबिल है। मैं तुमको यक़ीन दिलाता हूँ कि इस बात की कोई अस्ल[२] नहीं है। जब तुम मन्तिक़ पढ़ोगे तो तुमको मालूम होगा कि यह मक़ूलः[३] मिन्जुम्लए[४] इस्तिक़राय्यातॅ-नाक़िस[५] है। और इस्तिक़राए-नाक़िस इल्म और यक़ीन के लिए मुफ़ीद नहीं। अगले मुसलमानों ने ख़ास इसी इल्म रियाज़ी में बहुत कुछ कर दिखाया है। तुमको मालूम हो कि अगले निज़ामॅ तालीमी में पन्द्रह मक़ाले उक़्लैदिस के इब्तिदाई दर्स[६] में और बत्तीस मक़ाले मुतवस्सितात[७] के दर्स औसत में दाख़िल थे और उसके बाद मजस्ती पढ़ाई जाती थी। यह किताबॅ निज़ामॅ बत्लीमूस इल्म हैअत[८] के बयान में है। अगर्चे निज़ामॅ बतलीमूस अब ग़लत साबित हुआ लेकिन यही किताब एक ज़माने में तमाम उलमाए हैअत की मुसनद अिलैः[९] थी और मजस्ती पहले पहल अ़रबी से लातीनी ज़बान में तर्जुमः हुई जिससे तमाम योरुप ने इल्म हैअत सीखा और मजस्ती के मिस्ल और किताबें भी अरबी से योरुपी ज़बानों में तर्जुमः हुई हैं। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि मुसलमान इल्मॅ हैअत में भी अह्ले योरुप के उस्ताद हैं और इससे उलमाए योरप को इन्कार नहीं हो सकता। यह किताबें जिनका ज़िक्र किया गया है ख़ुद मेरे कुतुबख़ाने में मौजूद हैं और एम० ए० कोर्स से किसी तरह कमपायः[१०] नहीं हैं। फ़ारसी एफ़. ए. में न लेना तुम्हारे लिए बहुत मुनासिब बल्कि ज़रूरी था। यह जो तुमने लिखा है कि अगर मैं साइंस न लेता तो अ़रबी ज़रूर लेता। जब तुमने ख़ुद ही साइंस को तर्जीह देकर इख़्तियार किया तो अब मुझे कुछ कहना नहीं है। मैं हमेशा तुमको समझाया किया हूँ कि

---

१ गणित विद्या का उपार्जन २ जड़ ३ कथन ४ सब में से ५ कुछ बातें देख कर व्यर्थ धारणा बना लेना ६ प्रारम्भिक कोर्स ७ माध्यमिक ८ खगोल शास्त्र ९ अत्यंत प्रामाणिक १० निम्न स्तर।

मदरसों की पढ़ाई और इम्तहानों की कामयाबी तहसीलें इल्म[१] का मक़्सूद[२] नहीं है बल्कि उससे एक हैसियत इज़हारें लियाक़त[३] की और एक मलकः तहसील[४] इल्म का हासिल हो जाता है। अगर तुमको अरबी पढ़ने का शौक़ है तो बी० ए० पास करने के बाद बजाए खुद पढ़ लेना। यह आम मक़ूलः मशहूरात[५] से है कि अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी स्कूल में नहीं आती। क्योंकि मक्तबों और मदरसों में मक़्सूद बिज़्ज़ात[६] अंग्रेज़ी है न कि अरबी। फ़ारसी तो कोई ऐसी चीज़ नहीं। लेकिन अरबी का इल्में अदब और फिर माक़ूलात[७] व मन्क़ूलात[८] वग़ैरः मिला के बहुत ही वसीअ[९] लिटरेचर हो जाता है, जिसके लिए एक उम्र मुतालअः[१०] और ख़्वांदगी[११] की ज़रूरत है। मैं हरगिज़ किसी हिन्दू या मुसलमान नौजवान तालिबइल्म को यह राय न दूँगा कि वह मदरसे की तालीम का वक़्त जो निहायत ही महदूद[१२] और बेशक़ीमत है, फ़ारसी या अरबी-संस्कृत के पढ़ने में ज़ाया करे। उसके चन्द वुजूह हैं।

१. इन ज़बानों के पढ़ने या उलूम हासिल करने से क़ौमी हैसियत और मज़हब का हिफ़्ज़[१३] और बक़ा[१४] अगर मंजूर है तो वह इस क़िस्म की पढ़ाई से जो मदरसों में होती है हासिल नहीं हो सकता।

२. तक्मील[१५] का दर्जा हासिल नहीं हो सकता। किताबों का इन्तख़ाब इस क़िस्म का होता है कि उनको अंग्रेज़ी किताबों के साथ ही साथ पढ़ने से एक क़िस्म का तनफ़्फ़ुर[१६] अपने उलूम[१७] से पैदा हो और कोई नफ़ा नहीं हो सकता। मसलन जो तलबः ऐसी उम्दः किताबें जैसे ब्लेकी की किताब सेल्फ कल्चर, हक्सिले की किताब के सरमन्स या हेल्प की किताब एसेज़ वग़ैरः पढ़ता हो उसके सामने वह किताबें जो लग़ो मुबालग़ात[१८] और झूठी खुशामदों से भरी हुई हैं, उनकी क्या वक़्त हो सकती है। मुझे तअज्जुब है कि निसाबें तालीम के इन्तख़ाब के वक़्त मेम्बरानें कमेटी फ़ारसी और अरबी की उम्दः किताबों के नाम क्यों भूल जाते हैं। क्या फ़ारसी और अरबी में सिर्फ़ इतनी ही किताबें हैं जिनका इन्तख़ाब अक्सर निसाबहाए तालीम[१९] में देखा गया है।

मेरा इरादः है कि एफ़० ए० के पास करने के बाद तुमसे बजाए बी० ए० के बी० एस० सी० का इम्तहान दिलवाऊँगा और इन्शाअल्लाह उसकी कामयाबी के बाद तुम्हारी तालीम घर पर होगी। कहीं और तालिबइल्मों की देखा-देखी तुम लाक्लास में नाम न लिखवा लेना। और अगर ऐसा करना भी तो सिर्फ़ इल्म हासिल करने के लिए; न इस ग़रज़ से कि वकालत का इम्तहान देकर उसको एक ज़रीअः

---

१ विद्योपार्जन २ अभीष्ट ३ योग्यता-प्रकाशन ४ रुचि, अभ्यास ५ प्रसिद्ध कहावतों ६ लक्ष्य ७ शास्त्र ८ दर्शन ९ विस्तृत १० अध्ययन ११ पढ़ाई १२ सीमित १३ रक्षा १४ स्थायित्व १५ पूर्णता १६ अरुचि १७ विद्याओं ,से शास्त्रों से १८ व्यर्थ अत्योक्तियों १९ शिक्षा के कोर्सों में।

अख़ज़ॅ माश[1] का क़रार दो। मेरा यह मक़सद नहीं है कि वकालत का पेशः बुरा है, या इस पेशे के लोग दियानतदार[2] नहीं होते जैसा कि मशहूर है; मगर इसमें भी शक नहीं कि वकालत के पेशे में इफ़ात[3] व तफ़ीत[4] की तरग़ीब[5] बेशुमार हैं और एहतियात[6] दुश्वार। ग़रज़ कि ख़तरनाक होने में कोई शुबहा नहीं। बहरसूरत अस्लम[7] यही है कि इस अंदेशानाक[8] रास्ते से दरगुज़रो[9]।

अलावा इसके मुल्क को उसकी ज़रूरत बहुत कम है। हज़ारहा वकील और बैरिस्टर ऐट ला ख़ुदा के फ़ज़्ल से मौजूद हैं। इन उलूम का हासिल करना वाजिबॅ कफ़ाई§ बल्कि बाज़ सूरतों में वाजिबॅ ऐनी§ है जिसके जानने वाले क़ौम में कम हैं और जिसकी क़ौम और मुल्क को अज़हद[10] ज़रूरत है।

मैंने सुना है कि तुम्हारे मदरसे में इल्म हैअत[11] का कोई इम्तहान मुक़र्रर हुआ है। मैं उसको सुनके बहुत ही ख़ुश हुआ। इस इल्म में हमारे बुज़ुर्गों ने बहुत मिहनत की थी जिसका सुबूत इल्मॅ हैअत की मब्सूत तारीखों[12] से मिल सकता है। इस वक़्त मेरी मेज़ पर एक किताब इल्मॅ हैअत की मय एक मुख़्तसर फ़रहंग अंग्रेज़ी ज़बान में मौजूद है। रदीफ़ॅ अलिफ़ में अलिफ़ लाम (अ़रबी हरफ़ॅ तारीफ़) से जो लफ़्ज़ॅ शुरू होती हैं, उनका शुमार पचास के क़रीब है और अ़रबीयुल् अस्ल अल्फ़ाज़ का ज़िक्र नहीं। अगर तुम्हारे दर्जे के तालिबइल्म हैअत के क्लास में दाख़िल होने के मजाज़ हों तो तुम भी ज़रूर नाम लिखवा लो। और उसके कोर्स की किताबों के नाम मुझको लिख कर भेज दो। जो किताबें मेरे कुतुबख़ाने में मौजूद हैं मैं भेज दूँगा, बाक़ी कलकत्ते से मंगवा लेना। गर्मियों की तातील में हम तुम्हें वह आलात इल्म हैअत के दिखायेंगे जो हमने अपने हाथ से बनाए हैं और वक़्तन फ़वक़्तन उन मुशाहदात[13] का भी तज़्किरः करेंगे जो उनसे हो सकते हैं।

रक़ीमए दुआ[14] आबिद अज़ देहली २१ जून, १८८९ ई०

एक और ख़त

मख़्दूमॅ-बन्दः (आदणीय पूज्य) जनाब मिर्ज़ा साहब तस्लीम। मैंने ख़ारिजन[15] सुना है कि आपने इस ज़माने में कोई किताब जर्रे सक़ील[16] में अ़रबी ज़बान से उर्दू में तर्जुमः

---

१ जीविकार्जन का साधन २ ईमानदार, विश्वसनीय ३ बहुतायत ४ दुरुपयोग ५ प्रलोभन, प्रेरणा ६ सावधानी, संयम ७ भला ८ ख़तरनाक ९ बचे रहो १० अत्यंत ११ खगोल शास्त्र १२ प्रामाणिक इतिहासों १३ प्रयोगों १४ दुआ लिखने वाला १५ उड़ते-उड़ते १६ भारी बोझ खींचने-उठाने की विद्या।

§ 'वाजिबॅ ऐनी' वह कर्त्तव्य हैं जो किसी भी सूरत में छोड़े नहीं जा सकते, जैसे नमाज़; 'वाजिबॅ क़फाई' वह कर्त्तव्य हैं जो किसी एक व्यक्ति के कर देने पर दूसरों पर वह ज़रूरी नहीं, जैसे आग लगने पर बुझाना सब का फ़र्ज़ है लेकिन किसी के बुझा देने पर दूसरों पर वह फ़र्ज़ नहीं रहता।

की है। अगर वह किताब छप गई हो तो उसका एक नुस्खा मुझको भेज दीजिए और अगर न छपी हो तो किसी औसत दर्जे के कातिब से लिखवाकर रवाना फ़र्माइए। मैं बहुत ही मम्नून[१] हूँगा। इतना अदब के साथ और अर्ज़ करना चाहता हूँ कि फ़ी ज़माना इस इल्म में बहुत तरक़्क़ी हुई है। आपको मालूम है कि आपकी हर तस्नीफ़[२] को निहायत क़द्र की निगाह से देखता हूँ। अगर आप किसी अंग्रेज़ी किताब का तर्जुमः फ़र्माते तो शायद क़ौम और मुल्क के लिए ज़ियादः मुफ़ीद होता।

आपका नियाज़मन्दँ क़दीम ज़ुहूरुद्दीन एम. ए.

क़द्रदानँ बन्दः मौलवी ज़ुहूरुद्दीन साहब एम. ए., देहलवी। तस्लीम।

बजवाब आपके इनायतनामः मोअर्रिख़े २१ जून माह व सनँ हाल आरिज़ँ-मुद्दआ[३] हूँ। मैंने वाक़ई एक रिसालः जर्रे सक़ीलँ अमली का जिसके दीबाचे में मुसन्निफ़ ने अपना नाम अबू अली लिखा है, फ़ारसी से उर्दू में तर्जुमा किया है। इस रिसाले की तस्नीफ़ से क़ौम को जर्रे सक़ीलँ अमली का सिखाना मंज़ूर नहीं है। इस मतलब के लिए बक़ौल आपके कोई किताब अंग्रेज़ी की तर्जुमः करना ज़रूरी है। बल्कि इस तर्जुमे से दो मक़्सद हैं। एक तो यह कि होनहार नौजवान तालिबइल्मों की निगाह में क़ौमी वक़त का क़ाइम रखना मंज़ूर है जिसकी मेरे नज़दीक इस ज़माने में अशद ज़रूरत है। दूसरे एक अम्र और इस किताब के तर्जुमे का मुक़तज़ी[४] हुआ; वह यह कि मीकानात बसीतः जिनका ज़िक्र इस मुख़्तसर रिसाले में है बिऐने[५] वही है जो इस ज़माने की किताबों में पाए जाते हैं। मसलन महो, बेरहम, दोलाब, लोलब, अल्फ़ीन वग़ैरः। इस अमली रिसाले से इस बात का पता चलता है कि बुरहानी तौर से[६] यह इल्म उसी ज़माने में एक हद तक तरक़्क़ी कर चुका था। अफ़सोस कोई किताब बुरहानी दस्तयाब नहीं हुई। हस्बुलहुक्म आपके एक नक़ल रिसालए मतलूबः की रवाना करता हूँ। अगर देहली में कोई कारख़ाना इस किताब के छापने का ज़िम्मः ले तो बेतकल्लुफ़ बिला तअय्युन हक़्क़े तालीफ़[७] दे दीजिएगा।

एक ख़ुशख़बरी आपको और सुनाता हूँ कि एक नुस्खा मोहक्किक़ँ तूसी[८] की उक्लैदिस का जिसमें पूरे पन्द्रह मक़ाले[९] मय हवाशी और तालीक़ात[१०] वग़ैरः के हैं, मुझको दस्तयाब हो गया है। मेरा मुसम्मम[११] इरादः है कि उसको बिजिसही[१२] छपवा दूँ। क्या अच्छा होता अगर यह किताब उर्दू, अंग्रेज़ी दोनों ज़बानों में तर्जुमः होकर शाया की जाती। मगर अफ़सोस कि मुझको ज़माना मुहलत नहीं देता, और कोई

---

१ अनुगृहीत २ रचना ३ निवेदन करने जा रहा हूँ ४ इच्छुक ५ बिलकुल अनुरूप ६ प्रामाणिक रूप में ७ बिला पारिश्रमिक-ठहराव प्रकाशन का स्वत्व ८ तूस देश का दार्शनिक ९ ज्यामिति के साध्य १० टिप्पणी-प्रमाण-संदर्भ सहित ११ दृढ़ १२ जैसे का तैसा।

साहब इस बार को अपने ज़िम्मे नहीं लेते। बाक़र ने बी० एस-सी० का इम्तहान माशाअल्लाह पास कर लिया। मगर वह अभी अ़रबी ज़बान के इस्तलाहातें इल्मी[1] से नाबलद[2] है, वर्ना उसको इस काम में अपना शरीक कर लेता। बाक़र ने मेरे कहने से वकालत के इम्तहान की कोशिश नहीं की और न उसे मिस्ल और हौसलःमन्द नौजवानों के नौकरी की फ़िक्र है। उम्मीद है कि इल्मी मक़ासिद[3] में वह मेरा मुअ़ीन[4] होगा। बिलफ़ेल इसी ग़रज़ से मैंने उसको अ़रबी माक़ूलात[5] पढ़ाना शुरू किया है। अस्सऽ.यु मिन्नी वल् इत्मामु मिनल्लाह[6]।

देहली में एक साहब मीर इहसानअली नामे कश्मीरी दरवाज़े के क़रीब तशरीफ़ रखते हैं। उनके आबा व अज्दाद[7] उलूमें रियाज़ियः[8] में अपने अहद के[9] कामिलीन[10] से शुमार किये जाते थे। जब मैं देहली गया तो बित्तख़्सीस[11] उनसे मिला था। बेचारे बहुत परेशान-हाल थे। उनके पास एक उस्तुर्लाब[12] जिसका क़ुत्र[13] दस इंच था, लाहौर की बनी हुई निहायत ही उम्दः थी, और वह बेचते थे। पाँच सौ रुपियः क़ीमत कहते थे। अफ़सोस उस वक़्त मेरे पास रुपियः न था। आप बराहे इनायत उनसे दर्याफ़्त कीजिए। अगर वह अब तक न बिकी हो तो मेरे वास्ते ख़रीद लीजिए।

आपके चचा मौलवी रियाज़ुद्दीन साहब उनसे अच्छी तरह वाक़िफ़ हैं। इसलिए आपको उनकी तलाश करने में दिक़्क़त न होगी।

नियाज़केश आबिद

मिर्ज़ा साहब मुअज़्ज़मँ[14] बन्दः, तस्लीम। रिसालए मुर्सलः[15] पहुँचा। यह भी मालूम हुआ कि यह रिसला आपके हाथ का लिखा हुआ है। मुझे इसका फ़ख़्र हासिल हुआ कि एक किताब आपके दस्तख़त ख़ास से मेरे कुतुबख़ाने में शामिल हुई। मगर आपने क्यों तकलीफ़ की। किसी से लिखवा दिया होता। वाक़ई क्या उम्दः रिसाला है। और तर्जुमे का हक़ आपने ख़ूब अदा किया है। और कुछ लिखते हुए डरता हूँ, इसलिए कि आप ज़ियादः तारीफ़ को पसन्द नहीं फ़र्माते, अगर्चे वह अम्रँ हक़ ही क्यों न हो।

चचाजान से दर्याफ़्त करके मैं ख़ुद मीर इहसानअली के मकान पर गया था। बिल्फ़ेल वह पटियाले में हैं। मगर उनके साहबज़ादे की ज़बानी मालूम हुआ कि वह उस्तुर्लाब, एक साहब जर्मनी से आये थे, वह सात सौ रुपये को ख़रीद ले गये।

इस बात के दर्याफ़्त होने से मुझको कुछ ज़ियादः अफ़सोस नहीं हुआ। इस

---

१ पारिभाषिक और व्यञ्जनात्मक ज्ञान २ अनजान ३ उद्देश्यों ४ सहायक ५ दर्शन विज्ञान ६ मनुष्य यत्न करता है, परमात्मा उसकी पूर्ति करता है ७ पूर्वज ८ गणितशास्त्र ९ समय के १० पूर्ण दक्ष ११ ख़ास तौर पर १२ ग्रहों के नापने का यंत्र १३ व्यास १४ परमश्रेष्ठ १५ भेजा हुआ।

लिए कि मैं ख़ूब जानता हूँ कि आप उसूलें-उलूम से बाख़बर हैं और मैं जब लखनऊ गया था तो आपके हाथ का बना हुआ उस्तुर्लाब ख़ुद देखा था। मेरा एतिक़ाद मुझे यक़ीन दिलाता है कि मीर इहसानअली वाला उस्तुर्लाब उससे किसी तरह बेहतर न होगा। बिल्फ़ेल आपके पाँच सौ रुपये की बचत हो गई। वर्ना मुझको तामीले इर्शाद ज़रूर ही करना होती और पाँच सौ रुपए आपके बिला ज़रूरत सर्फ़ हो जाते। मुहक़्क़क़ें तूसी की उक़्लैदस महश्शा[1] के देखने का मै भी मुश्ताक़[2] हूँ। मुमकिन हो तो उसे छपवा दीजिए। भाई बाक़रहुसैन सल्लमहू के इम्तहान में पास होने की ख़बर मुझे उनके ख़त से मालूम हो चुकी थी, और उनको मैं मुबारकबाद[3] भी दे चुका हूँ। आपकी तहरीर से मालूम हुआ कि आप अपने मिस्ल उनको भी तारिकुद्दुन्या[4] बनाना चाहते हैं, मगर यह नहीं मालूम हुआ कि उनका ज़ाती मन्शा क्या है। क्या वह अपनी आइन्दः ज़िन्दगी को मुल्क और क़ौम पर निसार करने के लिए आमादः हो गए! अगर ऐसा किया तो बहुत बुरा किया। चचाजान की तरफ़ से आपको सलामें शौक़ लिखकर इस अरीज़े[5] को ख़त्म करता हूँ।

फ़क़त

अक़ीदत आईन

ज़ुहूरुद्दीन

इनायतफ़र्माए-बेकराँ[6] जनाब मिर्ज़ा साहब दामः मज्दुहू,[7] तस्लीम।

यहाँ बहम वुजूह[8] ख़ैरियत है और आपकी ख़ैरोआफ़ियत क़ाज़ियुल्हाजात[9] से शब व रोज़ नेक मुस्तद्आ[10] रहता हूँ। दरीं विला बाअसें तहरीरें नियाज़नामए हाज़: यह है कि नूरचश्मी[11]...की तक़रीबें कतख़ुदाई[12] होने वाली है। उसके वास्ते कुछ अस्बाब[13] तो पहले से मौजूद है और कुछ अस्बाब ख़रीदना है। हुसैनुद्दीन की वालिदः ने कल शब को यह सलाह दी कि मिर्ज़ा साहब बिल्फ़ेल लखनऊ में तशरीफ़ रखते हैं। जो कुछ अस्बाब ख़रीदना है उनको लिख भेजो, वह ख़रीद कराके भेज दें। अगर्चे मुझे मालूम था कि आप लखनऊ में हैं मगर यह ख़याल कभी नहीं आया था कि आपको इस बारए-ख़ास[14] में तकलीफ़ दूँ। बहरसूरत एक फ़िहरिस्तें अस्बाबें ख़रीदनी मलफ़ूफ़ें ख़तें हाज़ा[15] है। इसके मुआफ़िक़ किसी आदमें-मोतबर की मार्फ़त ख़रीद करके बज़रिये रेलवे बहुत जल्द रवाना फ़र्माइए कि अैन इहसान होगा। ख़ुदा करे आप शादी के वक़्त तक यहाँ आजायँ तो इस कारें ख़ैर में मुझको आपसे बहुत मदद मिलेगी।

---

१ ज्यामिति सटिप्पण २ उत्सुक ३ ख़ुदा उसकी सलामत रखे ४ विरक्त ५ निवेदन-पत्र ६ असीम अनुग्रहकर्ता ७ हमेशा आपकी वुज़ुर्गी रहे ८ पूरे तौर पर ९ ख़ुदा से १० प्रार्थी ११ सुपुत्री १२ विवाह १३ जहेज़ १४ कष्ट विशेष १५ इस लिफ़ाफ़े के साथ।

बच्चे को मालूम हो क्योंकर बाप कहाँ से आया है
तार में कुल संसार पिरोकर रब ने हार बनाया है
जिसको उसने होश दिया है ज्ञान और ध्यान वह पाते हैं
उसके सच्चे दास वही हैं उसमें ध्यान लगाते हैं
सतगुन, रजगुन, तमगुन में वह जिसका मन भरमाता है
जीता है गर मरता है गर आता है गर जाता है
ऊंचे हों या नीचे हों सब उनके हैं स्थान सदा
जैसा आप समझाये 'नानक' वैसा उसको जान सदा ॥३॥

नाना रूप नाना जाके रंग नाना भेख करहि इक रंग।
नाना बिधि कीनो बिसथारु प्रभु अविनासी एकंकारु।
नाना चलित करे खिन माहि पूरि रहिओ पूरनु सभ ठाइ।
नाना बिधि करि बनत बनाई अपनी कीमति आपे पाई।
सभ घट तिसके सभ तिसके ठाउ जपि जपि जीवै नानक हरि नाउ ॥४॥

रूप नये औ रंग नये नैरंग[1] नये औ ढंग नये
आप रहे यकरंग मगर बहुरूप हैं रंगारंग नये
गूनागूनी[2] जलवों[3] से फैलाता है संसार वही
ज़ात उसकी लाफ़ानी[4] है एकता है एक ओंकार वही
चाल नई और ढाल नई पल पलमें स्वांग वह करता जाये
कामिल ज़ात उसी की है वह सारे भरने भरता जाये
रंग रंगीली ख़ल्क़[5] बनाये ख़ूब दिखाये सुन्नत[6] वह
आपही अपनी क़दर वह जाने आपही अपनी क़ीमत वह
हर मन में घर उसका है हर घर में उसकी बस्ती है
नाम को जप कर जीता है बस यह 'नानक' की हस्ती है ॥४॥

नाम के धारे सगले जंत नाम के धारे खंड ब्रहमंड।
नाम के धारे सिमृति बेद पुरान नाम के धारे सुनन गिआन धिआन।
नाम के धारे आगास पाताल नाम के धारे सगल आकार।

---

१ माया २ रंग विरंगे ३ दृश्यों से ४ अविनाशी ५ सृष्टि ६ नाना प्रकार के स्वभाव, नियम, तरीक़े।

नाम के धारे पुरीआ सभ भवन नाम कै संगि उधरे सुनि स
करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए,
नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए ॥

नाम के बल पर क़ायम रहकर ख़िलक़त[1] बसती रहती है
नाम के बल पर ख़ित्तों तबक़ों संसारों की हस्ती है
नाम के बल पर हिन्दू को स्मृतियाँ वेद पुरान मिले
नाम के बल पर ज्ञान मिले औ नाम के बल पर ध्यान मिले
नाम के बल पर क़ायम यह आकाश भी है पाताल भी है
नाम के बल पर हासिल सारे जग को इस्तिक़लाल भी है
नाम के बल पर घर क़ायम हों नगरी में आबादी हो
नाम ख़ुदा का सुन कर हासिल बन्दे को आज़ादी हो
जिसको अपनी रहमत से वह नाम की उल्फ़त[5] देता है
'नानक' चौथे दरजे[6] में वह कामिल मुक्ती लेता है

रूपु सति जा का सति असथानु पुरखु सति केवल परधा
करतूति सति सति जाकी बाणी सति पुरख सभ माहि समा
सति करमु जा की रचना सति मूलु सति सति उतप
सति करणी निरमल निरमली जिसहि बुझाए तिसहि सभ भ
सतिनामु प्रभ का सुखदाई बिस्वासु सति नानक गुर ते पाई ॥

सच्चा उसका रूप भी है और सच्चा ही स्थान भी है
ख़ालिस[7] सच्ची उसकी हस्ती[8] जो सब में परधान[9] भी है
सच्चे उसके काम भी हैं और सच्ची उसकी बात भी है
सच्ची उसकी ज़ात भी है पुर[10] जिससे मौजूदात[11] भी है
सच्चे फ़ेल[12] सब उसके हैं और सच्चा ख़ूब पसारा[14] है
जड़ भी सच है मूल भी सच है सच्चा पेड़ भी सारा है
ख़ालिस[13] से भी बढ़कर ख़ालिस सच्चे काम बनाये वह
जिसको आप सुझाये वह हर शै को नेक बनाये वह

---

१ सृष्टि २ प्रदेशों में ३ लोकों, वर्गों ४ ठहराव ५ प्रीति ६ चौथे पद (
पद) में ७ एकमात्र ८ अस्तित्व ९ प्रधान, श्रेष्ठ १० परिपूर्ण ११ सारा दृश्य
१२ कर्म १३ (सृष्टिका) फैलाव १४ विशुद्ध, अद्वितीय ।

सच्चा नाम खुदा का है जो दुनिया का सुखदाता है
यह सच्चा ईमान हमेशा 'नानक' गुरु से पाता है ॥६॥

सति बचन साधू उपदेस सति ते जन जा कै रिदै प्रवेस।
सति निरति बूझै जे कोइ नामु जपत ताकी गति होइ।
आपि सति कीआ सभु सति आपे जानै अपनी मिति गति।
जिसकी सृसटि सु करणैहारु अवर न बूझि करत बीचारु।
करते की मिति न जानै कीआ नानक जो तिसु भावै सो बरतीआ ॥७॥

क़ौल[1] है सच्चा साधों का उपदेश वो सच फ़रमाते हैं
सच्चे वह भी जिनके मन में मन्दिर साध बनाते हैं
ख़ालिस-सच[2] को जो समझे यह भेद जिसे मिल जाता है
नाम प्रभू का जपता है वह और छुटकारा पाता है
सच्ची ज़ात खुदा की है सब सच्चा काम बनाया है
अपनी हद और हालत को खुद आप उसी ने पाया है
अपनी रचना आप रचे कर्ता है वह करतार है वह
राय न पूछे और किसी से पूरा खुद मुख़्तार[3] है वह
आप जो खुद मख़लूक़[4] हुआ ख़ालिक़[5] के भेद न पायेगा
जो उसको मन्ज़ूर है 'नानक' वह पूरा हो जायेगा ॥७॥

बिसमन बिसम भए बिसमाद जिनि बूझिआ तिसु आइआ स्वाद।
प्रभ कै रंगि राचि जन रहे गुर कै बचनि पदारथ लहे।
ओइ दाते दुख काटनहार जा कै संगि तरै संसार।
जन का सेवकु सो बडभागी जन कै संगि एक लिव लागी।
गुन गोविंद कीरतनु जनु गावै गुर प्रसादि नानक फलु पावै ॥८॥

हैरत[6] को भी हैरत है हैरानी[7] को हैरानी है
जिसने उसको जाना है बस लज़्ज़त[8] उसने जानी है
रब का रंग निराला है इस रंग में जो रच जाते है
गुरु की बातें सुन सुन कर वह आला मक़सद[9] पाते हैं

---

१ वचन २ परम सत्य ३ परम स्वतंत्र ४ पैदा किया हुआ ५ पैदा करने वाला (स्रष्टा) ६ आश्चर्य ७ विस्मय ८ आत्मानन्द ९ उद्देश्य।

ऐसे दाता लोगों ही से दुख का दूर आज़ार[1] हुआ
उनकी संगत पाने से दुनिया का बेड़ा पार हुआ
अच्छे भाग उन्हीं के हैं जो उनकी सेवा करते हैं
संगत उनकी पा पाकर रब वाहिद[2] का दम भरते हैं
हम्द खुदा की करते हैं जो मालिक के गुन गाते हैं
'नानक' गुरु की रहमत से वह दुनिया में फल पाते हैं ॥

सलोकु

आदि सचु जुगादि सचु ॥
है भि सचु ॥
नानक होसी भि सचु ॥ १ ॥

सच्चा रोज़ अज़ल से पहले सच्चा रोज़ अज़ल भी वह
सच्चा है वह आज भी 'नानक' सच्चा होगा कल भी वह§

असटपदी १७

चरन सति सति परसनहार पूजा सति सति सेवदार
दरसनु सति सति पेखनहार नामु सति सति धिआवनहार
आपि सति सति सभ धारी आपे गुण आपे गुणकारी
सबदु सति सति प्रभु बकता सुरति सति सति जसु सुनता
बुझनहार कउ सति सभ होइ नानक सति सति प्रभु सोइ ॥१

पाँव भी उनके सच्चे हैं जो उनको चूमे सच्चा है
पूजा उसकी सच्ची है जो उसको पूजे सच्चा है
दरशन उसका सच्चा है और सच्चा है जो दरशन पाये
नाम भी उसका सच्चा है और सच्चा है जो ध्यान लगाये

---

१ रोग २ एकमात्र प्रभु ।

§ उस सत्यस्वरूप परमात्मा की स्थिति सृष्टि रचना से पहले, सृष्टि रचना के सम
आज भी तथा भविष्य में भी सर्वदा रहेगी ।

ज़ात भी उसकी सच्ची जिसने सब संसार सम्हाला है
आप ही नेकी आप ही ख़ुद वह नेकी देने वाला है
सच्चा पाक कलाम है उसका सच्चा है जो कहता है
होश भी सच्चा सच्चा वह जो उसकी सुनता रहता है
सोच समझ जो रखता है उस दाता को सब सच्चा है
कह 'नानक' रब[1] सच्चा है रब सच्चा है रब सच्चा है ॥१॥

सति सरूपु रिदै जिनि मानिआ करन करावन तिनि मूलु पछानिआ ।
जा कै रिदै बिस्वासु प्रभ आइआ ततु गिआनु तिसु मनि प्रगटाइआ ।
भै ते निरभउ होइ बसाना जिस ते उपजिआ तिसु माहि समाना ।
बसतु माहि ले बसतु गडाई ताकउ भिंन न कहना जाई ।
बूझै बूझनहारु बिबेक नाराइण मिले नानक एक ॥ २ ॥

सच का रूप समझ कर जिसने दिल में रब को माना है
करता-धरता दुनिया का उस ख़ालिक़[2] को पहचाना है
जिसके मन में रब पर अपने तक्य:[3] है ईमान भी है
उसके मन में ज्ञान है रौशन हासिल सब इरफ़ान[4] भी है
ख़ौफ़ से वह बेख़ौफ़ रहे कब ख़ौफ़ को उसने जाना है
ज़ात से जिसकी आया उसमें आख़िरकार समाना है
जिन्स[5] कोई हमजिन्स[6] में अपने जिस दम आन समाई है
हरफ़ दुई[7] का कौन कहे दोनों की दूर जुदाई[8] है
बन्दा जिसमें सोच समझ है साफ़ उस पर यह बात हुई
नारायन की ज़ात में मिलकर एक ही 'नानक' ज़ात हुई ॥२॥

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी ठाकुर का सेवकु सदा पूजारी ।
ठाकुर के सेवक कै मनि परतीति ठाकुर के सेवक की निरमल रीति ।
ठाकुर कउ सेवकु जानै संगि प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि ।
सेवक कउ प्रभ पालनहारा सेवक की राखै निरंकारा ।
सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै,
नानक सो सेवकु सासि सासि समारै ॥३॥

---

१ प्रभु २ स्रष्टा ३ भरोसा ४ ब्रह्मज्ञान ५ वस्तु, ज़ात ६ अपने समान वस्तु या ज़ात (जीव ब्रह्म में) ७ द्वैत भाव, अपना-बिराना ८ अलगाव ।

अपने प्यारे बन्दे का वह परदा ढाँके ऐब छिपाये
इज़्ज़त अपने सेवक की वह सर पर रख कर हाथ बचाये
शान बड़ाई देने वाला दास को इज़्ज़त देता है
अपना नाम जपाने की सेवक को हिम्मत देता है
मालिक अपने सेवक की खुद शान औ इज़्ज़त रखता है
रुतबा उसका कौन बताये ऐसी अज़मत[1] रखता है
रब के प्यारे सेवक को फिर कौन पहुँचने वाला है
ऊँचे से वह ऊँचा है वह बाला से भी बाला है
जिस सेवक को पाक खुदा ने अपनी ख़िदमत बख़्शी है
'नानक' उस सेवक को उसने हर सू[2] इज़्ज़त बख़्शी है ॥३॥

अपने जन का परदा ढाकै अपने सेवक की सर पर राखै।
अपने दास कउ देइ वडाई अपने सेवक कउ नामु जपाई।
अपने सेवक की आपि पति राखै ताकी गति मिति कोइ न लाखै।
प्रभ के सेवक कउ को न पहूचै प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे।
जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ,
नानक सो सेवकु दह दिसि प्रगटाइआ ॥४॥

मालिक का जो सेवक है हर हुक्म वह पूरा करता है
मालिक का जो सेवक है मालिक की सेवा करता है
मालिक का जो सेवक है ईमान से मन भरपूर करे
मालिक का जो सेवक है वह सब अच्छे दस्तूर[3] करे
मालिक का जो सेवक है खुद मालिक उसके संग में है
मालिक का जो सेवक है वह रँगा उसी के रंग में है
मालिक का जो सेवक है रब उसको रोज़ी देता है
मालिक का जो सेवक है रब उसकी पत[4] रख लेता है
मालिक का जो सेवक है रब मेहर[5] से जिसको शाद[6] करे
'नानक' ऐसा सेवक ही मालिक को हरदम याद करे ॥४॥

नीकी कीरी महि कल राखै भसम करै लसकर कोटि लाखै।
जिस का सासु न काढत आपि ता कउ राखत दे करि हाथ।

---

१ प्रतिष्ठा २ हर प्रकार से ३ अमल, आचरण ४ लाज ५ दया ६ प्रसन्न।

मानस जतन करत बहु भाति तिसके करतब बिरथे जाति।
मारै न राखै अवरु न कोइ सरब जीआ का राखा सोइ।
काहे सोच करहि रे प्राणी जपि नानक प्रभ अलख विडाणी ॥५॥

एक नन्हीं सी चिउँटी को जब ज़ोर अता[1] रब पाक[2] करे
लश्कर लाख करोड़ों का वह पल के अन्दर ख़ाक करे
जिसकी जान न ले वह मालिक जिसको मार न डाले आप
हाथ करम का उस पर रखकर उसकी जान बचा ले आप
बन्दा कोशिश लाख करे वह हिम्मत सौ सौ बार करे
करतब उसके जायँ अकारथ कार वो सब बेकार करे
मारे किसकी ताक़त है और रखे किसको हिम्मत है
सब की रक्षा करने वाली उस ख़ालिक़[3] की क़ुदरत[4] है
ओ फ़ानी[5] किस सोच में है तू सोच ने तुझको मारा है
'नानक' जप ले नाम उसी का जो बिन-देखा[6] न्यारा है ॥५॥

बारंबार बार प्रभु जपीऐ पी अंमृतु इहु मनु तनु ध्रपीऐ।
नाम रतनु जिनि गुरमुखि पाइआ,
तिसु किछु अवरु नाही दृसटाइआ।
नामु धनु नामो रूपु रंगु नामो सुखु हरिनाम का संगु।
नाम रसि जो जन तृपताने मन तन नामहि नामि समाने।
उठत बैठत सोवत नाम कहु नानक जन कै सद काम ॥६॥

हरदम नाम उसी का लो हर बार उसी की याद करो
अमरित है यह पी पी कर तन सीर करो दिल शाद करो
गुरु के मुँह से सुन कर जिसने नाम का हीरा पाया है
उसको फिर इस दुनिया में कुछ और नज़र कब आया है
नाम ही उसकी दौलत है हक़ नाम[7] ही रूप और रंग भी है
नाम ही उसकी राहत[8] है हक़ नाम ही उसके संग भी है
नाम के रस को प्रेम के लब[9] से जो ख़ुशक़िस्मत पीता है
नाम बसे तन मन में उसके नाम के बल पर जीता है

१ प्रदान २ पवित्र प्रभु ३ स्रष्टा ४ प्रकृति ५ क्षणभंगुर (नाशवान) ६ अलख (न दिखाई देने वाला) ७ सत्नाम ८ सुख चैन ९ होठ।

जब वह उठे बैठे सोये नाम ही लेता रहता है
काम ये रब के बन्दे का है सुन जो 'नानक' कहता है ॥६॥

बोलहु जसु जिहवा दिन राति प्रभि अपनै जन कीनी दाति
करहि भगति आतम कै चाइ प्रभ अपने सिउ रहहि समाइ
जो होआ होवत सो जानै प्रभ अपने का हुकमु पछानै
तिस की महिमा कउन बखानउ तिस का गुनु कहि एक न जानउ
आठ पहर प्रभ बसहि हजूरे कहु नानक सेई जन पूरे ॥७॥

जो बन्दे दिन रात ज़बाँ से दाता के गुन गाते हैं
निअमत ख़ास खुदा ने दी है काम में उसको लाते हैं
शौक़ से भक्ती करते हैं जो रब से प्रेम लगाते हैं
रब में आप समाते हैं[1] सुख चैन हमेशा पाते हैं
गुज़रा है सो जानें वह जो आयेगा सो जानें वह§
हुक्म प्रभू का मानें वह उस मालिक को पहचानें वह
उसकी क्या तारीफ़ करूँ वह तारीफ़ों से बाला है
एक सिफ़त मालूम नहीं वह लाखों वस्फ़ों वाला है
जिनके मन में आठ पहर उस रब की ख़ास हुज़ूरी हो
'नानक' कामिल बन्दे[2] हैं वह बात उन्हीं की पूरी हो ॥७॥

मन मेरे तिनकी ओट लेहि मनु तनु अपना तिन जन देहि
जिन जनि अपना प्रभू पछाता सो जनु सरब थोक का दाता
तिसकी सरनि सरब सुख पावहि तिसकै दरसि सभ पाप मिटावहि
अवर सिआनप सगली छाडु तिसु जन की तू सेवा लागु
आवनु जानु न होवी तेरा नानक तिसु जनके पूजहु सद पैरा ॥८॥

ऐ मन मेरे ओट[3] लिया कर ऐसे कामिल बन्दों की
तन मन कर क़ुरबान उन्हीं पर छोड़ दे सोहबत गंदों की
जिसने रब को जाना है और शान उसकी पहचानी है
दिल वाला फ़ैयाज़[4] वही है सब चीज़ों का दानी है

---

१ तल्लीन होते हैं २ पूर्ण भक्त ३ आश्रय ४ सख़ी, दाता।
§ भूत-भविष्य का उन्हें ज्ञान रहता है।

ख़बर पहुँची है कि तुम मस्जिद के क़रीब रहने का इरादः करते हो। उन्होंने कहा हाँ, या रसूलल्लाह ! हमने इसका इरादः किया है। आपने फ़रमाया, ऐ बनी सलॅमः ! अपने घरों को न छोड़ो, तुम्हारे सब नक्शॅ क़दम लिखे जायेंगे; अपने घरों को न छोड़ो, तुम्हारे सब नक्शॅ क़दम लिखे जायेंगे।§

हज़रत अबू मुन्ज़िर उबई बिन कऽब (र०) से रियायत है कि एक आदमी का घर मस्जिद से बहुत फ़ासले पर था, ऐसा किसी का न था। उसकी कोई नमाज़ जमाअत से फ़ौत न होती थी। उससे किसी ने कहा या मैंने ही कहा कि एक गधा ख़रीद लो उस पर रात की तारीकियों[1] में और दिन की तपती रेत में आया जाया करो। कहा मैं ऐसे घर से ख़ुश नहीं होता जो मस्जिद के पहलू में हो। मैं चाहता हूँ कि मस्जिद की तरफ़ मेरा आना और घर की तरफ़ मेरा पलट जाना लिखा जाये। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह ने तुम्हारे लिए सब का सब जमा कर दिया है।

६३० सवाब की उम्मीद और अल्लाह के वादों का यक़ीन छोटे अमल को बलन्द कर देता है

हज़रत अब्दुल्लाह इब्नि अम्र (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, चालीस बातें हैं उनमें ख़ूबी की बात बकरी का अतीयः[2] है। जो शख़्स भी इन ख़सलतों पर सवाब की उम्मीद में और जिसका वादा किया गया है उसकी तस्दीक़ में अमल करेगा॰§ अल्लाह तआला उसके ज़रीये उसको जन्नत में दाख़िल करेगा। [बुख़ारी]

६३१ एक खजूर का टुकड़ा भी जहन्नम से हिजाब[3] बन सकता है

हज़रत अदी बिन हातिम (र०) से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से सुना है, फ़रमाते थे कि (दोज़ख़ की) आग से बचो अगरचि एक खजूर का टुकड़ा ही देकर। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हज़रत अदी बिन हातिम (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अनक़रीब क़ियामत के दिन हर शख़्स से उसका परवरदिगार बातें करेगा, इसके और उसके दर्मियान कोई तर्जुमान[4] न होगा, अपनी सीधी तरफ़ देखेगा तो वही देखेगा जो उसने

---

१ अँधेरों २ दान, तुहफ़ः ३ आड़, ओट ४ दुभाषिया, भाषान्तरकार।

§ यानी मस्जिद से दूर रहने में ज़ियादः क़दम पड़ेंगे, ज़ियादः सवाब मिलेगा।

॰§ अमल की रूह और उसकी जान, अल्लाह के सवाब की उम्मीद और अल्लाह के वादः का यक़ीन और उसकी तस्दीक़ है। छोटे-छोटे अमल को यह चीज़ आसमान पर पहुँचा देती है। इसके बग़ैर बड़े से बड़ा अमल बेजान है।

आगे भेजा है। और जब अपनी बाईं जानिब देखेगा तो वही नज़र आयेगा जो उसने आगे भेजा है। और जब अपने सामने देखेगा तो (दोज़ख़ की) आग को देखेगा जो उसके चेहरे के सामने होगी; तो आग से बचो अगरचि एक खजूर के टुकड़े ही से क्यों न हो।

२२/१३० खाने पीने पर अल्लाह का शुक्र

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, अल्लाह तआ़ला उस बन्दे से ख़ुश होता है जो खाना खाकर और पानी पीकर उसकी तारीफ़ करे। [मुस्लिम]

२३/१३१ सद्क़ः में गुञ्जाइश

हज़्रत अबू मूसा अश्अ़री (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि हर मुसलमान को सद्क़ः देना लाज़िम है। कहा, अगर इस्तिताअ़त[1] न हो तो आप क्या फ़रमाते हैं? फ़रमाया, अपने हाथ से काम करे, अपने को भी नफ़ः पहुँचाये और सद्क़ः भी करे। कहा अगर इसकी भी इस्तिताअ़त न हो? फ़रमाया, हाजतमन्द[2] और मुसीबतज़दः की मदद करे। कहा, अगर यह भी न कर सके? फ़रमाया, नेकी का हुक्म दे। कहा अगर इसकी भी इस्तिताअ़त न हो? फ़रमाया, तो अपने को बुराइयों से बचाये, यह भी सद्क़ः है। [बुख़ारी, मुस्लिम]

अ़िबादत[3] व ताअ़त[4] में इऽ़तिदाल[5]

आयात

ता॑ हा॑ ज़ मा॑अन्ज़ल्ना अ़लैकल् क़ुर्आन लितश्क़ा॑ ला

ता॑-हा॑ हमने तुम पर क़ुर्आन इसलिए नहीं उतारा कि तुम तकलीफ़ उठाओ। [सू० ताहा, रु० १ आ० १-२]

…युरीदुल्लाहु बिकुमुल्युस्र व ला युरीदु बिकुमुल्अ़ुस्र ज़…

अल्लाह तुम्हारे साथ आसानी (करना) चाहता है और तुम को तकलीफ़ देना नहीं चाहता। [सू० बक़र, रु० २३ आ० १८५]

---

१ सामर्थ्य २ मुहताज, ज़रूरतमंद ३ भक्ति ४ उपासना ५ संतुलन, स्थिरता

अह़ादीस

१/१३२ सबसे अच्छा अमल और अ़िबादत वह है जो आदमी हमेशा करे

हज़्रत आयशः (र०) से रिवायत है कि उनके पास एक औरत बैठी थी। इतने में नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ लाये। पूछा यह कौन है, कहा, यह फलाँ औरत है। और यह बड़ी नमाज़ें पढ़ती है। आपने फ़रमाया उतना ही करो जितनी तुम में ताक़त हो; अल्लाह न उकतायेगा, तुम उकता जाओगी। अल्लाह तआ़ला को वही अमल ज़ियादः महबूब है जिस पर करने वाला मुदावमत[1] करे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि तीन आदमी नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम की बीवियों के घर आये और नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम की अ़िबादत के मुतअल्लिक पूछने लगे। जब उन्हें ख़बर दी तो गोया उन्होंने कम समझा। कहा, हमारा और नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम का क्या मुक़ाबला, आपके तो तमाम अगले पिछले गुनाह बख़्श दिये गये। एक ने कहा मैं हमेशा रात को नमाज़ पढ़ूँगा; दूसरे ने कहा मैं हमेशा रोज़े रखूँगा और इफ़्तार न करूँगा[2]; तीसरे ने कहा मैं कभी निकाह न करूँगा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम तशरीफ़ लाये और फ़रमाया तुम ही इस तरह कहते हो? ख़ुदा की क़सम मैं तुमसे बहुत ज़ियादः अल्लाह से डरने वाला हूँ, लेकिन मैं रोज़े भी रखता हूँ और इफ़्तार भी करता हूँ, नमाज़ें भी पढ़ता हूँ, सोता भी हूँ और औरतों से शादी भी की है। पस जो मेरी सुन्नत[3] से हटा वह मुझसे नहीं (मुस्लिम)

२/१३३ बेजा सख़्ती[4] हलाकत[5] का सामान है

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जिसने बेजा सख़्ती की वह हलाक हुआ। (मुस्लिम)

३/१३४ दीन से ज़ोर-आज़माई

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि दीन आसान है। दीन से जिसने ज़ोर-आज़माई[6] की, दीन ने उसको हरा दिया। पस म्यानारवी[7] इख़्तियार करो और इअ़तिदाल से[8] काम लो। ख़ुशख़बरी लो। सुबह व शाम से मदद चाहो और कुछ अन्धेरे में§ उठने से।

---

१ हालत पर क़ाइम रहना, स्थिरता २ बिला नाग़ा रखूँगा ३ पथ, इस्लाम द्वारा प्रदर्शित पथ ४ अनुचित तप ५ विनाश ६ धर्म में हठ, पराक्रम-प्रदर्शन ७ मध्यम मार्ग ८ संतुलन से, स्थिरता से।

---

§ यानी सुबह शाम और तहज्जुद की नमाज़।

५६ चुस्ती की हालत में नमाज़ पढ़े, जब नींद का ग़ल्बः हो, सो जाये

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह (स०) मस्जिद में तशरीफ़ लाये और एक रस्सी दो खम्बों के दर्मियान खिंची हुई थी। आपने फ़रमाया यह कैसी रस्सी है, लोगों ने कहा यह ज़ैनब (र०) की रस्सी है। जब नींद का झोंका आता है तो इसीसे लटक जाती हैं। आपने फ़रमाया इसको खोलो; जब चुस्ती रहे उस वक़्त तक नमाज़ पढ़ो और जब सुस्ती आने लगे तो सो जाओ [बुख़ारी व मुस्लिम]

हज़्रत आयशः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया कि जब कोई नमाज़ पढ़ता हो और नींद उसको परेशान करती हो तो सो जाये; यहाँ तक कि नींद ग़ायब हो जाये। अगर कोई नमाज़ में है और नींद से मदहोश हो रहा है तो मुमकिन है कि वह इस्तिग़फ़ार[1] करना चाहे और उल्टी बद्दुआ करने लगे और अपने को कोसने लगे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

५७ मुतवस्सित[2] नमाज़, मुतवस्सित ख़ुतबः

हज़्रत जाबिर (र०) बिन समुरह से रिवायत है कि मैं नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के साथ नमाज़ में शरीक था। पस आपकी नमाज़ भी बीच की थी और आपका ख़ुतबः भी बीच का था। [मुस्लिम]

५८ नफ़्स और अह्ल का हक़[3]

हज़्रत वहब (र०) बिन अब्दुल्लाः से रिवायत है कि नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज़्रत सलमान (र०) और हज़्रत अबू दरदा (र०) के दर्मियान भाईचारा करा दिया। एक दिन हज़्रत सलमान (र०) हज़्रत अबू दरदा (र०) के घर आये। उनकी बीवी को देखा, बहुत मामूली कपड़ों में थीं, कहा तुम्हारा क्या हाल है? कहा तुम्हारे भाई अबू दरदा (र०) को दुनिया में किसी चीज़ की हाजत नहीं। इतने में हज़्रत अबू दरदा (र०) आ गये, उनके लिए खाना तैयार किया गया। हज़्रत अबू दरदा (र०) ने हज़्रत सलमान (र०) से कहा मैं रोज़ः‡ हूँ, तुम खाओ। हज़्रत सलमान (र०) ने कहा जब तक तुम न खाओ मैं न खाऊँगा, तो उन्होंने खाना खाया। जब रात हुई तो हज़्रत अबू दरदा (र०) खड़े हुए। हज़्रत सलमान (र०) ने कहा सो जाओ, वह

---

१ अपराधों की क्षमा-प्रार्थना २ मध्यम ३ अपनी जान और अपने लोगों के प्रति भी हमारा कुछ फ़र्ज़ है।

‡ वह रोज़ः जो लाज़िमी न हो; सवाब के लिए किया जाय।

सो गये। फिर खड़े हुए, फिर कहा अभी सो, जब आख़िर रात हुई तो हज़रत सलमान (र०) ने कहा, अब उठो। फिर दोनों ने नमाज़ पढ़ी। हज़रत सलमान (र०) ने कहा, तुम्हारे रब का तुम पर हक़ है। तुम्हारे नफ़्स का तुम पर हक़ है। और तुम्हारी बीवी का तुम पर हक़ है। पस हर एक का हक़ उसके हक़ के मुताबिक़ अदा करो। वह नबी सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के पास आये और इसका ज़िक्र किया। आपने फ़रमाया, सलमान (र०) ने सच कहा। [बुख़ारी]

हज़रत अब्दुल्लाह बिन अम्र (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम को ख़बर दी गयी कि मैं कहता हूँ कि जब तक ज़िन्दः रहूँगा दिन को रोज़े रक्खूँगा और रात को अिबादत करूँगा। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, तुम्हीं ने यह कहा है? मैंने कहा या रसूलल्लाह! मेरे माँ बाप आप पर फ़िदा हों, बेशक मैंने ही यह बात कही है। आपने फ़रमाया तुम इसकी इस्तिताअ़त[1] नहीं रख सकते। रोज़: रक्खो और इफ़्तार[2] करो†। सोओ और जागो और महीने में तीन दिन रोज़े रक्खो। एक रोज़े में दस रोज़े का सवाब मिलेगा, इसी तरह पूरे रोज़े का सवाब मिलेगा। मैंने कहा मैं इससे ज़ियाद: की ताक़त रखता हूँ। फ़रमाया, एक दिन रोज़ा रक्खो और दो दिन नाग़ा करो। मैंने कहा, मैं इससे ज़ियाद: कर सकता हूँ। आपने फ़रमाया, एक दिन रोज़ा रक्खो एक दिन नाग़ा करो। हज़रत दावूद (अ०) इसी तरह रोज़े रखते थे और यह रोज़े की सबसे ज़ियाद: मुअ़तदिल शक्ल[3] है।

एक रिवायत में है कि यह रोज़े सबसे ज़ियाद: अफ़्ज़ल[4] हैं। मैंने कहा मैं इससे ज़ियाद: की ताक़त रखता हूँ। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मैं इससे ज़ियाद: अफ़्ज़ल नहीं समझता।

हज़रत अब्दुल्लाह (र०) कहते हैं कि अगर मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के फ़रमाने के मुताबिक़ तीन रोज़ों को क़बूल करता तो यह मुझे मेरे घरवालों और माल से ज़ियाद: महबूब[5] होते।

और एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने मुझसे फ़रमाया, मैंने सुना है कि तुम दिन में रोज़े रखते हो और रात में अिबादत करते हो, मैंने कहा हाँ या रसूलल्लाह। फ़रमाया, नहीं तुम यह न करो, रोज़े रक्खो और इफ़्तार करो, सोओ और जागो, बेशक

---

१ सामर्थ्य २ रोज: न रखना, नाग़ा करना ३ मध्यम श्रेणी ४ श्रेष्ठ ५ प्रिय

† इफ़्तार से यहाँ मुराद है कि एक दिन रोज़: रक्खो और एक दिन नाग़ा करो।

तुम्हारे जिस्म का तुम पर हक़ है। तुम्हारी बीवी का तुम पर हक़ है। और तुम्हारे मिहमानों का तुम पर हक़ है। महीने में तीन दिन रोज़े रक्खो, यह तुम्हारे लिए काफ़ी है। तुम्हारे लिए इसमें दसगुना सवाब है। यह पूरे ज़माने के रोज़े हैं। लेकिन मैंने सख़्ती की तो मुझपर सख़्ती की गयी। मैंने कहा, या रसूलल्लाह ! मुझमें क़ुव्वत है। आपने फ़रमाया, हज़्रत दावूद (अ०) के रोज़े रक्खो जैसे वह रखते थे; इससे ज़ियादः न रक्खो। मैंने कहा हज़्रत दावूद (अ०) के रोज़े कैसे थे ? आपने फ़रमाया, आधे ज़माने के।

हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) जब बूढ़े हो गये तो कहते थे, ऐ काश मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के इर्शाद पर अ़मल करता।

एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मुझको खबर पहुँची है कि तुम दिन में रोज़े रखते हो और रात को क़ुर्आन पढ़ते हो। मैंने कहा हाँ या रसूलल्लाह ! इसमें मेरी नीयत भलाई की है। आपने फ़रमाया, हज़्रत दावूद अ़लैहिस्सलाम के ऐसे रोज़े रक्खो। वह लोगों में सबसे ज़ियादः अ़िबादत करने वाले थे। और क़ुर्आन हर महीने ख़त्म करो। मैंने कहा या नबी अल्लाह ! मैं इससे ज़ियादः ताक़त रखता हूँ। फ़रमाया, बीस दिन में ख़त्म करो। मैंने अर्ज़ किया कि मुझमें इससे ज़ियादः ताक़त है। फ़रमाया, सात दिन में ख़त्म करो। मैंने कहा या नबीअल्लाह ! मैं इससे ज़ियादः ताक़त पाता हूँ। फ़रमाया, सात दिन में ख़त्म करो और इस पर ज़ियादती न करो। पस मैंने सख़्ती की तो मुझ पर सख़्ती की गयी। नबी सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, तुम नहीं जानते शायद तुम्हारी उम्र लाँबी हो। आपने जो मुझसे फ़रमाया था वही हुआ। जब मैं बूढ़ा हुआ तो तमन्ना करता था कि मैं रसूलुल्लाह सल्लल्लाह अ़लैहि व सल्लम की बात मान लेता। एक रिवायत में है, जिसने हमेशा रोज़े रक्खे उसके रोज़े नहीं। (तीन बार फ़रमाया)।

एक रिवायत में है कि अल्लाह तआ़ला को सबसे ज़ियादः हज़्रत दावूद (अ०) के रोज़ महबूब थे। और अल्लाह तआ़ला को सबसे ज़ियादः हज़्रत दावूद (अ०) की नमाज़ महबूब थी। वह निस्फ़ रात को सोते थे, तिहाई रात को अ़िबादत करते थे। और उसके छठे हिस्से में सोते थे। और एक दिन रोज़ा रखते थे और एक दिन नाग़ा करते थे, और दुश्मनों से लड़ते थे तो भागते नहीं थे।

एक रिवायत में है कि हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) ने कहा, मेरे बाप ने एक हसब वाली औरत से मेरी शादी की। वह अपनी बहू से पूछा करते थे

कि तुम्हारे शौहर कैसे हैं ? वह जवाब में कहती थीं कि बड़े अच्छे आदमी हैं। जब से हम आये हैं न सोते हैं, न हमारे किसी बात पर मुअ़तरिज़ होते हैं[1]। इसको एक ज़माना हो गया। जब रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से इसका ज़िक्र किया गया तो आप ने फ़रमाया उनको मुझसे मिलाओ। जब मैं मिला तो आपने फ़रमाया, तुम कैसे रोज़े रखते हो ? मैंने कहा हर रोज़। फ़रमाया, क़ुर्आन कैसे ख़त्म करते हो ? मैंने कहा, हर रात में एक (और उसी तरह ज़िक्र किया जैसे ऊपर गुज़र चुका है।) वह (यानी हज़्रत अब्दुल्लाह र०) दिन को अपने घरवालों से दौर करते थे ताकि रात को मिहनत में तख़्फ़ीफ़ हो और जब क़ुव्वत हासिल करने का इरादः करते थे तो कुछ दिनों के रोज़े छोड़ देते थे, उसको गिनते रहते थे, फिर बाद में रखते थे। यह नापसन्द करते कि जो काम हुज़ूर (स०) के ज़माने में करते थे, उसको छोड़ दें।

दो हालतों का फ़र्क निफ़ाक़ नहीं ◎

हज़्रत हनज़लः इब्निर्रबी (र०) से रिवायत है (यह रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के कातिब थे) कि एक दिन अबू बक्र (र०) मुझसे मिले और मेरा हाल पूछा। मैंने कहा, हनज़लः मुनाफ़िक़ हो गया। कहा सुब्हानल्लाह ! यह तुम क्या कहते हो। मैंने कहा, जब हम रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास होते हैं और आप जन्नत और दोज़ख़ का ज़िक्र करते हैं तो गोया हमारी आँखें देखती हैं और जब हम अपने घरवालों के पास होते हैं तो बीवी, बच्चे और खेती बाड़ी में बहुत कुछ भूल जाते हैं। अबू बक्र (र०) ने कहा तुमने तो मेरे दिल की कैफ़ियत बयान कर दी। मेरा भी यही हाल है। फिर हम दोनों चले। रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम के पास आये और मैंने कहा या रसूलल्लाह, हनज़लः मुनाफ़िक़ हो गया। आपने फ़रमाया यह क्या ? मैंने कहा, या रसूलल्लाह ! जब हम आपके पास होते हैं और आप जन्नत-दोज़ख़ का ज़िक्र फ़रमाते हैं तो गोया हमारी आँखें देख रही हैं। और जब हम अपने घरवालों के पास जाते हैं तो बीवी, बच्चे, खेती बाड़ी के शग़ल में हम भूल जाते हैं। आपने फ़रमाया, क़सम है उसकी जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है। जिस हाल पर तुम मेरे पास रहते हो अगर इस पर हमेशा क़ायम रहो तो फ़िरिश्ते तुम्हारे रास्तों पर और तुम्हारे बिस्तरों पर तुमसे मुसाफ़हः[2]

---

१ आपत्ति करते हैं २ हाथ मिलाएँ।

◎ मनुष्य की चित्तवृत्ति सदा समान नहीं रहती। इसके यह माने नहीं कि वह बहुरूपिया या ठग है।

करें[छ]। लेकिन ऐ हनज़लः यह बात गाहे गाहे। (तीन मर्तबः आपने फ़रमाया) [मुस्लिम]

६१ धूप में खड़े रहने की मन्नत

हज़रत इब्नि अ़ब्बास (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ुतबा फ़रमा रहे थे। एक आदमी को खड़ा देखकर उसके मुतअ़ल्लिक़ दरयाफ़्त फ़रमाया कि यह कौन हैं? लोगों ने कहा यह अबू इस्राईल हैं। उन्होंने मिन्नत मानी है कि धूप में खड़े रहें, न साया लें न बात करें न बैठें, और रोज़े रक्खें। आपने फ़रमाया, उनसे कहो बैठो, बात करो, साया लो और अपने रोज़े को पूरा करो‡ [बुख़ारी]

आमाल की मुहाफ़ज़त और निबाह[1]

आयात

अलम् यअ्नि लिल्लजीन आमनू अन् तख़्शअ क़ुलूबुहुम् लिज़िक्-रिल्लाहि व मा नज़ल मिनल्हक़्क़ि ला व ला यकूनू कल्लजीन ऊतुल्किताब मिन् क़ब्लु फ़ताल अलैहिमुल्-अमदु फ़क़सत् क़ुलूबुहुम् ...

छ इसलिए कि फिर तुम जिस्मानी लोग नहीं हो, रूहानी व नूरानी लोग हो जिनके और फ़िरिश्तों के दर्मियान जिसमानीयत व माद्दीयत का कोई हिजाब नहीं। [हज़रत हनज़लः का घर गृहस्थी में फँस कर रसूल स० के कथन व दोज़ख-बहिश्त के नज़्ज़ारे भूल जाना और इस अपनी नामुनासिब हालत को सरे आम कहते फिरना ही इस बात का सुबूत है कि वह निफ़ाक़ (पाखण्ड) से कोसों दूर हैं और फ़िरिश्तों जैसी रूह उनमें है। —लिप्यन्तरणकार]

‡ ऐसी बेफ़ायदः मशक़्क़त[2] इस्लाम में जाइज़ नहीं। अल्लाह का क़ुर्ब[3] इत्तिबाअ़ सुन्नत[4] से हासिल होता है; न कि महज़ जिस्मानी तअ़ज़ीब[5] और नफ़्सकुशी[6] से; साया अगर अल्लाह ने मुसलमानों के लिए नहीं पैदा किया तो क्या काफ़िरों के लिए पैदा किया है।

---

१ कर्मों पर दृढ़ता और उनका पालन २ व्यर्थ तामसी तप ३ सामीप्य, सान्निध्य ४ नबी के पद-चिह्नों पर चलने ५ शरीर को कष्ट देना ६ अनुचित इंद्रिय-दमन।

बृद्धि हेबा कटि पृथु अधिक नोहि।
बिधिपूर्वे सिंह लक्ष्य ग्रासिछि येहि। ५०।

सरलार्थ—गर्भावस्था के कारण उनके कटिप्रदेश अधिक उन्नत हुए। यह स्वाभाविक ही है। इसके पूर्व इन्हीं कटियों ने पतलेपन में सिंह की कमर को ग्रास किया था, अर्थात् जीता था। रानियों की क्षीण कटियाँ अब भारी हो गयीं। (५०)

बिकीर्ण्ण मधुरसरे उदरपथ।
बमन हेबा चित्र कि आन पदार्थ। ५१।

सरलार्थ—जिसका उदर मधुर रस से पूर्ण रहता है, उसके लिए यह कोई आश्चर्य नहीं कि कोई दूसरी चीज़ खाने से उसका वमन हो जाय। यहाँ रानियों के उदरों के, नारायण के मधुर रस से पूर्ण होने के कारण, दूसरे पदार्थ भक्षण करने से, उनकी उलटी हो गई। तात्पर्य यह है कि गर्भोदय की प्रथमावस्था में अरुचि के कारण स्त्रियों को उलटी होती है। (५१)

विकीर्ण—पूर्ण; चित्र कि—विचित्र है क्या? (अर्थात् नहीं); आन पदार्थ—दूसरे पदार्थ। (५१)

बसन्त मधुमासरे नवमी ख्याति।
बिपतिध्वज बहिले चतुर्द्धामूर्त्ति। ५२।

सरलार्थ—वसन्त ऋतु के चैत्र महीने में शुल्कपक्ष की नवमी तिथि प्रसिद्ध है। उस तिथि में विष्णु भगवान् ने चार प्रकार की मूर्त्तियाँ धारण कीं। (५२)

मधुमास—चैत का महीना; विपतिध्वज—गरुड़ध्वज, विष्णु; बहिले—वहन या धारण कीं; चतुर्द्धामूर्ति—चार प्रकार की मूर्त्तियाँ। (५२)

ब्युत्पत्ति ए कौशल्या कैकेयी सुमित्रा।
बासबदिगद्रि - तिनिश्रृंग - शोभिता। ५३।

सरलार्थ—इस समय कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा—तीन रानियाँ उदयाचल पर सुशोभित तीन श्रृंगों की तरह दिखाई दीं। (५३)

बासवदिगद्रि—इन्द्र की दिशा अर्थात् पूर्व दिशा का पर्वत, उदयाचल। (५३)

बिधु गुरु भार्गव अङ्गिरा उदित।
बिनश्यति धात्री-रात्रि निबिड़ ध्वान्त। ५४।

सरलार्थ—चन्द्र, वृहस्पति, शुक्र और अंगिरस उदित होकर रात्रि के घने अन्धकार का नाश करते हैं। उसी तरह रानियों के उदरों से चार

पुत्रों ने जन्म लेकर पृथिवी-रात्रि के घने अन्धकार अर्थात् पृथिवी के प्राणियों के चिन्तारूपी अन्धकार का नाश कर दिया। (५४)

विधु—चन्द्र; गुरु—वृहस्पति; भार्गव—शुक्र; अंगिरा—ब्रह्मा के एक मानस पुत्र; धात्री-रात्रि—पृथिवी-रात्रि; ध्वान्त—अन्धकार, चिन्ता-तामस। (५४)

बधाइ लभिले नृपे नारीए कहि।
बार्त्ताबहे राज्यान्तरे गमिले तहिँ। ५५।

सरलार्थ—अन्तःपुर की स्त्रियों ने राजा से यह शुभ संवाद कहकर पुरस्कार प्राप्त किया और दूत लोग यह सुसंवाद लेकर अन्यान्य राज्यों को गये। (५५)

बधाई—अभिनन्दन, (यहाँ पुरस्कार); गमिले—गये। (५५)

बारता कहि सामन्त पात्रे त्वरित।
बेत्रके कटक कुण्डळरे मण्डित। ५६।

सरलार्थ—द्वारपालों ने शीघ्रता से सामन्तों तथा मंत्रियों को यह सुसंवाद जताकर सोने के कंगन तथा कुण्डल आदि आभूषण प्राप्त करके पहने। (५६)

बेत्रके—द्वारपालों ने; कटक—सोने के कंगन। (५६)

बाट हाट जूर तूर बाजे असंख्य।
बिदूषक कात्यायनी हृष्ट अलेख। ५७।

सरलार्थ—इस उत्सव में हाट-बाट लूटे गये। अनगिनत तुरहियाँ बजीं। भाटों तथा प्रौढ़ा विधवाओं का आनन्द अवर्णनीय था। घर-घर यह सुभ संवाद पहुँचाकर उन्होंने पुरस्कार प्राप्त किये। (५७)

विदूषक—मनोरञ्जन कराने वाले, भाट; कात्यायनी—प्रौढ़ा विधवा स्त्रियाँ। (५७)

बृन्दबृन्द होइ तहिँ जननीमाने।
बसुधापति देखिले सूनु सुमने। ५८।

सरलार्थ—समूहों में, दूसरी माताएँ (विमाताएँ) सूतिका-गृह में इकट्ठी हुईं। उस समय राजा ने पुत्रों को सहर्ष देखा। (५८)

सूनु—पुत्र। (५८)

बनजनाभ पदकु सार्थ करइ।
बिलम्बित नाड़ नाभिमडळे शोहि। ५९।

सरलार्थ—पुत्र के नाभि-पद्म से विलंबित नाल को देखकर दशरथ जी ने विष्णु जी के 'पद्मनाभ' नामको सार्थक समझा। अर्थात् रामचन्द्रजी की नाड़ीयुक्त नाभि मृणालयुक्त पद्म की तरह शोभा पाती थी। (५९)

बनजनाभ—पद्मनाभ, विष्णु। (५९)

बिच्छेदन कले नाभि उदय हृदे।
बिग्रह सुबास य़ेणु कस्तूरी बन्दे। ६०।

सरलार्थ—इसके अनन्तर दासियों ने पुत्रों की नाभियों का छेदन किया। तब उनके शरीरों से कस्तूरी की-सी सुगन्ध सुरभित हुई। ऐसा मालूम हुआ मानो उनका अंग-सौरभ कस्तूरी का वन्दनीय (कस्तूरी से श्रेष्ठ) होने के कारण दासियों ने उससे श्रेष्ठतर मृगनाभि के भ्रम से उनका छेदन कर दिया! (६०)

विग्रहसुवास—शरीर के अंगों का सौरभ। (६०)

ब्यकत सूतिकागृह कारुण्यपय।
बिस्तीर्ण अनन्त शोभा शय़्या निश्चय। ६१।

सरलर्थ—सूतिकागृह क्षीरसागर की तरह तथा उसमें बिछाई हुई शय्या विष्णु जी की अनन्तशय्या के समान दीखती थी। (६१)

कारुण्यपय—क्षीरसमुद्र; अनन्त—शेषदेव। (६१)

बीचि चन्द्रातप कुञ्चाबास रचइ।
बिबेकी शुआइ सदा निद्रा चितोइ। ६२।

सरलार्थ—उसी सूतिकागार में बँधे चन्द्रातप में लगे कुञ्चित वस्त्र (झालर) क्षीरसमुद्र की लहरों की तरह दिखाई पड़ते थे। फिर क्षीर-समुद्र में जैसे सरस्वती विष्णु जी की निद्रा भंग करती हुई उन्हें जगाती हैं, वैसे ही सूतिकागृह में चतुर रमणियाँ पुत्रों की निद्रा भंग करती हुई, उन्हें सचेत कर रही हैं। (६२)

बीचि—लहरें; विवेकी—सरस्वती, चतुरा। (६२)

ब्रीहि आदि पञ्चबीज पञ्चुआती य़े।
ब्यान सह पञ्चबायु तोषक से य़े। ६३।

सरलार्थ—पुत्रों के जन्म के पाँचवें दिन लोगों ने उड़द आदि पंच-धान्य-मिश्रित चावल खा कर प्राण, अपानादि पाँच वायुओं को सन्तुष्ट किया। (६३)

ब्रीहि—उड़द; पंचुआती—जन्म के पंचम दिन का उत्सव; ब्यान सह पंचवायु—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान—ये पंचवायु। (६३)

बनजिनी - लक्ष्य - नारी - षष्ठीघरकु ।
बराटके मण्डि कले मनोहरकु । ६४ ।

सरलार्थ—छठे दिन पद्मिनीजातीया स्त्रियों द्वारा षष्ठीगृह को कौड़ियों से मण्डित करने पर वह मनोहर दिखाई दिया । (६४)

बनजिनी—पद्मिनी-जातीया स्त्रियाँ; बराटके—कौड़ियों से । (६४)

बिय़ोग निद्रारे काम मधुरे बाद ।
बिरचि ए पाञ्च उठिआरी सम्पाद । ६५ ।

सरलार्थ—भगवान् विष्णु जी जब योगनिद्रा में अभिभूत थे, उस समय मधु दैत्य के साथ विवाद करने की इच्छा करके जग उठे थे । उसी तरह, इसी उद्देश्य से कि ये पुत्र सौन्दर्य में कामदेव और वसन्त ऋतु के साथ होड़ लगायेंगे, स्त्रियों ने सप्तम दिवस पर उनका 'उठियारी' कार्य सम्पादन किया । (६५)

काम—इच्छा, कन्दर्प; मधु—मधु नामक राक्षस, वसन्तकाल (श्लेष); उठिआरी—जन्म के सातवें दिन का उत्सव । (६५)

बिंश एकदिने दोळिशयन करि ।
बट-पत्र पुटे बाळ मुकुन्द परि । ६६ ।

सरलार्थ—इक्कीसवें दिन पुत्र झूले पर शयन करके ऐसे दिखायी दिये मानो बालमुकन्द ने वट-पत्र पर शयन किया हो । (६६)

बढ़ान्ते य़े दशरथ चाळने कर ।
बाहुऊर्ध्वे मार्कण्डेय थिबा प्रकार । ६७ ।

सरलार्थ—उसी झूले को हिलाने के लिए जब दशरथ जी ने हाथ बढ़ाया, तो वे ऊर्ध्वबाहु मार्कण्डेय की तरह दिखाई दिये । (६७)

ब्रह्मऋषि नाम बिहि श्रीराम राम ।
बोले चन्द्र भद्र हेउ ए पछे रम्य । ६८ ।
बंशे रघु रांघब ए से नाथ भणि ।
बोलाइबे रावणारि राजेन्द्र पुणि । ६९ ।

सरलार्थ—ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने ज्येष्ठ पुत्र का 'श्रीराम' अथवा 'राम' नामकरण करके कहा, "इन नामों के पीछे 'चन्द्र' व 'भद्र' शब्द युक्त होकर ये नाम रमणीय हों; अर्थात् इनके नाम 'श्रीरामचन्द्र', 'श्रीरामभद्र', 'रामचन्द्र' तथा 'रामभद्र' हों । और भी, रघुवंश में जन्म ग्रहण करने

के कारण इनके नाम 'राघव' तथा 'रघुनाथ' होंगे। बाद में रावण का वध करने से 'रावणारि' तथा राजा होकर 'राजेन्द्र' नाम धारण करेंगे"।(६८-६९)

बप्ता दशरथ राजा ग्रेणु स्वभाबे।
बहन्तु ए दाशरथि नामकु एबे। ७०।

सरलार्थ—"फिर दाशरथ के पुत्र होने के कारण ये 'दाशरथि' नाम धारण करें"। (७०)

बिहिले भरत नाम कैकेयी सुते।
बोइले सदा बञ्चिब ए शुभरते। ७१।

सरलार्थ—कैकेयी-पुत्र को देख वशिष्ठ जी ने कहा, "ये हमेशा शुभ कार्य में रत होकर जीवन यापन करेंगे, इसीलिए इनका नाम 'भरत' हो"। (७१)

बेनि सुत सुमित्रार देखि हरष।
बिचक्षण लक्षण - मानङ्के प्रकाश। ७२।
बहु लक्ष्मण नामकु अग्रज सुत।
बोलिबार कुमार एहाकु उचित। ७३।
बड़ शक्तिमन्त न गणिब आनरे।
बृद्धिहेब मेघनाद तोष दानरे। ७४।

सरलार्थ—इसके अनन्तर सुमित्रा के दोनों पुत्रों को देख कर वशिष्ठ जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और कहा, "इन दोनों में से ज्येष्ठ में अच्छे लक्षण सब स्पष्ट हैं। इसलिए ये 'लक्ष्मण' नाम से अभिहित हों। और भी इनका नाम 'कुमार' होना चाहिए। क्योंकि जिस प्रकार कुमार (कार्त्तिकेय) शक्ति-अस्त्रधारण पूर्वक अपने प्रभाव से तारकादि दूसरे वीरों की गणना नहीं करते और मेघनाद (मयूर) का सन्तोष विधान करते हैं, उसी प्रकार ये शक्ति-मान् दूसरे वीरों की गणना नहीं करेंगे और मेघनाद (इन्द्रजित्) का आनन्द छेदन करेंगे। सुतरां, इनके 'लक्ष्मण' और 'कुमार' ही नाम होने चाहिए"। (७२-७३-७४)

मेघनाद—मयूर, इन्द्रजित्; दान—देना, छेदन (श्लेष) (७२-७३-७४)

बिशिष्टे ग्रेणु शत्रुघ्न हेब सहजे।
बिदित एणु शत्रुघ्न नाम अनुजे। ७५।

सरलार्थ—लक्ष्मण के छोटे भाई अति सहज उपायों से अनेक शत्रुओं का नाश करेंगे, यह जानकर वशिष्ठ जी ने उन्हें 'शत्रुघ्न' नाम प्रदान किया। (७५)

बिधान सुमित्रासुत दुहेँ सौमित्रि ।
बोलान्तु बोलि बिगत तहुँ से ग्नति । ७६ ।

सरलार्थ—"ये दोनों सुमित्रा से उत्पन्न हैं। इसीलिए 'सौमित्रि' नाम धारण करें"—यह कहकर ऋषि ने वहाँ से प्रस्थान किया। (७६)

बढ़ि सुते दिनु दिनु प्रभा उदये ।
बळक्षपक्षरे कळाकर पराये । ७७ ।

सरलार्थ—वे चारों पुत्र शुक्ल पक्ष के चन्द्र की तरह दिनों-दिन दीप्तिमान् होकर बढ़ने लगे। (७७)

बळक्षपक्ष—शुक्लपक्ष; कळाकर—चन्द्र। (७७)

बाड़ धरि उभा शोभा केबा कहिब ।
बड़ कवि ग्नहिँ जड़ होइ रहिब । ७८ ।

सरलार्थ—दीवारों के सहारे खड़े होने पर उन पुत्रों की शोभा कौन वर्णन कर सकेगा ? बड़े-बड़े कवि (अथवा ब्रह्मा तक) भी उस छबि का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पाकर मूक रह जायँगे। (७८)

बड़कवि—ब्रह्मा। (७८)

बिहार रचिले क्रमे क्रमे चत्वरे ।
ब्यग्रगति शिशु सङ्गे रङ्गे सत्वरे । ७९ ।

सरलार्थ—उन चारों पुत्रों ने क्रमशः दूसरे शिशुओं के सहित आँगन में नाना रंगों में शीघ्र-गतियाँ करते हुए विहार किया। (७९)

चत्वरे—आँगन में। (७९)

बाल्ये जगती-रचना नोहे बिसोर ।
बालुकारे सर्जना ग्ने सेहि प्रकार । ८० ।

सरलार्थ—भगवान् ने विष्णु-रूप में सृष्टि की रचना की थी, अब राम-रूप धारण करके बालक होते हुए भी, वह इसको नहीं भूले थे; इसीलिए वे अब बालू से नाना प्रकार की रचनाएँ करने लगे। (८०)

जगतीरचना—सृष्टिरचना।(८०)

ब्रतविधान समय तहिँ होइला ।
बद्रिकारे नरनारायण ग्ने लीळा । ८१ ।

सरलार्थ—बदरिकाश्रम में नर-नारायण की जो लीला हुई थी, रामचन्द्र जी का ब्रतोपनयन-समय उपस्थित होने पर वही लीला अयोध्या में सम्पन्न हुई। (८१)

बरही स्वत सृष्टिरे शिखण्ड धरे।
बाहारिले नगर भ्रमण इच्छारे। ८२।

सरलार्थ—मयूर जिस तरह चूल धारण कर पर्वत या वृक्ष पर अपने इच्छानुसार विहार करता है, उसी तरह जगत्पूज्य रामचन्द्रजी उपनयन के उपरान्त काकपक्ष शिखा धारण करके नगर में स्वेच्छानुसार विहार करने लगे। (उपनयन के बाद क्षत्रिय लोग ऐसी शिखा धारण करते हैं।) (८२)

बरही—मयूर, श्रेष्ठ; शिखण्ड—चूल, चोटी, काकपक्ष शिखा; नगर—पर्वत या वृक्ष का, शहर (श्लेष)। (८२)

बाळकिशोर भावकु प्रकाश तहिँ।
बाहग्रीव होइथिले पूर्वरे ग्रेहि। ८३।

सरलार्थ—पहले जिन विष्णु ने हयग्रीवरूप को धारण किया था, उन्हीं विष्णु भगवान् ने रामरूप में अब बाल्य तथा कैशोर अवस्थाओं की लीलाएँ प्रगट कीं। (८३)

बाहग्रीव—हयग्रीव। (८३)

बृष-धनु-ग्रुक्त रामचन्द्र सहजे।
बन्दारु से श्रुतिरूप विद्याधर ग्रे। ८४।

सरलार्थ—मनोहर चन्द्र जैसे सहज ही वृषराशि या धनुराशि से संयुक्त होते हैं, उसी प्रकार सर्वजनवन्दनीय राम ने, अनायास ही अति श्रेष्ठ धनुष से संपर्क-स्थापन करने के उपरान्त (अर्थात् धनुर्विद्या-प्रप्ति के बाद,) वेदाध्ययन आरम्भ किया। (८४)

बृष—वृषराशि, श्रेष्ठ; धनुयुक्त—धनुराशियुक्त, धनुर्द्धारी; रामचन्द्र—रमणीय चन्द्र, प्रभु रामचन्द्र; श्रुति—वेद; बन्दारु—वन्दनीय; विद्याधर—देवताविशेष, विद्याभ्यासी (श्लेष, उपमा-अलंकार)। (८४)

बिनयी दासी प्रकारे शारदा ग्रार।
बणा केउँ विद्या आदि सुमृतिसार। ८५।

सरलार्थ—स्वयं वाग्देवी जिन रामचन्द्रजी की दासीवत् सर्वदा अनुगता हैं, वे मनु आदि स्मृति-विद्याओं में क्यों प्रवीण न होंगे? (८५)

शारदा—सरस्वती, बाग्देवी; सुमृतिसार—स्मृतिश्रेष्ठ। (८५)

बिभ्राणरु दुकूळ मनकु आणिलि।
बड़ स्नेह पीताम्बर नामे जाणिलि। ८६।

सरलार्थ—रामचन्द्र को पीत-वस्त्र धारण किये हुए देख मालूम होता है, मानों उनका 'पीताम्बर' नाम के प्रति अधिक स्नेह है; क्योंकि वे अपने किसी भी अवतार में उसका त्याग नहीं करते। (८६)

बिसोर नोहि कृपण धनर भाव।
बप्ता-माता-मानङ्कर मानसुँ लब। ८७।

सरलार्थ—कंजूस जैसे धन-संचय करने को नहीं भूलता, वैसे पितामाता उन्हें एक क्षण के लिए भी अपने मन से नहीं भुलाते। (८७)

बिसोर—बिसारना; कृपण—कंजूस; बप्ता-मातामानंकर—पिता-माताओं का; लव—एक क्षण के लिए भी। (८७)

बड़ किए नगर जनङ्क ए भाब।
बखाणि होइले एका सेहि प्रस्ताब। ८८।

सरलार्थ—अयोध्या के लोग, 'इस जगत् में सबसे बड़े कौन हैं?' यह प्रश्न आपस में उठाकर राम के नाम का प्रस्ताव करने लगे। (अर्थात् यह निर्णय किया कि रामचन्द्र सबसे बड़े हैं।) (८८)

बर्द्धित से बाणिज्य धनर प्रकार।
बिदेशे होइला दिनुँ दिनुँ प्रचार। ८९।

सरलार्थ—व्यापार के द्वारा जैसे धन का देश-विदेशों में प्रचार तथा वृद्धि होती है, उसी प्रकार धीरे-धीरे रामचन्द्र आदि पुत्रों का यश-गौरव देश-विदेशों में प्रचारित होने लगा। (८९)

बळीवर्द ग्रहिँ जनमुख होइले।
बिक्रय स्थान स्थानके बहि से कले। ९०।

सरलार्थ—व्यापारी बैल पर सामान लादकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर बेचता है। वैसे ही लोगों के मुखरूपी बैलों ने पुत्रों का यश विभिन्न स्थानों में विक्रय किया। (अर्थात् विभिन्न स्थानों में पुत्रों का यशोगान किया। (९०)

बळीवर्द—बैल। (९०)

बात्सल्य - रस - वर्ण्णने रामभद्रर।
बचन मन पवित्र होइला मोर। ९१।
बीरवर उपइन्द्र भञ्ज मो नाम।
बयाणोइ पदे कलि ए छान्द रम्य। ९२।

सरलार्थ—रामभद्र का वात्सल्यरस वर्णन करके मेरा मन तथा वचन पवित्र हुआ। मेरा नाम वीरवर उपेन्द्रभञ्ज है। बयानबे पदों में मैंने इस छान्द को समाप्त किया। (९१-९२)

॥ इति पञ्चम छान्द ॥

षष्ठ छान्द

राग—माळव रोढ़ावाणी

बुधे सावधाने एहु गीतर । बाक चातुरीकि विचार कर ।
बिशुद्ध सिद्धबने मुनिय़ाग । बिसिद्ध करणे राक्षसवर्ग । १ ।
बिदित होइ सुबाहु मारीचे । बचन शून्यरु शुभिला उच्चे ।
बिकुक्षिवंशे जात राम आण । बैवस्वत ए गणे ता मार्गण । २ ।

सरलार्थ–हे पण्डितगण ! सावधान होकर इस गीत की कवित्व-चातुरी पर विचार कीजिए । सुबाहु तथा मारीच प्रमुख राक्षस लोग पवित्र सिद्धवन में ऋषियों के यज्ञकर्म में रोड़े अटकाने लगे । उसी समय आकाश से दैवीवाणी सुन पड़ी कि सूर्यवंश में उत्पन्न रामचन्द्र को यहाँ ले आइए । इन विघ्नकारी राक्षसों के प्रति उनका शर यम के सदृश काम करेगा । अर्थात् उन्हीं के शर से वे मृत्यु को प्राप्त होंगे । (१-२)

बिसिद्ध करणे—विघ्न डालना, रोड़े अटकाना; शुभिला—सुन पड़ी; विकुक्षि-वंशे—सूर्यवंश में; आण—लाओ; बैबस्वत—यम; मार्गण—शर । (१-२)

बिश्वामित्र शुणि उठि गमिले । बेगे कोशळदेश से देखिले ।
बारस्वती छवि अय़ोध्यापुरी । ब्रह्म आकारबन्त य़ेणु धरि । ३ ।

सरलार्थ–वह वाणी सुनते ही विश्वामित्र उठ कर तीव्र गति से कोशल की ओर चल पड़े । कोशल की राजधानी अयोध्या में पहुँच कर उन्होंने देखा कि उस पुरी ने अनिर्वचनीय ब्रह्मलोक की शोभा धारण की है । परब्रह्म रामचन्द्र वहाँ शरीर धारण करके निवास करते हैं । इसी लिए अयोध्यानगरी ने बैकुण्ठतुल्य सुन्दर तथा पवित्र होकर अपूर्व शोभा धारण की है । (३)

बारस्वती—ब्रह्मलोक; य़ेणु—चूँकि (ब्रह्म ने वहाँ शरीर धारण किया है) । (३)

बरणे शोभा दिव्य कन्या परि । बर खोजुअछि समान करि ।
बहिअछि पुणि सुमनमाळा । बिपश्चिवादिनी आळीरे मेळा । ४ ।
बिरळ मुखर-डिण्डिम शुभे । बिमोहित करे जगत शुभ्रे ।
बहुमूल्य बास अंगीकारी से । बिहे नृपर मोदकु बिशेषे । ५ ।

सरलार्थ–अयोध्यानगरी को देखकर विश्वामित्र ने मन में सोचा कि यह नगरी शायद दिव्यवेशधारिणी एक स्वयंवरा कन्या है। स्वयंवरा कन्या जिस तरह अपने हाथ में पुष्पमाला धारण किये वीणा-वादिनी सखियों से परिवेष्टित होकर अपने अनुरूप पति खोजती है, उस समय शुभ वाद्य-नाद या गौनहारियों का गारी-गान स्वयम्बर-सभा में सुनाई पड़ता है, शुभ्र सभामण्डप मूल्यवान् वस्त्रों (चन्द्रातप आदि) से आच्छादित होकर दर्शकों तथा निमन्त्रित राजाओं के मन प्रसन्न करता है, उसी तरह यह नगरी प्राचीरों से परिवेष्टित हो, पण्डितों को अपने वक्ष पर स्थान दिये तथा वीणा-वाद्यनिपुणा स्त्रियों से मिलकर अपने अनुरूप (योग्य) वर रामचन्द्र की खोज कर रही है; अर्थात् उनके राज्य के समय की प्रतीक्षा कर रही है। साथ ही इसका मध्य भाग अविरत मंगल-वाद्यों के नाद से मुखरित होकर संसार के लोगों को विमोहित कर रहा है। बहुमूल्य प्रासादों तथ पट्ट-वस्त्रों से परिपूर्ण अर्थात् समृद्धिशालिनी होकर यह नगरी राजा दशरथजी का आनन्द बढ़ा रही है। (४-५)

वरण—वरण करना, प्राचीर; दिव्य—अपूर्व; सुमनमाळा—फूलों की माला, पण्डित-समूह; विपंचिवादिनी—वीणा-वादिनी, वीणाजित-कण्ठी; आळीरे—सखियों से; मुखर डिण्डिम—उलूलु, गारी-गान बाद्य से मुखरित; जगति—सभामण्डप, संसार। (उपमा तथा श्लेषालंकार) (४-५)

बिष्णु पराये लक्ष्मी आलिंगन। बिहार चतुर-करे रञ्जन।
बिनायकरे सदा य़ुक्त सेहि। बहुळ भक्तभाव ख्यात य़हिँ। ६।

सरलार्थ–"यह अयोध्यानगरी विष्णु है।"—ऐसी कल्पना विश्वामित्रजी ने की। क्योंकि विष्णु लक्ष्मी को आलिंगन करते हैं, चतुर्भुज धारण किये गरुड़ पर विहार करते हैं और भक्त लोग उनके पास अपने मनोभाव प्रकट करते हैं। उसी प्रकार यह नगरी ऐश्वर्यों से परिपूर्ण है। अनेक चतुर लोग यहाँ विहार कर रहे हैं। बहुत विशिष्ट वीर-पुरुषों से यह नगरी पूर्ण है और प्रचुर अन्नदान के लिए यह स्थान प्रख्यात है।(६)

लक्ष्मी—लक्ष्मीदेवी, संपत्ति; चतुर-चार, चालाक; कर—हाथ, पुरुष; विनायक—गरुड़, विशिष्ट वीर पुरुष; भक्त—भक्त जन, अन्न (भात)। (श्लेषालंकार) (६)

बास्तव्य आपण परा के अछि। बइले पदार्थ न तुटे किछि।
बणिजार हस्त स्वर्ग प्रतीति। बिश्वावसु छन्ति सबु जाणन्ति। ७।

सरलार्थ–वास्तव में अयोध्या की दुकानों के समान दूसरी दुकानें अन्यत्र दुर्लभ हैं। उन दुकानों से कितने ही पदार्थ क्यों न व्यय किये जावें, वह समाप्त नहीं होते। और भी दुकानदारों के हाथ स्वर्ग-तुल्य प्रतीत हो रहे हैं क्योंकि स्वर्ग में जिस तरह विश्वावसु आदि गन्धर्व

लोग हैं, उसी तरह इन दुकानदारों के हाथों में विश्वा (धन-द्रव्य के वजन के लिए व्यवहृत बाट) आदि हैं। (७)

आपण—दुकानें; बणिजार—वणिक, दुकानदार; विश्वावसु—एक गन्धर्व, विश्वा आदि परिमापक चिह्न, बाट—बटखरे (तौलनेका भार)। (श्लेष) (७)

बन्धुकुमुदर कि तन्तुबाय। बिशद नीळ अम्बर उदय।
बज्रनिकर जाह्नवी लक्षणे। बिशुद्ध पय उदय कारणे। ८।

सरलार्थ—अयोध्या के जुलाहों के विषय में विश्वामित्र ने सोचा कि शायद वे चन्द्र हों, क्योंकि शुक्ल पक्ष का चन्द्र विस्तीर्ण नीलाकाश में उदित होता है। उसी तरह जुलाहे सफ़ेद तथा नीले वस्त्र बुन रहे हैं। गोपालों को उन्होंने गंगा नदी समझा, क्योंकि गंगा नदी से विशुद्ध जल मिलने की तरह इनसे विशुद्ध दूध मिलता है। (८)

कुमुदर बन्धु—चन्द्र; तन्तुवाय—जुलाहे; विशद—विस्तीर्ण,शुक्ल; नीलाम्बर—नीला आकाश तथा नीले वस्त्र; ब्रज्रनिकर—गोपालसमूह; जाह्नवी—गंगा नदी; पय—दूध, जल। (रूपक, उत्प्रेक्षा तथा श्लेषालंकार) (८)

बणिक-पसरा कि कइळास। बिराजे शिबा कपर्द्दी आश्ळेष।
बळिसद्म परा नागरे चारु। व्योमा कि चन्द्र ताराळि संगरु। ९।

सरलार्थ—व्यापारियों की खैंचियों को देखकर उन्होंने उनको कैलास पर्वत समझा। क्योंकि कैलास पर्वत पर शिवजी पार्वती को आलिंगन किये विराजमान रहते हैं। यहाँ पर भी वैसी कौडियाँ तथा हरितकियाँ इकट्ठी हो रही हैं। और भी, उनको पाताल समझा, क्योंकि पाताल में बहुत नाग-साँप रहते हैं। इन पसरों (खैंचियों) में बहुत सी शुण्ठियाँ अथवा सीसे हैं। फिर ये पसरे (खैंचियाँ) नभोमण्डल के समान प्रतीत होते हैं, क्योंकि आकाश चन्द्र तथा तारावलियों से मण्डित है और ये पसरे (खैंचियाँ) बहुत से सुवर्ण (अथवा कर्पूर) तथा मोतियों से मण्डित हैं।(९)

शिवा—उमा, हलदी, हरीतकी (हड़); कपर्द्दी—महादेव, कौड़ी; बळिसद्म—पाताल; नागरे—साँपों से, सूखे अदरकों से, सीसों से; चन्द्र—कर्पूर, सुवर्ण; ताराळि—तारासमूह, शुद्ध मुक्तासमूह। (उत्प्रेक्षा, उपमा तथा श्लेषालंकार) (९)

बारिधिकुमारी परि माळिनी। बिस्तारि सुमना-भद्र श्रीदानी।
बेष्टने पात्रगण सावधाने। बसे कंसारि राजन ग्रेसने। १०।

फूल, चन्दन तथा कर्पूर आदि देनेवाली अयोध्या की मालिनें देवश्रेष्ठ विष्णुजी की शोभावृद्धिकारिणी मनस्विनी लक्ष्मी, तथा वर्त्तन-लोटे आदि से परिवेष्टित ठठेरे मन्त्रिगण-परिवेष्टित राजाओं के समान शोभित होते हैं। (१०)

वारिधिकुमारी—लक्ष्मी; सुमना—मनस्विनी, मालती पुष्प; भद्र—चन्दन; सुमना-भद्र—देवश्रेष्ठ; श्रीदानी—सौन्दर्यदात्री; पात्रगण—बर्तन, लोटा आदि, मन्त्री-समूह। (उत्प्रेक्षा तथा श्लेष) (१०)

बिलोकि-बिलोकि मुनि य़ेगले । बारण रिपुद्वारे य़ाइँ हेले ।
बेत्रहस्त प्रतिहारी जणाइ । बिराट श्रेष्ठंकु भेटाइ नेइ । ११ ।

सरलार्थ–इस प्रकार अयोध्या की नगरी को देखते हुए विश्वामित्र जी राजा के सिंहद्वार में प्रविष्ट हुए । दण्डधारी प्रतिहारी ने राजा को मुनि के आगमन की सूचना दी और उनसे मुनि की भेंट कराई । (११)

बारणरिपु(सिंह-)द्वार—सिंहद्वार; बिराटश्रेष्ठ—क्षत्रियश्रेष्ठ । (११)

ब्रह्मांकु इन्द्र स्तुति कलापरि । बिनयी दशरथ दण्डधारी ।
बेदान्तकारी सावित्री सेवन । बिशेष-नेत्र-सुखद विजन । १२ ।

सरलार्थ–सहस्रलोचनधारी, सबके सुखदाता इन्द्र जिस प्रकार एकान्त-विनयी होकर वेदों के उद्भवकर्त्ता तथा सावित्री देवी से सेवित ब्रह्मा जी की स्तुति करते हैं, उसी प्रकार सर्वजनों के नयनाभिराम (सर्वजन-दर्शनीय) शासनकर्त्ता दशरथ ने एकान्त विनय से वेदान्तशास्त्रकर्त्ता, सावित्री मन्त्रोपासक विश्वामित्र की स्तुति की । (१२)

विशेषनेत्र—बहुनेत्र (इन्द्र), सुखद—सुखदाता; विशेषनेत्र-सुखद—नयनाभिराम (सर्वजनदर्शनीय); विजन—एकान्त । (श्लेष) (१२)

बनवासी बरसभा लोकित । बराहमूर्त्ति कि ज्याबाळी य़ुक्त ।
बामदेव घेनि कैळास स्थान । बेद कि सुमन्त्ररे विद्यमान । १३ ।

सरलार्थ–राजा दशरथ जी की विराट सभा को देखकर विश्वामित्र जी ने समझा यह सभा बराहमूर्त्ति, कैलास पर्वत या वेद है । क्योंकि वराहमूर्त्ति के भूदेवीयुक्त, कैलास में शिवजी तथा वेद में उत्तम मन्त्रों के होने की तरह इस सभा में जाबालि, वामदेव तथा सुमन्त्र आदि मन्त्रि-वृन्द उपस्थित हुए हैं । (१३)

बनवासी—ऋषि (विश्वामित्र); ज्याबाळि—पृथ्वीदेवी, दशरथ के मन्त्री; बामदेव—शिवजी, अन्य एक मन्त्री; सुमन्त्र—उत्तम मन्त्र, अन्यतम मन्त्री । (उत्प्रेक्षा तथा श्लेषालंकार) (१३)

बशिष्ठ पुच्छे किमर्थे आगत । ब्यकत कले गाधिराज सुत ।
बृत्त राक्षसे होइ क्रतुकृते । बिध्वंसि सुन्द उपसुन्द सुते । १४ ।
बिहायसुँ रामवाणी श्रवण । बधि रक्षगण हेब रक्षण ।
बदान्य ए राजा धर्मे उद्वेगी । बिषे ए आसिछुँ रामकु मागि । १५ ।

सरलार्थ–बशिष्ठ जी के विश्वामित्र से उनके आगमन का कारण पूछने पर उन्होंने कहा, "सुन्द और उपसुन्द–इन दो राक्षसों के पुत्र सुबाहु तथा मारीच दूसरे राक्षसों से परिवेष्टित होकर (दूसरे राक्षसों सहित) मेरा यज्ञ ध्वंस करते थे। उसी समय आकाश से दैवी वाणी सुनाई पड़ी कि राम को ले आओ। वे इन राक्षसों का वध करके यज्ञरक्षा करेंगे। ये राजा अत्यन्त धार्मिक तथा दानशील हैं, इसलिए राम की याचना करने के लिए हम यहाँ पर आये हैं"। (१४-१५)

क्रतु—यज्ञ; विहायसुँ—आकाश से, रक्षगण—राक्षससमूह; आसिछुँ—(हम) आये हैं। (१४-१५)

बज्री हेउछ मुनि! राजा कहि। बसुधाभृत त स्वभाबे मुहिँ।
बच-दम्भोळि मारि दम्भ-शृंग। बिना अपराधे करुछ भङ्ग। १६।

सरलार्थ–यह सुनकर राजा दशरथ ने कहा, "हे मुने! मैं स्वभाव से वसुधाभृत (राजा) ही हूँ। आप इन्द्रवत् मुझे वसुधाभृत (पर्वत) समझकर मेरे किसी अपराध के बिना ही वचन रूपी बज्र मारके मेरे दम्भ (धैर्य) रूपी शिखर को चूर्ण कर रहे हैं!" (इन्द्र ने बज्र से पर्वतों का पंखछेदन किया था) (१६)

बज्री—इन्द्र; वसुधाभृत—राजा, पर्वत; दम्भोळि—बज्र। (श्लेषालंकार) (१६)

बाटी-क्रीड़ाकु छाड़ि नाहिँ य़ेहि। बाण धनु य़े कांशिकारे बहि।
बेश्मे रहिबाकु एका डरइ। बाण्ट मने दैत्य नाशिब केहि। १७।

सरलार्थ–आगे चलकर राजा ने कहा, "जिसने अभी तक गोली का खेल भी नहीं छोड़ा, जो कांशिका (काँसका)-धनुष लिये घूम रहा है और जो अकेले घर पर रहने में डर रहा है, वह राक्षसों का वध कैसे करेगा? जरा मन में विचार तो कीजिए!" (१७)

बाटी-क्रीड़ा—गोली का खेल; कांशिका—काश, काँसा; बेश्म—घर; बाण्ट—विचार करो। (१७)

बोल मुँ सैन्य सज करि य़िबि। बाद रचि तुम्भ य़ाग रखिबि।
बुझिछि य़ोद्धापण मुनि भणि। बामा कबच कि करिबु पुणि। १८।

सरलार्थ–फिर कहा, "अगर आप कहें तो मैं ससैन्य जाकर राक्षसों के साथ युद्ध करके आपके यज्ञ की रक्षा करूँगा"। यह सुनकर ऋषिने कहा, मैं आपके योद्धापन (वीरता) को भली भाँति जानता हूँ। आप बामा-कवच हैं। अर्थात् आपकी पत्नियों ने आपकी परशुराम के भय से रक्षा की थी। (अतएव आप जाकर क्या कर सकेंगे?) (१८)

वामाकवच—स्त्री-रक्षित (दशरथ परशुराम के भय से रानियों के बीच में छिपे थे।) (१८)

बाळक न बोल रामङ्कु तुहि । बह्नि क्षुद्र भस्म आच्छन्ने थाइ ।
बढ़ाए प्रभा से पाइ इन्धन । बधिबे दैत्य शलभ ग्रेसन । १९ ।

सरलार्थ–"हे राजा ! आप राम को बालक मत समझें । राख में आग की चिनगारी छिपी रहती है, परन्तु लकड़ी पाने पर अपना तेज बढ़ा कर पतंगों का नाश कर देती है । वैसे ही रामचन्द्र भी राक्षसों का वध आसानी से कर सकेंगे । (१९)

बह्निक्षुद्र—चिनगारी; भस्म—राख; ईंधन—जलाने की लकड़ी; शलभ—पतंग । (१९)

बामन केड़े बळि अधोगति । बिचारि छन्ति विचार तो मति ।
बिष्णु से बोइले अजनन्दन । बोले ऋषि एक मनरे घेन । २० ।

सरलार्थ–"हे राजा ! आप विचार करें । वामन कितने छोटे थे ! फिर भी तो उन्होंने वलि को पाताल में दबाया था" । यह सुनकर दशरथ ने कहा, "वे विष्णु हैं" । ऋषि ने कहा, "उन्हें तथा इन्हें एक समझो । अर्थात् ये वही विष्णु भगवान हैं । (२०)

अजनन्दन—दशरथ; घेन—ग्रहण करो, समझो । (२०)

व्युत्पत्ति कर ग्रे उत्पत्ति होइ । बनपति शिशु गज मारइ ।
बार बरषर क्षत्रिय सुत । ब्याज न करि दे राम तुरित । २१ ।

सरलार्थ–"सिंह का बच्चा पैदा होते ही हाथी को मारता है । यह बात मन में विचार कीजिए । अतएव बारह साल के क्षत्रिय-पुत्र राम को साधारण बालक न समझें । कपट छोड़कर राम को शीघ्र दें" ।(२१)

व्युत्पत्ति कर—विचार करो; उत्पत्ति होइ—पैदा होते ही; वनपति-शिशु—सिंहशावक; व्याज—कपट । (२१)

बोलुँ कउशिक राघब आसि । बेहरण-सिन्धुरे ग्राए दिशि ।
बीचिर लीळारे महारञ्जन । व्यथित तिमिरे ग्रस्त राजन । २२ ।

सरलार्थ–विश्वामित्र के ऐसे बोलते समय समुद्र के समान विस्तीर्ण सभामण्डप में रामचन्द दिखाई दिये, मानो राघवमत्स्य समुद्र में दिखाई दिया हो । राघव के लहरों में खेलते हुए डूब जाने पर उसका खाद्य तिमि नामक मत्स्य भय से आकुल होता है । वैसे ही अनित्य संसार में कुछ ही समय के लिए लीलाकारी, अत्यन्त मनोहर रामचन्द्र जी को

सभा-मण्डप में खेलते हुए देखकर 'तिमिरग्रस्त' (अन्धकार-निपतित) मनुष्य की तरह दशरथजी का हृदय भी व्याकुल हो उठा। (२२)

कउशिक—विश्वामित्र; राघव—रामचन्द्र, राघव मत्स्य; बेहरण—सभामण्डप; वीचिर—लहरों की, अनित्य; तिमिर—तिमिमत्स्य, अन्धकार। (श्लेष) (२२)

बिबेक स्वयम्भू आत्मभूचित्ते। बिधान मुनि रामर उचिते।
बसे मान्य करि आशिष पाइ। बोल राम ग्राउ कौशिक कहि। २३।

सरलार्थ–विश्वामित्र के ब्रह्मतेज को देखकर रामचन्द्र ने उन्हें ब्रह्मा समझा और उनके प्रति यथोचित सम्मान प्रदर्शित कर उनसे आशीर्वाद पाकर बैठे। रामचन्द्र का सौन्दर्य देखकर विश्वामित्र ने उन्हें कन्दर्प (कामदेव) समझा। इसके अनन्तर, "रामचन्द्र मेरे साथ चलें", इसके लिए दशरथजी की अनुमति की याचना की। (२३)

बिबेक—बिचार किया, समझा; स्वयंभू—ब्रह्मा; आत्मभू—कन्दर्प। (२३)

बाचंग्रमभूति नृप पाइले। बाहुळ प्राये तपस्वी जळिले।
बिरोचन ए बशिष्ठ मनकु। बोइले ए ऋषि नेउ रामकु। २४।

सरलार्थ–विश्वामित्र की बात सुनकर राजा चुप रहे जिसके कारण ऋषि विश्वामित्र क्रोध से अग्निवत् जलने लगे। राजा का ऐसा आचरण वशिष्ठजी को अच्छा नहीं लगा। इसलिए उन्होंने राजा से कहा, "विश्वामित्र राम को ले जायँ"। (२४)

बाचंयमभूति—चुप्पी, मौन; बाहुळ—अग्नि; बिरोचन—अरुचिकर। (२४)

बक्त्रबिकाररु नृपर घेनि। बाहारिले राम लक्ष्मण बेनि।
बिळम्ब न करि सरयू पारि। बिगम्य अरण्य मध्ये बिहरि। २५।

सरलार्थ–वशिष्ठ की बातों से राजा ने स्वीकार कर लिया। यह उनके मुख्यमंत्री से जानकर विश्वामित्र राम-लक्ष्मण दोनों को अपने साथ लेकर चल पड़े। थोड़े ही समय में उन्होंने सरयू नदी को पार करके अगम्य जंगल में प्रवेश किया। (२५)

बक्त्रबिकार—मुखभंगी; बिगम्य-अगम्य। (२५)

बोलाइ तामसी ग्रे से बाहार। बढ़ाइ देइ सन्ध्याछळे कर।
बारुणो-कुण्डे बुड़ाइ ईनकु। बिनाश करिबा इच्छि दिनकु। २६।

सरलार्थ–इस समय रात्रि ने सन्ध्या के बहाने से अपना हस्त-प्रसारण (हाथ फैला) कर सूर्य को पश्चिमदिशा रूपी कुण्ड में डुबाकर दिन को

नाश करने की इच्छा की। अर्थात् सूर्यास्त होने से सन्ध्याकाल उपस्थित हुआ। (२६)

तामसी—रात्रि; बारुणीकुण्ड—पश्चिमदिशा-रूपी कुण्ड; ईनकु—सूर्य को। (२६)

बाळ धरि किबा नेइ आकर्षि। बायसचय ग्निबा तथा दिशि।
बोबिदेला पक्षिनाद छळर। बदने काळि पड़िला दिगर। २७।

सरलार्थ—कौए रव (शब्द) करते हुए उड़-उड़कर अपने-अपने घोंसले को जाने लगे। उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हुआ मानों रात्रि ने दिवस के वायस (कौआ) रूपी केशों को खींचकर उसे निकाल दिया हो, जिसके फलस्वरूप वह (दिवस) पक्षियों के कलरव के मिस रो रहा हो। अनन्तर अन्धकार चारों ओर छा गया। मानो दिवस के इस तरह निकाल दिये जाने पर दिशाओं के मुख काले पड़ गये हों। (२७)

वायसचय—काकसमूह; बोबिदेला—रो उठा। (उत्प्रेक्षा) (२७)

बिकट काळकु ग्रहुँ दर्शन। बुड़िला पद्मिनी पद्म-नयन।
बसा तेजि निशाचर प्रकट। बजि तर्जि कले हुँ हुँ हुँ रट। २८।

सरलार्थ—इस प्रकार के भयंकर काल को देखकर पद्मिनी ने अपने पद्म रूपी नेत्रों को मूँद लिया (अर्थात् सभी पद्म के फूल मुँद गये) और उल्लू आदि निशाचर प्राणी अपने-अपने स्थानों को छोड़कर निकल पड़े तथा हुँ-हुँ शब्द प्रकट करने लगे। (२८)

विकट—भयंकर; पद्मिनी—पद्मलता। (२८)

बिरस तेजि बाहार भुजङ्गे। बिकृत भयंकर हेला तुङ्गे।
वेनिभ्राता मुनि सेकाळ रहि। बञ्चिले प्रभात प्रवेश होइ। २९।

सरलार्थ—इस समय साँप तथा जार पुरुष सानन्द बाहर निकले। वनस्थली विकृताकार धारण करके बड़ी भयंकर लगने लगी। विश्वामित्र के साथ राम, लक्ष्मण दोनों भाइयों ने उसी जंगल में रात बिताई। अनन्तर प्रभात हुआ। (२९)

विरस तजि—विषाद छोड़कर (आनन्दमन से); भुजंगे—साँप, जारपुरुष; तुंग—अतिशय। (२९)

बासबदिग-अभ्रमु करिणी। बिजन्य कला रक्तपिण्ड जाणि।
बिम्ब सबितार दिशि आसिला। बिञ्चे कर्णे शीत बात से हेला।३०।

सरलार्थ—क्रमशः लोहित पिण्डवत् (लाल गोले के समान)

यासि दीजे । ८० पितृआज्ञा ते वेदवचन । मानोनि निघाला वैश्रवण । सकळ संपत्ति पुष्पकीं घालोन । विरिंचीपासीं गेला पैं । ८१ मग कनकाद्रीचे पाठारीं । निर्मूनि अलकावती पुरी । कुबेर तेथें ते अवसरीं । विष्णुसुतें स्थापिला । ८२ मयासुर मंदोदरी आणि शक्ती । देता जाहला रावणाप्रती । दीर्घज्वाळा बळीची पौत्री । ते दिधली कुंभकर्णा । ८३ सरमा नामें गंधर्व-कन्या । ते दिधली बिभीषणा । सकळ भूप शरण रावणा । लंकेसी येती भयेंचि । ८४ रावणें सर्व देश जिंकिले । गाई-ब्राह्मणांसी धरोनि बळें । मुखीं घालोनियां सगळे । दाढेखालीं रगडित । ८५ आकांतले पृथ्वीचे जन । कोठें लपावया नाहीं स्थान । मग कुबेरें स्वर्गींहून । सांगोनि पाठविलें रावणा । ८६ कुबेरसेवक बोले बचन । तुम्ही ऋषिपुत्र वेदसंपन्न । टाकिलीं वेदांचीं खंडें करून । शास्त्रज्ञान असे तुम्हां । ८७ आम्ही जाणते एक सृष्टीं । ऐसा अभिमान वाहतां पोटीं । गोब्राह्मण देखतां दृष्टीं । मारितां कैसे अधर्मी हो । ८८ समजोनियां

तत्पश्चात् उसे खोलकर उसने पढ़ा—उसमें यह बात लिखी थी—'रावण तुम्हारा सौतेला भाई है; उसे लंका का राज्य दो ।' ७९-८० पिता की आज्ञा को वेदवचन (के समान शिरोधार्य) समझकर वैश्रवण कुबेर ने समूची सम्पत्ति पुष्पक विमान में रक्खी और उसे लेकर वह विधाता के पास गया । ८१ तदनन्तर मेरु पर्वत के शिखर पर अलकावती नामक नगरी का निर्माण करके ब्रह्माजी ने उसे उसी समय प्रतिष्ठित कर दिया । ८२ (इसके बाद) मयासुर (नामक दानव) ने अपनी कन्या मन्दोदरी तथा अस्त्र-रूप एक शक्ति रावण को प्रदान की । (दैत्यराज) बली की दीर्घज्वाला नामक पोती कुम्भकर्ण को दी गयी । ८३ सरमा नामक गन्धर्व-कन्या विभीषण को दी गयी । सब राजा भयभीत हो लंका में रावण की शरण में आने लगे । ८४ रावण ने सब देशों को जीत लिया । उसने गायों और ब्राह्मणों को बलपूर्वक पकड़ लिया और उन्हें मुँह में डालकर दाढ़ों के बीच रगड़ डाला । ८५ पृथ्वी पर के सब लोग आक्रान्त हो गये; उन्हें छिपने के लिए कोई स्थान नहीं रहा । तब कुबेर ने स्वर्ग में से रावण को एक सन्देश भेजा । ८६ कुबेर के सेवक ने रावण से कहा—'महाराज, आप ऋषि-पुत्र हैं, वेद के ज्ञाता हैं । आपको शास्त्रों का ज्ञान (प्राप्त) है, फिर भी आपने वेदों को टुकड़े-टुकड़े कर फाड़ डाला । आप मन में यह अभिमान वहन कर रहे हैं कि हम ही सारी सृष्टि में ज्ञानी हैं ।

शास्त्रार्थ। मग कर्में करणें अनुचित। त्यासी ऐहिक ना परमार्थ। भोगील अनर्थ अनेक तो। ८९ अवलक्षणी कुरूपी देख। दर्पणीं न पाहे आपुलें मुख। तोंवरीच अभिमान अधिक। स्वस्वरूपाचा वाहतसे। ९० तैसे दोष आचरती। मग धर्मशास्त्र विलोकती। परी वीट न मानिती चित्तीं। नवल रीति हे वाटे। ९१ ऐसें बोलतां कुबेर-दूत। रावण क्रोधावला अद्भुत। व्याघ्रमुखीं मुष्टिघात। ताडितां जेवीं खवळे पैं। ९२ पदीं ताडितां महा उरग। कीं शुंडा पिळितां मातंग। कीं घृतें शिंपितां सवेग। पावक जैसा खवळे पैं। ९३ ऐसा सक्रोध रावण। सकळ दळभार सिद्ध करून। रात्रीमाजी जाऊन। घाला कुबेरावरी घातला। ९४ संपदा आणि पुष्पक। वस्तू हरिल्या सकळिक। मग तो कुबेर यक्षनायक। गेला शरण शक्रातें। ९५ मग तो कुबेर ते वेळां। शक्रें कोशगृहीं ठेविला। असो रावणासी पुत्र जाहला। मेघनाद प्रथमचि। ९६

फिर भी आप कैसे धर्महीन हो गये हैं कि गायों और ब्राह्मणों को देखते ही उन्हें मार डालते हैं? शास्त्रों के अर्थ को समझ लेने पर भी ऐसे कर्म करना अनुचित है; ऐसा करनेवाले के लिए इससे न इहलोक बनता है न परमार्थ सिद्ध होता है। ऐसा व्यक्ति अनेक अनर्थों (संकटों) के भोग को प्राप्त होगा। कुलक्षणों से युक्त कोई कुरूप व्यक्ति जब तक अपने मुख को दर्पण में नहीं देखता, तब तक ही वह अपने रूप का बड़ा अभिमान करता रहता है। उसी प्रकार कोई-कोई दोषयुक्त (बुरा) आचरण करें, तत्पश्चात् धर्मशास्त्र को देखें, लेकिन (सही ज्ञान होने पर) अपने दुराचरण के प्रति मन में घिन (अरुचि) अनुभव नहीं करें—यह पद्धति बहुत ही अद्भुत जान पड़ती है। ८७-९१ कुबेर के दूत के इस कथन पर रावण बहुत ही क्रुद्ध हो गया। बाघ के मुँह में घूँसा जमा देने पर जैसे वह बौखला उठता है, रावण वैसे ही क्षुब्ध हो गया। महासर्प पाँवों से आघात करने पर, अथवा हाथी सूँड को मरोड़ देने पर, अथवा अग्नि घी को खींचने पर जैसे ज़ोर से प्रक्षुब्ध हो जाता है, रावण भी वैसे ही प्रक्षोभ को प्राप्त हो गया। ९२-९३ तदनन्तर रावण ने क्रोधपूर्वक समस्त सेना को सुसज्ज करके रात्रि के समय कुबेर पर आक्रमण किया। ९४ उसने कुबेर की सम्पत्ति, पुष्पक विमान तथा सब वस्तुओं को छीन लिया, तो यक्षपति कुबेर इन्द्र की शरण में गया। ९५ इसी कुबेर को इन्द्र ने अपने कोशागार में रक्खा (अपना कोषाध्यक्ष बनाया।) अस्तु। रावण के प्रथम पुत्र

एक लक्ष पुत्रसंतती। सवा लक्ष पौत्रोत्पत्ती। ऐशीं सहस्र युवती। भोगितां रावण न धाये। ९७ अठरा अक्षौहिणी वाजंत्री। गर्जताती अहोरात्रीं। पृथ्वीचे भूप महाद्वारीं। कर जोडूनि उभे सदा। ९८ अस्ता जातां दिनकर। कर्पूर-दीपिका अठरा सहस्र। पाजळोनि सभेसमोर। निशाचर तिष्ठती। ९९ इंद्राचिया भयें पर्वत। रावणासी शरण येत। शक्र आमुचे पक्ष छेदित। रक्षीं त्वरित आम्हांसी। १०० लंकेश तयांसी अभय देत। तुम्ही गज व्हा अवघे पर्वत। समस्त अचळां मानली मात। जाहले उन्मत्त वारण। १०१ रावण देवांवरी चालिला। मेघनादें इंद्र ते वेळां। ऐरावतीसगट पाडिला। निजबळें राणांगणीं। १०२ ऐसा सत्रा वेळां सहस्रनेत्र। जिंकी मंदोदरीचा पुत्र। मग इंद्रजित नाम थोर। ब्रीद तेथोन ऐसें बांधिलें। ३ पाश घालोनि पाकशासन। इंद्रजितें आणिला बांधोन। मग विरिंचि आला धांवोन। होय

उत्पन्न हुआ, जिसका नाम मेघनाद रक्खा गया। ९६ बाद में इसी रावण के एक लाख पुत्र तथा सवा लाख पौत्र (पोते) उत्पन्न हो गये। अस्सी सहस्र युवतियों का भोग करने पर भी वह नहीं अघाता था। ९७ (उसके नगर में) अठारह अक्षौहणी बाद्य दिन रात गरजते थे। पृथ्वी भर के समस्त राजा उसके (प्रासाद के) महाद्वार पर नित्य हाथ जोड़े खड़े रहते थे। ९८ सूर्य के अस्त होने पर अठारह सहस्र राक्षस कपूर के दीपक जलाकर (रावण की) राजसभा—दरबार के सामने खड़े रहते थे। ९९ इन्द्र के भय से पर्वत रावण के आश्रय में आ गये और उन्होंने कहा—'(महाराज,) इन्द्र हमारे पंखों को काट डालता है, अतः शीघ्र ही हमारी रक्षा कीजिए।' (कहते हैं, पहले पर्वतों के पंख थे, जिन्हें इन्द्र वज्र से काट डालता था।) १०० लंकाधिपति रावण ने उन्हें अभयदान देते हुए कहा—'तुम सब पर्वत हाथी बन जाओ।' तब सब पर्वतों ने रावण की बात मान ली। फिर वे (रावण का आश्रय और अभयदान पाकर) उन्मत्त हाथी हो गये। १०१ तदनन्तर, रावण देवों की ओर बढ़ गया। इस समय मेघनाद ने अपने बलबूते इन्द्र को ऐरावत सहित रणभूमि में गिरा दिया। १०२ इस प्रकार मन्दोदरी के पुत्र मेघनाद ने सहस्रनेत्र इन्द्र को सत्रह बार जीत लिया; फिर तब से 'इन्द्रजित' नामक बिरुद उसके नाम के साथ जुड़ गया। ३ स्वर्ग के शासक इन्द्र को पाश (डाल कर उस) में आबद्ध कर इन्द्रजित आ पहुँचा, तो ब्रह्माजी दौड़ते हुए वहाँ

प्रसन्न शक्रजिता । ४ अपेक्षित देवोनि वर । सोडविला पुरंदर। मग रावणें देव समग्र । सेवेलागीं ठेविले । ५ शक्रें आणावे नित्य हार । छत्र धरी रोहिणीवर । रसाधिपति निरंतर। वाहे नीर धांवतचि । ६ गभस्ति होय द्वारपाळ । कुबेर आणि अनिळ । यांहीं सडासंमार्जन सकळ । गृहामाजी करावें । ७ वस्त्रें धूत वैश्वानर । पुरोहित जाहला विष्णुपुत्र । पांडित्य करी अंगिराकुमर । नारद तुंबर गाती सदा । ८ दहा वेळां शिव पूजिला । रावण दश वक्त्रें पावला । वीस हस्त लाधला। शिवही केला वश तेणें । ९ कोणे एके समयीं रावण । पुष्पक विमानीं बैसोन । कैलासगिरि चढतां पूर्ण । तों नंदी रक्षक महाद्वारीं । १० म्हणे नको जाऊं लंकापती । शिव-उमा आहेत एकांतीं । ऐसें ऐकतां मयजा-पती । परम क्षोभ पावला । ११ नंदीस म्हणे ते वेळे । तुज मर्कटाचेनि बोलें । मी न राहें कदा काळें । जाईन बळेंकरोनियां । १२ ऐसें बोलतां दशकंधर।

पर पहुँच गये और इन्द्रजित (के प्रताप) पर प्रसन्न हो गये । ४ उन्होंने उसे अभीष्ट वर देकर इन्द्र को मुक्त करा लिया । तत्पश्चात् रावण ने सब देवों को अपनी सेवा के लिए नियुक्त किया । ५ (तब से) इन्द्र नित्य पुष्पहार लाया करता था; रोहिणी-पति चन्द्र (रावण के मस्तक पर) छत्र पकड़े रहा करता था; वरुण निरन्तर दौड़ते हुए पानी वहन किया करता था । ६ सूर्य रावण का द्वारपाल हो गया । कुबेर और पवनदेव सब गृहों में सिंचन-सम्मार्जन किया करते थे । ७ अग्निदेव कपड़े धोया करता था । ब्रह्मा रावण का पुरोहित बन गया । बृहस्पति पाण्डित्य (पण्डित का काम) किया करता था, तो नारद और तुम्बरु गायन करते रहते थे । ८ रावण ने दस बार शिवजी का पूजन किया, जिससे उसे दस मुख तथा बीस हाथ प्राप्त हो गये । इस प्रकार उसने शिवजी को भी वश में कर लिया । ९

एक समय पुष्पक विमान में विराजमान हो रावण पूरे कैलास पर्वत पर चढ़ गया, तो (उसे) नन्दी रक्षक के रूप में महाद्वार में (प्रतिष्ठित) दिखायी दिया । १० उसने लंकापति रावण से कहा, 'आप अन्दर न जाएँ, शिवजी और पार्वती जी एकान्त में हैं ।' यह सुनकर मन्दोदरी का पति रावण बहुत क्षुब्ध हो गया । ११ उस समय उसने नन्दी से कहा—'तुम जैसे बन्दर के कहने से मैं यहाँ कभी भी नहीं रुक जाऊँगा; मैं बलपूर्वक अन्दर जाऊँगा ।' १२ रावण के ऐसा कहने पर नन्दिकेश्वर बहुत कुपित

कोपला तेव्हां नंदिकेश्वर । शापशस्त्र अनिवार । ताडिलें सत्वर तेणेंचि । १३ म्हणे उन्मत्त तूं मूढमती । तुज नर वानर रणीं वधिती । तुवां दश रुद्र पूजिले निगुती । अकरावा मारुति प्रगटेल । १४ तो वानररूपें अवतरोन । करील तुझें गर्वमोचन ऐकतां क्रोधावला रावण । म्हणे हा उपडीन कैलासगिरी । १५ उचलोनियां कैलासपर्वत । लंकेंत नेईन क्षणांत । म्हणोन तळीं घातला हात । समूळ उचलावयसी । १६ ते जाणोनि हिमनग-जामात । निजपदें दडपिला पर्वत । सहस्र वर्षेंपर्यंत । आक्रंदत रावण । १७ मग करी शिवाचें स्तवन । प्रसन्न जाहला त्रिनयन । दशवक्त्र दिधला सोडून । आला परतोन लंकेसी । १८ एकदा रेवातीरीं ध्यानस्थ । बैसला असतां मयजाकांत । पुढें सिकतालिंग विराजित । तों पाणी चढत माघारें । १९ सहस्रार्जुनें निजभुजेंकरून । कोंडिलें नर्मदेचें जीवन । ध्यान करितां रावण । आकंठपर्यंत बुडाला । २०

हुआ और उसने तत्क्षण शाप रूपी दुर्निवार शस्त्र से (उसपर) आघात किया । १३ उसने कहा–'तू मूर्ख और उन्मत्त (हो गया) है । युद्ध में नर और वानर तेरा वध करेंगे । तूने अभी-अभी दस रुद्रों का पूजन किया, अब ग्यारहवाँ रुद्र मारुति के रूप में प्रकट हो जाएगा । १४ वानर रूप में अवतरित होकर वह तेरा घमण्ड छुड़ाएगा—तेरा गर्वहरण करेगा ।' यह सुनकर रावण क्रुद्ध हुआ और बोला–' मैं कैलास पर्वत को ही उखाड़ दूँगा । इसको उठाकर क्षण मात्र में मैं लंका (में) ले जाऊँगा ।' ऐसा कहकर उसे समूल उठाने के हेतु रावण ने उसके तल में हाथ डाला । १५-१६ यह जानकर हिमालय पर्वत के जामाता शिवजी ने अपने पाँव से उस पर्वत को दबा दिया । (इससे पीड़ित हो) रावण एक सहस्र वर्षों तक आक्रन्दन करता रहा । १७ तत्पश्चात् उसने शिवजी का स्तवन किया, जिससे प्रसन्न हो उन्होंने दशमुख रावण को छोड़ दिया । फ़िर (वहाँ से) वह लंका में लौट आया । १८

एक समय रावण रेवा (नर्मदा) नदी के तट पर ध्यानस्थ बैठा हुआ था । उसके सामने (उसका बनाया हुआ शिवजी का) बालू का लिंग विराजमान था । तब नदी का पानी (बढ़कर) उलटे चढ़ने लगा । १९ इधर सहस्रार्जुन (कार्तवीर्य) ने अपने (सहस्र) हाथों से नर्मदा का पानी रोक लिया था । इधर (उसके बढ़ते जाने के कारण) रावण ध्यान करते करते उसमें आकण्ठ डूब गया । २० (यह देखकर) रावण परम क्रुद्ध

परम क्रोधावला दशमौळी । धांवोनि आला तयाजवळी । म्हणे कोण रे तूं ये स्थळीं । रेवाजळ कोंडितोसी । २१ सहस्रार्जुनें कवळ घालून । ग्रीवेसी धरिला दशवदन । कीं मृगेंद्रें धरिला वारण । जाहले प्राण कासाविस । २२ बहुकाळ बंदीं घातला । मग पौलस्तिऋषि धांविन्नला । भिक्षा मागोनि तये वेळां । सोडविला राक्षस । २३ बळीचिया नगरा देख । बळेंच आला लंकानायक । जैसा व्याळाचे बिळीं मूषक । चारा घेऊं प्रवेशला । २४ तों बळीचिया महाद्वारीं । एक पुरुष उभा दंडधारी । जयाचिया तेजामाझारी । शशी मित्र झांकोळती । २५ तो महाराज त्रिविक्रम । देखोनि बळीचें निजप्रेम । द्वारपाळ जाहला पुरुषोत्तम । अज अजित जगद्गुरू । २६ मग तयासी म्हणे रावण । बळीसी आणीं बोलावून । नाहीं तरी हे नगरी उचलोन । पालथी घालीन सागरीं । २७ मग म्हणे वैकुंठविलासी । तूं बळीचा प्रताप नेणसी । आतांच येईल प्रत्ययासी । जाईं

हुआ और दौड़ता हुआ उसके पास आया । उसने सहस्रार्जुन से पूछा–'रेवा नदी के पानी को यहाँ रोकनेवाला तू कौन है ?' २१ इस पर सहस्रार्जुन ने लपककर उसकी गरदन पकड़ ली, मानो सिंह ने हाथी को पकड़ लिया हो । इससे उसके प्राण व्याकुल हो गये । २२ उसने रावण को बहुत समय तक कारागार में डाल रक्खा । फिर पौलस्ति ऋषि दौड़े आये और प्राणों की भीख माँगकर इस राक्षस को उन्होंने मुक्त करा लिया । २३

(फिर एक समय, दैत्यराज) बली के नगर को देखकर लंका का राजा रावण हठपूर्वक उसकी ओर आ गया; मगर उसे ठीक वैसे ही जा पहुँचा समझो, जैसे कुछ चारा (खाद्य) पाने के लिए चूहा साँप के बिल में प्रवेश करता हो । २४ तब बली-राज के महाद्वार पर एक ऐसा दंडधारी महापुरुष खड़ा था, जिसके तेज में चन्द्र-सूर्य भी छिप (फीके पड़) जाएँगे । २५ (बात यह है कि) अजन्मा, अजेय, जगद्गुरु पुरुषोत्तम अर्थात् भगवान् त्रिविक्रम–विष्णु (अपने प्रति) बलीराज का प्रेम देखकर, स्वयं उसके द्वारपाल (प्रहरी) हो गये थे । २६ तो रावण ने उससे कहा–"बली को बुला लाओ; नहीं तो इस नगरी को उठाकर मैं उसे उल्टी (करके) सागर में डाल दूँगा (डुबा दूँगा) ।" २७ इसपर वैकुण्ठ में विलास करनेवाले (द्वारपाल रूपधारी) भगवान् विष्णु ने कहा–" तुम बलीराज के प्रताप को नहीं जानते हो । तुम्हें वह अभी

वेगेंसीं आंतौता । २८ मग आंत प्रवेशला त्वरित । तों सभेसी बैसला विरोचनसुत । तयासी म्हणे लंकानाथ । करावया समर पातलों मी । २९ जैसा शुष्क तृणाचा पुतळा । धरावया आला वडवानळा । कीं वृषभ बळें माजला । खोंचूं धांवला सिंहासी । ३० व्याघ्रासी धरीन म्हणे बस्त । कीं आळिका सुपर्णावरी धांवत । ऐरावतीचा मोडावया दांत । शलभ जैसा सरसावला । ३१ वृश्चिक धांवे सत्वर । ताडावया खदिरांगार । खद्योत म्हणे दिवाकर । आसडून पाडीन खालता । ३२ तैसा बळीप्रती रावण । सांगे आपुलें थोरपण । कीं सरस्वतीपुढें मतिमंदें येऊन । वाग्वाद आरंभिला । ३३ हांसोनि बळी म्हणे ते वेळे । या वैकुंठनाथें द्वारपाळें । पूर्वीं नारसिंहरूप धरिलें । प्रह्लाद भक्त रक्षावया । ३४ नरसिंहगदाघातेंकरून । हिरण्य-कशिपूचें कर्णभूषण । कुंडलें पडलीं उसळोन । तीं उचलोन घेईं तूं । ३५ तीं उचलों गेला दशकंधर । बळें लाविले वीसही

अनुभव होगा—ज़रा जल्दी अन्दर तो जाओ । २८ (तत्पश्चात्) रावण शीघ्रता से अन्दर गया । (और उसने देखा कि) विरोचन दैत्य का पुत्र बली (राज) सभा में विराजमान है । उससे रावण ने कहा—"तुमसे युद्ध करने के लिए मैं आ गया हूँ ।" २९ (उसका यह आगमन ऐसा था, मानो) सूखी घास का पुतला बड़वाग्नि को पकड़ने के लिए आ गया हो । अथवा अपने ही बल के कारण उन्मत्त कोई बैल, सिंह को ही खदेड़ने दौड़ा आया हो । अथवा कोई बकरा बाघ को पकड़ने की बात कर रहा हो, अथवा कीड़ी (इल्ली) गरुड़ की ओर लपक ने लगी हो, अथवा शलभ (पतिंगा) गजराज ऐरावत के दाँत को तोड़ने के लिए आगे बढ़ गया हो । किंवा बिच्छू खैर के अंगार पर (अपनी पूँछ से) आघात करने के लिए वेग से दौड़ा हो; अथवा जुगनू ने सूर्य को खींचकर नीचे गिरा देने की बात कही हो । ठीक उसी प्रकार रावण ने बली को अपना बड़प्पन बता दिया । मानो किसी मंदमति (व्यक्ति) ने सरस्वती के सामने आकर वाद-विवाद आरम्भ किया हो । ३०-३३ उस समय हँसकर बली ने कहा—"मेरे इस द्वारपाल—वैकुण्ठनाथ भगवान् विष्णु ने पूर्वकाल में भक्त प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए नरसिंह का रूप धारण किया था । ३४ उस सयम (भगवान्) नरसिंह की गदा के आघात से हिरण्य-कच्छप के कर्ण-भूषण (अलंकार) ये कुण्डल उछलकर (टूट) पड़े । तुम उन्हें उठाकर लो ।" ३५ रावण उन्हें उठाने के लिए (आगे) बढ़ा ।

कर। जैसा मशकासी न ढळे कुंजर। तैसें जाहलें रावणा पैं। ३६ निस्तेज जाहला ते वेळीं। तों बळीची राणी विंध्यावळी। सारिपाट खेळतां प्रीतिमेळीं। फांसा हातींचा उसळला। ३७ तों बळीं म्हणे रावणासी। फांसा आणीं वेगेंसीं। परी तोही न उचले तयासी। राक्षसासी खेद वाटे। ३८ गदगदां हांसती दोघें जणें। बंदीं घातले म्हणती देव याणें। येथें आला युद्धाकारणें। तों फांसा यासी नुचलेचि। ३९ जाहला परम अपमान। माघारा चालिला दशवदन। तों मार्गीं बळीचे सेवकजन। त्यांणीं रावण नागविला। ४० घेतलीं वस्त्रें शस्त्रें हिरून। मुखासी तेल मसी लावून। वीसही हस्त बांधोन। नगरामाजीं हिंडविती। ४१ एक अंगावरी धुळी टाकिती। एक दाढी धरोनि ओढिती। एक बळेंचि बैसविती। एक उठविती सवेंचि। ४२ एक करिती शेणमार। काकुळती येत दशकंधर। पळों पाहे जंव

बलपूर्वक उसने बीसों हाथ लगाये, लेकिन जैसे मच्छड़ से हाथी को टाला (हटाया) नहीं जा सकता, वैसे ही रावण की स्थिति हो गयी। ३६ उस समय वह बहुत तेजोहीन हो गया। (इसी समय) बलीराज की रानी विन्ध्यावती प्रेम से चौसर खेल रही थी। (खेलते-खेलते) उसके हाथ का पाँसा उछल पड़ा। ३७ (यह देखकर) बलीराज ने रावण से कहा, "जल्दी जाकर पाँसा ला दो।" (रावण ने जाकर उसे उठाने का यत्न किया) परन्तु उससे वह पाँसा उठाते न बना। इसपर उसे बहुत खेद हुआ। ३८ यह देखकर वे दोनों (बलीराज और विन्ध्यावती) मारे आनन्द के बहुत ज़ोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा—"इसने तो देवों को कारागार में डाल रखा है और यह यहाँ पर युद्ध करने के हेतु से आ गया है; परन्तु इससे तो यह पाँसा भी उठाते नहीं बनता।" ३९ इससे रावण का बहुत अपमान हो गया; इसलिए जब वह लौट चला, तो रास्ते में बलीराज के सेवकों ने उसे नंगा कर डाला। ४० उन्होंने उसके वस्त्र और शस्त्र छीन लिये; उसके मुखों में तेल और कालिख पोत दी और उसके बीसों हाथों को बाँधकर वे उसे नगर में घुमाने लगे। ४१ (उस समय) कोई-कोई उसके शरीर पर धूल उछालते; दूसरे कोई उसकी दाढ़ी पकड़कर खींचते; कोई-कोई उसे हठात् बैठाते, तो कोई-कोई उसे एकदम उठाते। ४२ कोई-कोई उसपर गोबर फेंककर मारते, इससे व्याकुल हो, रावण ने जब-जब बाहर भाग जाना चाहा, तब-तब उसे

बाहेर। तंव द्वारपाळ जाऊं नेदी। ४३ क्षुद्र द्वार मोरियेमधून। मस्तक घाली जंव रावण। तंव सर्वांठायीं वामन। दंडावरी मारित। ४४ वळीचे अश्वशाळेंत रावण। क्षुधाक्रांत हिंडे नग्न। चणे खातसे वेंचून। मागे कोरान्न घरोघरीं। ४५ पोटासाठीं वाघ्या होऊन। म्हणे मी मल्हारीचा श्वान। कोठंबें चोंडकें काखे घेऊन। नाचोनि धान्य मेळवी। ४६ तो दासींनीं धरिला कौतुकें। उदक आणितां घातला काखें। तयां काकुळती येत दीनमुखें। मग सोडिती सत्वर। ४७ मग विश्रवा धांवोन। बळीस भेटला येऊन। म्हणे बंदींत घातला रावण। तो भिक्षेस मज देइजे। ४८ बळी बोले आण वाहोन। येथें कोणास नाहीं बंधन। ग्रामांत असे रावण। तो शोधोनि नेइजे। ४९ तो बळीचे अश्वशाळेंत देखिला। पिता देखोनि रडूं लागला। मग ऋषीनें वामन स्तविला। सोडवून नेला

द्वारपालों ने नहीं जाने दिया। ४३ जब-जब स्नानगृह के छोटे से द्वार में से वह सिर बाहर निकालता, तो वामन (बौने सेवक अथवा भगवान् विष्णु जो द्वारपाल बने हुए थे) स्थान-स्थान पर उसके बाहुओं पर मारते। ४४ (अन्त में) बलीराज की घुड़साल में (ले जाकर रावण को रखा गया; वहाँ) वह भूख से पीड़ित हो नंगा घूमा करता और वहीं चने बीन कर खाया करता; (कभी) घर-घर (जाकर) सूखा अन्न (भिक्षा के रूप में) माँग लिया करता। ४५ पेट के लिए खंड़ोबा (मल्लारि) देव को अर्पित पुरुष सेवक का रूप लेकर कहता—"मैं मल्लारि भगवान् का कुत्ता हूँ—तुच्छ सेवक हूँ।" बगल में विशिष्ट प्रकार के बर्तन लेकर, नाच-नाचकर अनाज इकट्ठा करता। ४६ तब (एक समय) बलीराज की दासियों ने कौतुक (मज़ाक) में पकड़ लिया और पानी लाते समय उसे बगल में दबा रक्खा, तो व्याकुल हो बड़ी दीनता से उसने उन्हें मनाया। (उसपर दया करके) उन्होंने उसे तुरन्त छोड़ दिया। ४७

तत्पश्चात् विश्रवा ऋषि दौड़ा आया और बलीराज से मिला। उसने कहा, "तुमने रावण को कारागृह में डाल रक्खा है। उसे मुझे भिक्षा के रूप में दे दो।" ४८ बलीराज ने शपथ करके कहा—"यहाँ किसी को कोई मनाही नहीं है। रावण नगर में है; उसे खोजकर ले जाओ।" ४९ तब विश्रवा ने (रावण को) बलीराज की अश्वशाला में देखा। पिताजी को देखकर रावण रोने लगा। इस पर ऋषि ने भगवान् वामन—विष्णु का स्तवन किया और रावण को मुक्त

रावण । ५० परम लज्जित रावण । लंकेसी आला परतोन । मागुती पराक्रम धरोन । म्हणे मी जिंकीन वाळीतें । ५१ तों समुद्रतीरीं शक्रसुत । बसंला असे ध्यानस्थ । त्यासी धरावया लंकानाथ । पुष्पकांतून उतरला । ५२ जैसा पंचाननापुढें । मार्जार दावी आपले पवाडे । कीं पंडितापुढें महामूढें । वाग्वाद आरंभिला । ५३ कीं रासभें ब्रीद बांधोन । नारदापुढें मांडिलें गायन । कीं महाव्याघ्रावरी टवकारून । जंबूक जैसा पातला । ५४ तैसा वाळीपुढें उभा रावण । सावध होतां शक्रनंदन । ग्रीवेसी दशग्रीव धरोन । कक्षेमाजी दाटिला । ५५ चतुःसमुद्रीं करोनि स्नान । किष्किधेसी आला परतोन । अंगदाच्या पाळण्यावरी नेऊन । उफराटा रावण बांधिला । ५६ क्षणक्षणां धरोनि दाढी । अंगद बाळभावें उपडी । मग विश्रवा धांवोनि तांतडी । भिक्षा मागे वाळीतें । ५७ मग मुखासी काळें लावूनी । वाळीनें दिधला भिरकावूनी । लंकेंत पडिला येऊनी । खेद मनीं बहुत करी । ५८ एकदा रावण पुसे विरिंचीतें । आमुचा

कराकर वह ले गया । ५० बहुत ही लज्जित हो रावण लंका (में) लौट आया । फिर अपने प्रताप को देखकर उसने कहा (सोचा)—मैं (वानर-राज) बाली को जीत लूँगा । ५१

उस समय (बाली को जीतने के लिए निकले हुए रावण ने देखा कि) इन्द्र का पुत्र बाली समुद्र-तट पर ध्यान में मग्न विराजमान है । उसे पकड़ने के लिए रावण पुष्पक विमान से उतर गया । ५२ जिस प्रकार सिंह के सामने बिड़ाल (बिलाव) अपना पराक्रम प्रदर्शित करता हो, जैसे महामूर्ख पण्डितों के सामने विवाद आरम्भ करे, जैसे गधा प्रतिज्ञा-पूर्वक नारद के समक्ष गाना शुरू करे, अथवा जैसे सियार (गीदड़) बड़े बाघ की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए चले, ठीक वैसे ही रावण बाली के सम्मुख खड़ा था । सावधान होने पर—ध्यान टूटने पर बाली ने उसे गरदन में पकड़कर काँख में ठूँस दिया । ५३-५५ (उसे इस प्रकार उठाये हुए) बाली ने चारों समुद्रों (के पास जाकर उन) में स्नान किया और वह किष्किन्धा नगरी में लौट आया । फिर उसने (अपने पुत्र) अंगद के पालने के ऊपर रावण को उलटा बाँध रखा । ५६ बालक अंगद प्रति क्षण (बालकों के) खेल ही खेल में उसकी दाढ़ी (के बाल) पकड़ कर उखाड़ता । तब तुरन्त विश्रवा ने दौड़ते हुए आकर बाली से रावण को भिक्षा रूप में माँग लिया । ५७ फिर बाली ने उसके मुँह में कालिमा

अंत कवणाचेनि हातें। सत्य सांगावें आम्हांतें। स्नेहचित्तें-करूनियां। ५९ विधि म्हणे अजपाळसुत। त्याचें नाम विख्यात दशरथ। त्यासी पुत्र होईल रघुनाथ। तुझा अंत त्या हातें। ६० रावणें केला मग पण। तरी मी दशरथासी वधीन। तों अजपाळपुत्राचें लग्न। मांडिलें इकडे गजरेंसीं। ६१ तों नारद सांगे अजपाळा। जतन करी दशरथ-कौसल्या। लग्नसोहळयामाजी घाला। घालील अकस्मात रावण। ६२ ऐसें सांगता कमलो-द्भवसुत। मग जहाज घालोनि समुद्रांत। लग्न आरंभिलें तेथ। महागजरेंकरोनियां। ६३ सागरामाजी होतें लग्न। रावणें ही गोष्ट ऐकोन। तंव तो अष्टवर्गाचा दिन। घातला घाला रात्रींत। ६४ जैसे अंतरिक्ष-पक्षी येती। तैसे राक्षस उड्या घेती। जहाज फोडोनि चूर्ण करिती। गदापर्वत-घातेंचि। ६५ वन्हाड सर्व बुडविलें। रावणें कौसल्येसी घेतलें।

पोत कर उसे फेंक दिया, तो वह लंका में आ गिरा। (इससे) वह मन-ही-मन बहुत दुःख मानता रहा। ५८

(तदनन्तर) एक समय, रावण ने ब्रह्माजी से पूछा–"हमारी मृत्यु किसके हाथ है? यह बात हमें प्रेमपूर्वक सत्य-सत्य कहो।" ५९ ब्रह्माजी ने कहा–"राजा अज के एक पुत्र है। उसका नाम दशरथ है, वह बहुत विख्यात है। उसके रघुनाथ (राम) नामक एक पुत्र (उत्पन्न) होगा। तुम्हारा अन्त उसके हाथों में है।" ६० (यह सुनकर) रावण ने प्रतिज्ञा की–मैं दशरथ का वध करूँगा। (इसी समय) इधर बाजों के घोष में अजराज-पुत्र दशरथ का विवाह सम्पन्न हो रहा था। ६१ तब वहाँ आकर नारद ऋषि ने अजराज से कहा–"दशरथ और कौशल्या का रक्षण करो; क्योंकि विवाह समारोह (के स्थान) पर रावण यकायक आक्रमण करेगा।" ६२ नारद के ऐसा कहने पर राजा ने समुद्र में बड़ा पोत (जहाज) छोड़कर (रखकर), उसी में बाद्यों के महाघोष के बीच (दशरथ और कौसल्या की विवाह-विधि का आरम्भ किया। ६३ सागर के मध्य विवाह हो रहा है, यह रावण ने सुना। वह अष्टवर्ग विधि का दिन था। उसी दिन, रात को रावण ने आक्रमण किया। ६४ जिस प्रकार आकाश से पक्षी आते हैं, उसी प्रकार (आकाश मार्ग से आकर) राक्षस (समुद्र में) कूद पड़े। उन्होंने पर्वत के समान बड़ी-बड़ी गदाओं के आघात कर-करके जहाज को तोड़कर चूर-चूर कर डाला। ६५ उन्होंने समुद्र में समूची बारात को डुबा दिया। फिर रावण ने कौसल्या

जिचें स्वरूप न जाय वर्णिलें । तीस घातलें पेटींत । ६६ पेटी लंकेसी नेतां उचलोन । राक्षसें बोलविला एक मीन । तो बाहेर आला सागरांतून । त्यासी रावण आज्ञापी । ही पेटी करावी जतन । कोणा न द्यावी मजवांचून । लंकेंत प्रवेशला रावण । ती वस्तु जतन मत्स्य करी । समुद्राचे गहन बेटीं । जेथें न पडे कोणाची दृष्टी । तेथें मत्स्यें ठेवूनि पेटी । गेला आपण स्वकार्या । ६७-६९ कैंचा सोहळा कैंचें लग्न । लोक समग्र गेले बुडोन । तरी दशरथ समुद्रांतून । उफाळला अवचिता । ७० ज्याचे पोटीं येणार श्रीराम । दुर्गम तेंचि होय सुगम । विष तें अमृत होय उत्तम । अपाय तोचि उपाय । ७१ तरी अंतरिक्ष चढे पांगुळ । देव जरी होय दयाळ । आंगणींच्या लता सकळ । कल्पलता होती त्या । ७२ दशरथ पाहे समुद्रांत । तों भंगलें जहाज अकस्मात । वाहत वाहत आलें तेथ । त्यावरी दशरथ बैसला । ७३ वायुवेगें जहाज गेलें । त्याच बेटासी येऊनि लागलें । दशरथें पेटी ते वेळे । सहज लीलें उघडिली । ७४

को लेकर एक पेटी में डाल दिया–उस (कौसल्या) का रूप अवर्णनीय था । ६६ उस पेटी को उठाकर लंका की ओर जाते हुए रावण ने एक मत्स्य को बुलाया–जो समुद्र में से बाहर निकल आया । उसे रावण ने आदेश दिया–" इस पेटी का रक्षण करो । मेरे सिवा और किसी को इसे न दो ।" और उसने लंका में प्रवेश किया । इधर वह मत्स्य उस वस्तु की रक्षा करता था । उस मत्स्य ने वह पेटी समुद्र के एक ऐसे दुर्गम द्वीप (टापू) में रखी, जहाँ पर किसी की नज़र नहीं पड़ सकती थी और वह अपने काम के लिए चला गया । ६७-६९ अब कैसा समारोह ?–कैसा विवाह ? समस्त लोग तो डूब गये । फिर भी दशरथ अचानक समुद्र में से ऊपर आया । ७० जिससे भगवान् श्रीराम का जन्म होने वाला था, उस दशरथ के लिए दुर्गम (कठिन) बात भी सुगम (आसान) हो गयी, मानो विष ही उत्तम अमृत बन गया हो, अपाय (हानि) ही उपाय (अभीष्ट–प्राप्ति का साधन) बन गया हो । ७१ यदि भगवान् (किसी के लिए) दयालु हो जाएँ, तो लूला-लंगड़ा मनुष्य भी आकाश में चढ़ सकेगा, उसके आँगन में लगायी लताएँ उसके लिए कल्पलताएँ बन जाएँगी । ७२ दशरथ ने जब समुद्र में देखा, तो टूटा हुआ जहाज़ बहते-बहते अकस्मात् वहाँ जा पहुँचा । दशरथ उसमें बैठ गया । ७३ (और) वह (जहाज़) वायु-गति से चलने लगा और उसी

तों आंत कौसल्यानिधान । पाहतां वेधला अजनंदन । तों नारद अकस्मात येऊन । उभा ठाके ते वेळीं । ७५ ज्यासी भूत भविष्य सर्व ज्ञान । तेणें मुहूर्त वेळा पाहून । तत्काळ दोघांसी लाविलें लग्न । विधियुक्त विधिसुतें । ७६ वोहरांसी आशीर्वाद देत । जो वैकुंठवासी रमाकांत । तो तुमचे पोटीं अवतरेल सत्य । भयभीत होऊं नका । ७७ दोघें पेटींत बैसवून । वेगें गेला ब्रह्मनंदन । तों लंकेंत दशवदन । कमळासनाप्रति सांगें । ७८ तुवां जें भविष्य कथिलें । तें अवघेंचि असत्य झालें । जहाज फोडूनि लोक बुडविले । हिरोनि आणिलें कौसल्येसी । ७९ मग बोले चतुरानन । मघांच दोघांसी लाविलें लग्न । कदा न टळे ब्रह्मवचन । कल्पांतींही दशवक्त्रा । ८० येरू म्हणे जर जाहलें लग्न । तरी मी तुज इच्छित देईन । मग पेटी आणविली मत्स्यापासून । सभेमध्यें रावणें । ८१ त्यामाजी नवरी असे तत्त्वतां । ब्रह्मा म्हणे उघडी आतां । तों पेटी उघडूनि

टापू में आ गया जहाँ मत्स्य ने वह पेटी रक्खी थी । दशरथ ने उस पेटी को यों ही खोल लिया । ७४ तो अन्दर कौशल्या रूपी धरोहर को देखकर वह मोहित हो गया । तब अकस्मात् नारद वहाँ आकर खड़ा हो गया । ७५ भूत, भविष्य तथा वर्तमान—तीनों कालों का सब ज्ञान रखनेवाले, ब्रह्मा के पुत्र नारद ने मुहूर्त खोजकर यथाविधि तत्काल उन दोनों का विवाह सम्पन्न कराया । ७६ उन वर और वधू को उसने यह आशीर्वाद दिया—" लक्ष्मी के पति, वैकुण्ठ के निवासी भगवान् विष्णु तुम्हारे गर्भ से निश्चय ही अवतरित हो जाएँगे । तुम भयभीत न होना ।" ७७ फिर उन दोनों को उस पेटी में बैठाकर नारद वहाँ से त्वरित निकल गया । इधर लंका में दशमुख रावण ने ब्रह्मा से कहा—" तुमने जो भविष्य कहा था, वह समूचा असत्य हो गया है । (हमने) जहाज़ को तोड़कर सब लोगों को (समुद्र में) डुबा दिया और कौसल्या को हम अपहरण करके लाये हैं । ७८-७९ इसपर ब्रह्मा ने कहा—"अभी-अभी उन दोनों का विवाह कराया गया है । हे दशमुख, ब्रह्मा का वचन कल्पान्त में भी कभी नहीं टलता (झूठा नहीं सिद्ध होता) ।" ८० तब रावण ने कहा—"यदि (उन दोनों का) विवाह हुआ हो, तो तुम जो चाहोगे, वह मैं तुम्हें दूँगा ।" फिर वह उस मत्स्य के पास से पेटी सभा में मँगवा लाया । ८१ उसमें सचमुच वह वधू थी ही । ब्रह्मा ने कहा—"अब खोलो ।" तो पेटी को खोलकर देखते ही उसे वधू-वर दोनों दिखायी

पाहतां । वोहरें उभयतां देखिलीं । ८२ परम आश्चर्य करी रावण । म्हणें खरें जाहलें ब्रह्मवचन । तरी मी या दोघांसी वधीन । शस्त्र घेऊन सरसावला । ८३ कौसल्या जाहली भयभीत । पतीचें वदन विलोकित । परी निर्भय वीर दशरथ। ना भी म्हणत कौसल्येतें । ८४ मी सूर्यवंशीं महावीर । हें मशक काय दशकंदर । याचीं दाही शिरें समग्र । खंडीन आतां येथेंचि । ८५ मग रावणाचा हात । धरिता जाहला विष्णुसुत। म्हणे मज देईं इच्छित । माग म्हणत दशवदन । ८६ हीं दोघें वधूवरें आतां । मज देईं लंकानाथा । मंदोदरी म्हणे तत्त्वतां। वचन असत्य न करावें । ८७ गेला तरी जावो प्राण । परी असत्य न करावें वचन । यांसी वधितां येथेंचि विघ्न । उठेल दारुण आतांचि । ८८ बुद्धीचा प्रवर्तक भगवंत । ब्रह्मयासी म्हणे नेईं त्वरित । तेणें पेटी उचलोन अकस्मात । अयोध्येसी आणिली । ८९ अयोध्येंत जाहला जयजयकार । वेगें पातला शचीवर । दशरथावरी धरी छत्र । कर्तव्य विचित्र हरीचें । ९०

दिये । ८२ रावण को परम आश्चर्य हो गया । उसने कहा–"ब्रह्मा का कथन ही सिद्ध हो गया । फिर भी मैं इन दोनों को मार डालूँगा ।" ऐसा कहते हुए वह शस्त्र लेकर आगे बढ़ा । ८३ इससे कौसल्या भयभीत हो अपने पति का मुँह ताकने लगी, तो उस निर्भय वीर दशरथ ने कौसल्या से भयभीत न होने को कहा । ८४ वह बोला—" मैं सूर्य कुलोत्पन्न महावीर (पुरुष) हूँ । यह मच्छर (के समान) रावण क्या है ? इसके संपूर्ण दसों सिरों को मैं यहाँ पर अभी ही खण्ड-खण्ड कर डालूँगा ।" ८५ इसपर ब्रह्मा ने रावण का हाथ पकड़ लिया और कहा, " तुमने मुझे मेरा इच्छित माँगने को कहा है ।" रावण ने कहा– "तो माँग लो ।" ८६ ब्रह्मा ने कहा–"तो हे रावण, ये दोनों वधू और वर मुझे दे डालो ।" (यह सुनकर) मन्दोदरी बोली–"अब सचमुच अपना वचन असत्य न सिद्ध करो। प्राण जा रहे हों, जाने दें, लेकिन अपने वचन को झूठा न होने दें ।" इसका वध करने पर यहीं भयानक विघ्न अभी ही उत्पन्न होगा; (यह जानकर) बुद्धि के प्रवर्तक भगवान् ने ब्रह्मा से कहा–"इसे फ़ौरन ले जाओ ।" तब वह उस पेटी को उठकर यकायक अयोध्या में ले आया । ८७-८९ तब अयोध्या में जयघोष हो गया । वहाँ (शची का पति) इन्द्र झट से आ पहुँचा और उसने दशरथ पर छत्र धर रक्खा । इस प्रकार भगवान् की करनी विचित्र होती है । ९० दशरथ को राज्य (की गद्दी) पर प्रतिष्ठित

दशरथ राज्यीं स्थापून। विधि आणि सहस्रनयन। वेगें पावले स्वस्थान। आनंदें मनीं उचंबळले। ९१ पुष्पकीं बैसोनि जातां दशकंदर। एक देवस्त्री देखिली सुंदर। तिचा बळेंचि धरिला कर। तिसीं अविचार करूं इच्छी। ९२ तंव ते आक्रंदत नितंबिनी। रावणें सोडिली तेचि क्षणीं। ती ब्रह्मयापासी जाऊनी। गाऱ्हाणें सर्व सांगत। ९३ रावणासी शापी सत्य-लोकवासी। परस्त्रीवर बलात्कार करिसी। तरी शतखंडें निश्चयेंसी। तुझे तनूचीं होतील। ९४ जैसा सिंह आडांत पडिला। कीं महाव्याघ्र सांपळयांत सांपडला। तैसा रावण बांधला। शापपाशें-करोनियां। ९५ रावण पाप करी दारुण। गांजिले गाई-ब्राह्मण। पृथ्वी आक्रंदली पूर्ण। गेली शरण ब्रह्मया। ९६ गाईच्या रूपें धरित्री। आक्रंदे विरिंचीच्या द्वारीं। प्रजा ऋषिगण ते अवसरीं। शरण आले विधातया। ९७ विधि बाहेर आला ते क्षणीं। तों समस्त सांगती गाऱ्हाणीं। रावणें यज्ञ टाकिले मोडोनी। सत्कर्म अवनीं चालेना। ९८

करके विधाता और इन्द्र शीघ्रतापूर्वक अपने-अपने स्थान जा पहुँचे। (इस समय) वे आनन्द से गदगद हो उठे थे। ९१

(एक दिन) पुष्पक विमान में विराजमान हो, जाते हुए रावण ने एक सुन्दर देवांगना को देखा। उसका बलपूर्वक हाथ पकड़कर उसने उस स्त्री के साथ बलात्कार करना चाहा। ९२ वह नितम्बिनी आक्रन्दन करने लगी, तो रावण ने उसे उसी क्षण छोड़ दिया। (तत्पश्चात्) उस स्त्री ने जाकर ब्रह्मा से शिकायत की। ९३ तब ब्रह्मा ने रावण को यह अभिशाप दिया—"यदि तुम पर-स्त्री के साथ बलात्कार करोगे, तो निश्चय ही तुम्हारे शरीर के शत-शत टुकड़े हो जाएँगे।" ९४ जिस प्रकार सिंह कुएँ में गिर कर फँस जाए, अथवा बड़ा बाघ कटघरे में फँस जाए, तो वह जैसे बन्दी—असहाय बन जाता है वैसे ही (ब्रह्मा ने) रावण को अभिशाप रूपी पाश में बाँध लिया। ९५

(इस प्रकार) रावण भयानक पाप किया करता था। इससे गो-ब्राह्मण उत्पीड़ित हो गये। समूची पृथ्वी व्याकुल हो गयी और ब्रह्मा की शरण में गयी। ९६ पृथ्वी गाय के रूप में ब्रह्मा के द्वार पर आक्रन्दन करती रही। सारे प्रजाजन और ऋषि (भी) उस समय विधाता की शरण में आये। ९७ उस समय विधाता बाहर आया, तो सब जनों ने (अपनी-अपनी) शिकायतें सुनायीं। (और कहा)—रावण ने यज्ञ उध्वस्त

एक म्हणे माझिया मखा । विघ्न करी नित्य ताटिका । एक म्हणे सुबाहु मारीच देखा । ऋतु माझा विध्वंसिती । १९९ एक सांगती ऋषीश्वर । आमुचीं कुटुंबें समग्र । कुंभकर्णें ग्रासिलीं थोर । अनर्थ मांडिला विधातया । २०० त्रिदश आणि पुरंदर । म्हणती बंदी पडले समग्र । कोणासी नाटोपे दशकंधर । काय विचार करावा । २०१ मग देव प्रजा ऋषिगण । मुख्य परमेष्ठी विष्णुनंदन । क्षीरसागरासी येऊन । अपार स्तवन मांडिलें । २०२ शेषशयन नारायण । कोटिसूर्यांची प्रभा पूर्ण । साठी सहस्र योजन । शेष तल्पक शुभ्र तो । २०३ लक्षार्ध योजनें प्रमाण । वरी पहुडला श्रीभगवान । तो सच्चिदानंद रमारमण । अलंकारें मंडित । ४ जे अनंत शक्तींची स्वामिणी । कमला विलसत चरणीं । जिच्या इच्छामात्रें करूनी । ब्रह्मांड हें विस्तारलें । ५ एक लक्ष योजनें देदीप्य । विराजमान मध्य मंडप । तेथींचें तेज पाहतां अमूप । मार्तंड शशी लोपती । ६ गरुडपाचूंचे जोतें

कर डाले । अब पृथ्वी पर कहीं सत्कार्य नहीं चल सकता । १९८ एक (ऋषि) ने कहा–मेरे यज्ञ में हमेशा ताड़का (नामक राक्षसी) विघ्न उपस्थित करती है । किसी एक ने कहा–देखो, सुबाहु और मारीच मेरे यज्ञ का विध्वंस किया करते हैं । १९९ किसी एक महान् ऋषि ने कहा–हमारे सब बड़े-बड़े परिवार कुम्भकर्ण ने निगल डाले; हे विधाता, उसने बहुत ही अनर्थ ठान लिया है । २०० उन्होंने कहा–सभी देव तथा (उनका राजा) इन्द्र (रावण के) कारागृह में पड़े हुए हैं । वह किसी के भी वश में नहीं हो रहा है । (इस स्थिति में) क्या (करना) सोचा जाए ? २०१ तब देव, प्रजाजन, ऋषि गण और इन सबों में प्रमुख ब्रह्मा क्षीरसागर के पास आकर (भगवान् नारायण का) आर्त-भाव से स्तवन करने लगे । २०२ (वहाँ) शेषशायी भगवान् नारायण (विराजमान थे) जिनमें करोड़ों सूर्यों का तेज पूर्णतः व्याप्त था । उनके लिए साठ सहस्र योजन बिछा हुआ शेष रूपी शुभ्र पलंग था । २०३ आभूषणों से विभूषित, सच्चिदानन्द रमापति श्री भगवान् नारायण पचास सहस्र योजनों तक उसपर लेटे हुए थे । ४ जो लक्ष्मी अनन्त शक्तियों की स्वामिनी है, जिसकी इच्छा मात्र से यह ब्रह्माण्ड विस्तार को प्राप्त हो गया है,वही उसके चरणों के पास शोभायमान थी । ५ वहाँ मध्य भाग में एक लाख योजन विशाल दैदीप्यमान मण्डप स्थित था । वहाँ का अनुपम तेज देखते ही (ध्यान में आता है कि) उसके सामने सूर्य-चन्द्र लुप्त हो जाएँगे । ६

जानि सबाहित थाकिबाहा सावधाने * आसिबोहो आमि तिनि दिन अवसाने
एहि बुलि सभा बिसर्ज्जया दशरथ * सारथिक बोलन्त सत्वरे आन रथ२३४
शुनिया सारथि रथ तेखने आनिला * सुमित्रार ब्राह्मणक ताहाने तुलिला
आपुनिओ पाचे बिबाहर सब साजे * शुभक्षणे रथत चड़िया महाराजे२३५
हस्ती घोड़ा रथ सर्ब्ब सैन्य सुमंगले * नाना वाद्यभंडे चलि गैला महाबले
नक्षत्र संचारे येन रथ करे गति * सिंहल द्वीपत प्रवेशिला महामति ३६
सुमित्रार पुरोहित रथर नामिला * शीघ्र बेगे गैया सुमित्रात जान दिला
दशरथ राजा याइ नगरे प्रवेश * शुनि नृपतिर भैला हरिष आशेष ३७
पात्र-मित्र पुरोहित सैन्य सुमंगले * आग बाढ़ि नृपति आसिला कुतूहले
दशरथ नृपतिर पाइला गैया लाग * बिधिवते सभार्ये पूजिला महाभाग ३८
बोलन्त सुमित्रे भाग्य मिलिल आमार * कत पुण्ये देखिलोहो चरण तोमार
तुमि सम राजा नाइ इ तिनि लोकत * तयु निजगुणे बश्य हुया राजा यत ३९
तोमार चरणे सेवा करे भृत्य सम * दाने धर्म्मे कुले शीले तुमि सर्ब्बोत्तम
सातोद्वीपा पृथिबीर तुमि अधिपति * सूर्य्यवंशधर तुमि येन विष्णु मूर्त्ति ४०
लोकक शीतल करा चन्द्रवंश धरि * महाबल पराक्रमे इन्द्रो नोहे सरि
धन बृष्टि करा तुमि कुबेर समान * लोक दंडधर तुमि येन यम सम ४१
धर्म्म प्रतिपालत विष्णुर समसर * लोकपालनत तुमि सर्ब्ब अंशधर
आनो नाना स्तुति राजा अनेक करिला * परम गौरव करि अन्तःपुरे निला ४२

जा रहा हूँ। आप लोग तीन दिन सावधानी से रहिएगा। चित्त अन्धकारमय है—अपना-पराया किसी को भी पहचानता नहीं हूँ—शून्य सिंहासन देखकर सभी लोग अमंगल की चिन्ता करेंगे ॥ ३३ ॥ सभी लोगों का हित-चिन्तन करते हुए सावधानी से रहना—तीन दिन के उपरान्त मैं आ जाऊँगा। इतना कहकर दशरथ ने सभा विसर्जित की और सारथी से शीघ्र रथ लाने के लिए कहा ॥ २३४ ॥ यह सुनकर सारथि तुरन्त रथ ले आया और सुमित्रा के ब्राह्मण को उस पर बैठाला। इसके बाद स्वयं महराज, विवाह की सारी सज्जा से सज्जित हो, शुभघड़ी पर रथ में बैठ गये ॥ २३५ ॥ हाथी, घोड़ा, रथ—सारे सैन्य और विभिन्न वाद्य-वादन के साथ महाबली दशरथ मंगल-यात्रा पर चल पड़े। रथ भी नक्षत्र-गति से चल पड़ा और महामति शीघ्र ही सिंहलद्वीप में पहुँच गये ॥ ३६ ॥ सुमित्रा का पुरोहित रथ से उतरा और शीघ्रगति से जाकर सुमित्र को सूचित किया। दशरथ राजा ने नगर में प्रवेश किया है, यह सुनकर नृपति को बड़ा हर्ष हुआ ॥ ३७ ॥ नृपति अपने पात्र-मित्र और पुरोहित के साथ सुमंगल सैन्य को लेकर कौतूहल से अगवानी करने चले। आगे बढ़कर वे दशरथ नृपति से मिले और विधिवत् उनकी सभा की अर्घ्य से पूजा की ॥ ३८ ॥ सुमित्र ने कहा, कितना सौभाग्य था मेरा कि अपने पुरातन पुण्यों के कारण तुम्हारे चरणों के दर्शन हुए। इन तीनों लोकों में तुम्हारे समान राजा कोई नहीं है। तुम्हारे गुणों के कारण ही सारे राजा तुम्हारे वश में हैं ॥ ३९ ॥ वे तुम्हारे चरणों की सेवा भृत्य के समान करते हैं। तुम दान, धर्म, कुल, शील में सर्वोत्तम हो, तुम सातों द्वीप वाली पृथ्वी के अधिपति हो, सूर्यवंश में उत्पन्न तुम साक्षात् विष्णु की मूर्ति के समान हो ॥ ४० ॥ तुम सारी प्रजा को शीतल करते हो इसलिए तुमको चन्द्रवंश का मानता हूँ। बल और पराक्रम में इन्द्र भी तुम्हारे तुल्य नहीं हैं। कुबेर के समान तुम धन का वर्षण करते हो। प्रजाओं में तुम दंडधर यम के समान हो ॥ ४१ ॥ धर्म के प्रतिपालन में तुम विष्णु के समान हो, लोक-पालन में तुम सर्वशक्तिमान हो।

यत्ने रत्नमय सिंहासन दिला आनि * बसिलन्त सुखे दशरथ महामानी
अशेष प्रकारे पूजा करिया सुमित्र * लैया संगे रंगे पाचे पात्र मंत्री मित्र ४३
करिलन्त एक स्थान बिहार संभार * पुष्प गन्ध चन्दन ताम्बुल उपहार
नाना फल मूल दिव्य वस्त्र अलंकार * दधि दुग्ध घृत मधु मिलाइला अपार ४४
कराइलन्त बहुबिध लोकर आचार * सांजि मांजि कराइला नगर जातिष्कार
पताका तोरण छिन्न चौंडा ध्वज दंड * मृदंग गोमुख शंख नाना बाद्य भंड ४५
नाना नृत्य गीत जय उत्सव मंगल * मिलि गैल लोकत अनेक कुतूहल
आचरि नृपति आति विधि व्यवहार * करिलन्त अधिबास बर-कनियार ४६
रजनी प्रभाते दशरथ नरेश्वर * स्नान दान तर्पण करिला निरन्तर
नान्दीमुख श्राद्ध पाचे करिला नृपति * देव पितृ कार्य संकलिला महामति ४७
बिबाहर लग्न पाचे भैल उपगत * बसिला नृपति पाचे यज्ञर थानत
सुमित्र नृपति जयवाद्य सुमंगले * कन्या सम्प्रदान करिलन्त कुतूहले ४८
नाना रत्न दासी दास हस्ती घोरा रथ * अनेक यौतुक दिला कन्यार लगत
सुवर्ण रजत मणि मुकुतार दाम * दिलन्त सुमित्रे आति पूरि मनकाम ४९
राजा दशरथे कन्या सुमित्राक पाइ * भैलन्त हरिष आनन्दर सीमा नाइ
अमृतक पाइ येन लोभाविष्ट जन * दरिद्र पराणी येन पाइल महाधन ५०
कन्या पाया सेहिमत भैला दशरथ * बिबाहमंगल पाचे भैला समापत
अयोध्याक याइबे नृपतिर भैला मन * करिलन्त सुमित्रक सादरे बन्दन ५१

इस प्रकार से और भी कितनी ही स्तुतियाँ राजा ने कीं और बहुत सम्मान दिखाते हुए उनको अन्तःपुर ले गये ॥ ४२ ॥ यत्नपूर्वक रत्नमय सिंहासन लाया गया। उस पर महामान्य दशरथ आराम से बैठे। सुमित्र ने अपने साथ सारे पात्र-मित्र-मंत्री आदि को लेकर कितने ही प्रकार से उनकी पूजा की ॥ ४३ ॥ एक स्थान पर विवाह की सारी सामग्रियाँ—पुष्प, गन्ध, ताम्बूल, चन्दन, उपहार, विभिन्न फल-मूल, सुन्दर वस्त्र और अलंकार आदि—इक्ट्ठी की गईं। दूध, दही, घी, शहद, आदि भी पर्याप्त मात्रा में रखे गये ॥ ४४ ॥ कितने ही प्रकार के लोकाचारों का पालन किया। नगर को साफ-सुथरा और सुसज्जित कर शोभायमान बना दिया। तोरण पर लम्बे ध्वजदंडों पर पताकाएँ लगाई गईं। मृदंग, गोमुख, शंख आदि विभिन्न प्रकार के वाद्य बजने लगे ॥ ४५ ॥ मंगल जयोत्सव में विभिन्न नृत्यों-गीतों का अनुष्ठान हुआ, जिससे लोगों में कौतूहल का संचार हुआ। नृपति ने रीति-रिवाज के अनुसार वर-कन्या के अधिवास का सारा प्रबन्ध किया ॥ ४६ ॥ प्रभात होने पर राजा दशरथ ने उठकर स्नान किया, तर्पण और दान भी किया। इसके अनन्तर उन्होंने नान्दीमुख श्राद्ध भी किया। इस प्रकार नृपति ने देवता और पितरों का कार्य सम्पन्न किया ॥ ४७ ॥ इसके अनन्तर विवाह की शुभघड़ी आई तो नृपति यज्ञ के स्थान पर बैठ गये। राजा सुमित्र ने मंगलकारी जयवाद्य-वादन के साथ अपनी कन्या का सम्प्रदान सोत्साह किया ॥ ४८ ॥ कन्या के सहित अनेक धन, रत्न, दास-दासी घोड़ा-हाथी, रथ आदि दहेज के रूप में दिया। सुमित्र ने अपनी मनोकामना पूरी करते हुए सोना, चाँदी, माणिक, मोती आदि भी दान में दिये ॥ ४९ ॥ कन्या सुमित्रा को पाकर राजा दशरथ बड़े हर्षमग्न हुए, उनके आनन्द की सीमा नहीं रही। लालची व्यक्ति को मानो अमृत मिल गया हो या दरिद्र व्यक्ति को मानों विपुल धन प्राप्त हो गया हो ॥ ५० ॥ इस प्रकार दशरथ को कन्या प्राप्त हुई। इसके अनन्तर विवाह के सारे शुभकार्य समाप्त हुए और नृपति ने अयोध्या जाने के लिए विचार किया। उन्होंने

सुमित्रे बुलिला पाचे बचन बिनय * मोर जीउखानिक पालिबा महाशय
अबोध छवाल नोहे तोमार उचित * तथापितो दासी बुलि पालिबाहा नित ५२
सर्मपिला कन्याक सुमित्र महाराज * दशरथ राजा चलिबाक भैला साज
काछि पारि आसि लाग लैला सेना यत * सुमित्राक तुलिलन्त सुवर्णरथत ५३
अयोध्यार पति सेहि रथे आरोहिला * सुमंत्र चाबुक धरि घोराक डाकिला
चलि गैल रथ येन बिजुलीसंचार * सेनागणे करे जय शबद जोकार ५४
चल चल बुलि प्रजा करे हुलस्थुल * काहाली महरी भेरी शबद तुमुल
दुन्दुभि मृदंग दामा बाजे ढाक ढोल * नाना बाद्यभंड हस्ती घोरार आन्दोल ५५
दशोदिशे बियापि शवदे गैल छानि * आकाशक लंघिया स्वर्गतो लागे ध्वनि
सुमंत्र चलान्त बेगे नृपतिर रथ * पृथिबी एरिया गैल आकाशर पथ ५६
सुमित्रा सहिते राजा परम कौतुके * अयोध्या नगर गैया पाइलन्त उत्सुके
आपुन आवासे नाना जय सुमंगले * सुमित्रा सहिते प्रबेशिला कुतूहले ५७
दशरथ नृपतिर मातृ इन्दुमती * कौशल्या कैकेयी दुइ बोहारी सहिति
आनो शान्ती सुन्दरी आयती लैया संगे * मंगल आचार यत करिलन्त रंगे ५८
सुमित्रार रूप गुण चरित्र आचारे * मनत मिलिल आति सबारे
सबेओ दिलन्त दिव्य बस्त्र अलंकार * नाना मणि रत्न दिया करिला सत्कार ५९
एहिमते नृपतितिलक दशरथ * एके एके बिबाह करिला सात शत
सबाते प्रधान भैला तिनि महादइ * कौशल्या सुमित्रा सती सुन्दरी कैकेयी२६०
कैकेयीर रूपे मुहिलेक नृपतिक * तांक स्नेह करे राजा सबातो अधिक

सुमित्र का सादर वन्दन किया ।। ५१ ।। इसके बाद सुमित्र ने विनय-वचन कहा। हे महाशय, मेरी बेटी को यत्न से पालना। अबोध बच्ची तुम्हारे योग्य तो नहीं है—फिर दासी समझकर उसका प्रतिपालन करना ।। ५२ ।। इस प्रकार महाराज सुमित्र ने अपनी कन्या सौंप दी। राजा दशरथ चलने के लिए सुसज्जित होने लगे। जितनी सेना थी वह निकट आकर खड़ी हो गई। सुमित्रा को स्वर्ण-निर्मित रथ में बिठाया गया ।। ५३ ।। अयोध्या-पति उसी रथ पर सवार हो गये। सुमंत्र ने चाबुक पकड़ कर घोड़े को पुचकारा। वह रथ यों चल पड़ा मानों बिजली चमककर चली गयी। सारी सेना जय-ध्वनि कर उठी ।। ५४ ।। सारी प्रजा में चलो-चलो शब्द से उथल-पुथल मच गई। काहाली, महरी, भेरी, दुन्दुभि, मृदंग, दमामा और नगाड़ा, ढोलक आदि बजने लगे। विभिन्न वाद्ययंत्रों की ध्वनि और हाथी, थोड़ों का चलना-फिरना ।। ५५ ।। ये शब्द दशों दिशाओं में छा गये। आकाश को लांघकर यह ध्वनि स्वर्ग से जा टकराई। सुमन्त नृपति का रथ वेग से चलाने लगा तो पृथ्वी का पथ छोड़ उसने आकाश का मार्ग ले लिया ।। ५६ ।। सुमित्रा के साथ राजा परम कौतुक से अयोध्या नगर में उत्सुकता के साथ जा पहुँचे। अपने भवन में सुमित्रा के साथ शुभ लक्षणों सहित कौतूहल से प्रवेश किया ।। ५७ ।। राजा दशरथ की माँ इन्दुमती अपनी दोनों बहुओं—कौशल्या और कैकेयी के साथ, एवं अन्यान्य सुघर सुन्दरी साध्वियों के साथ, कितने ही मंगलाचार सानन्द करने लगीं ।। ५८ ।। सुमित्रा के रूप-गुण और आचरण-चरित्र से सभी लोग बड़े सन्तुष्ट हुए और हृदय से उससे मिले। सभी लोगों ने सुन्दर वस्त्र-अलंकार और विभिन्न मणि-रत्न देकर उसका आदर-सत्कार किया ।। ५९ ।। इसी प्रकार से नृपतियों में श्रेष्ठ दशरथ ने एक-एक कर सात सौ विवाह किये। इनमें सबसे प्रधान तीनों महा-देवियाँ हुईं—सती सुमित्रा, सुन्दरी कैकेयी और कौशल्या ।। ६० ।। कैकेयी के रूप ने नृपति को मुग्ध कर लिया, इसलिए राजा उसी से सबसे अधिक प्रेम करने लगे।

दशरथर राज्यर ओपरत शनिर दृष्टि आरु जटायुर लगत बन्धुता

राज्यभोग भुंजे भार्या-समूह सहित * राज्य चिन्ता नाहि भैला भार्यात मोहित२६१
स्त्रीगण लैया क्रीड़ा करय नृपति * हेनकाले आसिला नारद महामति
नारदक देखि दशरथ नरेश्वर * आथेबेथे गाव चालि उठिला सत्वर ६२
सुवर्ण आसन दिला करि नमस्कार * पाद्य अर्घ्य दिया करिलन्त सतकार
आशीर्ब्बाद करि मुनि बसिला आसने * कृताञ्जलि करि राजा मधुर वचने ६३
पुछिलन्त सादरे कुशल आगमन * कहियोक मुनि किबा साधो प्रयोजन
शुनिया राजाक बुलिलन्त मुनिबर * भाल मन्द चिन्ता तुमि नकरा राज्यर ६४
सूर्य्यवंशे भैला यत नृपति महन्त * पुत्रतो अधिक करि राज्य पालिलन्त
सेहि सूर्यवंशे तुमि नृपति प्रधात * स्त्रीत भैलाहा बाउल चिन्ता नाहि आन ६५
यिटो राजा नकरे लोकक प्रतिपाल * होवय अल्पायु भोग नाहि चिरकाल
तोमार राज्यर लोके पावे बर दुख * नभैल अपत्य नेदेखिला पुत्रमुख ६६
तुमि सुखे आछा दुख पावे लोक यत * एहि पापे पाचे परिवाहा नरकत
राजा बोले शुना मुनि बचन आमार * करिछो लोकक आमि किबा अपकार ६७
नाहि दंड बन्ध बलाबल बैरभय * नाहि पाल पांच लोक कुशले आछय
नाहि चोर चोंच शत्रुभय अकालत * केने अपयश मोक करय लोकत ६८
नारदे बोलन्त शुना नृपति महन्त * शनिर दृष्टित परि रोहिणी आछन्त
सम्पूर्ण शनिर दृष्टि भैल रोहिणीत * वृष्टि नाहि एको शस्य नोपजे भूमित ६९

दशरथ के राज्य पर शनि की दृष्टि और दशरथ-जटायु-मित्रता

अपनी पत्नियों के सहित राजा राज्य-सुख का उपभोग करते रहे। पत्नियों में मुग्ध पड़े रहने से राज-काज की चिन्ता नहीं रही ॥ २६१ ॥ नृपति नारियों को लेकर क्रीड़ा में मत्त थे कि ऐसे समय महामना नारद वहाँ आ पहुँचे। नारद को देखकर राजा दशरथ अत्यन्त आदर के साथ झटपट उठ कर खड़े हो गये ॥ ६२ ॥ प्रणाम कर उन्होंने सोने का बना आसन दिया और पाद्य-अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया। मुनि आशीर्वाद कर आसन पर बैठ गये। राजा ने हाथ जोड़कर मधुर वचन से पूछा ॥ ६३ ॥ उन्होंने सादर पूछा, कुशल तो है, आने का कारण क्या है, हे मुनि बताओ कौन सी आवश्यकता है? यह सुनकर मुनि ने राजा से कहा, तुम राज्य के भले-बुरे की चिन्ता नहीं करते ॥ ६४ ॥ सूर्यवंश में जितने भी महान् राजा हुए उन्होंने पुत्र से भी अधिक मानकर प्रजा का प्रतिपालन किया। उसी सूर्यवंश में तुम एक प्रधान नृपति हुए हो, स्त्री के पीछे तुम पागल बने हुए हो—दूसरी कोई चिन्ता ही नहीं है तुमको ॥ ६५ ॥ जो राजा प्रजा का प्रतिपालन नहीं करता है वह अल्पायु होता और सदा के लिए भोग नहीं कर सकता। तुम्हारे राज्य के लोगों को बड़ा क्लेश प्राप्त होगा। तुम्हारे कोई सन्तान भी नहीं हुई और न तुमने बेटे का मुख देखा ॥ ६६ ॥ तुम सुख से हो और सारे लोग दुख पा रहे हैं, इसी पाप से बाद में तुम नरक जाओगे। राजा ने कहा, हे मुनि! सुनो, मैं लोगों का कौन सा अपकार कर रहा हूँ ॥ ६७ ॥ सजा या दंड देना भी बन्द नहीं, कोई शत्रुभय भी नहीं, बुरे लोगों को कोई बढ़ावा नहीं, लोग कुशल से हैं। चोर-चाँई शत्रु और अकाल का कोई भय नहीं—तो फिर क्यों लोगों में मेरा अपयश करते हो ॥ ६८ ॥ नारद ने कहा, हे महान् नृपति सुनो, रोहिणी पर शनि की दृष्टि थी ही, अब उसकी

सि कारणे अन्न-दुख पावे लोक यत * आपुनि देखियो राजा फुरिया राज्यत
लोके येन बोले ताक शुनाहा आपुनि * राजाक एतेक बुलि चलि गैला मुनि ७०
नारदर वाणी शुनि पाचे दशरथे * दक्षिण दिशक गैला चड़ि निज रथे
प्रबेशिला गैया राजा घोर अरण्यत * नाना मृग पक्षीगण देखिला बनत ७१
दिव्य सरोवर देखिलन्त महाबले * कौतुके बसिला राजा एक वृक्ष तले
सेहि वृक्षडालत शालिका दुइ आछे * ताहार बचन राजा शुनिलन्त पाचे ७२
शालिका बोलय शुना शालिकी वचन * इ बन एरिया आसा जाओं आन बन
शालिकी बोलय देखा इ बर अकाज * सपत पुरुष वंचो एहि बन माज ७३
इहाक एरिते बर दुख लागे मने * इ बन एरिया केने याइबो आन बने
शालिका बोलय शुना गुचो यि कारण * सूर्य्यर वंशत यत राजा महाजन ७४
नजानिलो एको दुख वंचि सिटो राजे * निमिले आधार एवे एत काल बाजे
जानो दशरथ राजा अधर्म्म करय * स्त्री लैया क्रीड़े राजा प्रजा नपालय ७५
राज्यभोग करे चिन्ता नकरे राज्यर * संसारतो नतो देखो हेन नृपवर
इहार राज्यत आमि मरिबो पराणे * इ बन एरिया आसा याओं आन बने ७६
आछिलो सुखत एको नाछिल प्रमाद * नाना फल फुल पाइलो सुरस सुस्वाद
एकोरे आधार एवे नापाओं बनत * नाहि बरषुण पंच बत्सर राज्यत ७७
सुख दुख दशरथे नाजाने राज्यर * झांटे गुचि जाओं आमि आनो बनान्तर
एहि बुलि शालिका तलक निरेखिल * बृक्षर मूलत दशरथक देखिल ७८

सम्पूर्ण दृष्टि उस पर छा गई है। वर्षा नहीं होगी और धरती पर कोई भी फ़सल उत्पन्न नहीं होगी ॥ ६९ ॥ इसी कारण लोगों को अन्न के लिए दुख सहना पड़ेगा। राजा, स्वयं अपने राज्य में घूम-फिर कर देख आओ। लोग जो कुछ कहते हैं वह स्वयं सुनो। राजा से इतना कहकर मुनि चले गये ॥ ७० ॥ नारद के वचन सुनने के उपरान्त दशरथ अपने रथ पर सवार होकर दक्षिण दिशा की ओर गया। घोर अरण्य में राजा जा पहुँचा। वहाँ वन में उसने नाना प्रकार के मृग और पक्षी देखे ॥ ७१ ॥ महाबल ने एक दिव्य सरोवर देखा। राजा एक वृक्ष के नीचे सानन्द बैठ गया। उसी वृक्ष की डाल पर दो सुग्गे बैठे थे। उनकी बातचीत राजा ने इसके बाद सुनी ॥ ७२ ॥ सुग्गा सुग्गी से कहता है—मेरा वचन सुनो, इस वन को छोड़कर, चलो दूसरे वन चलें। सुग्गी ने कहा, लेकिन यह तो बड़ा अटपटा काम बता रहे हो। सात पुश्त से हमारा इस वन में निवास है ॥ ७३ ॥ इस वन को छोड़कर जाने में बड़ा क्लेश होगा, इस वन को छोड़कर आख़िर दूसरे वन में जाएँ भी क्यों ? सुग्गा ने कहा, सुनो, यहाँ न रहने का कारण बताता हूँ। सूर्यवंश में अनेक महान् राजा हो चुके हैं ॥ ७४ ॥ उनके राज्य में रहते हुए एक भी दुःख नहीं मिला। इतने दिनों के बाद अब अन्धकार उतर आया है। जानती हो, राजा दशरथ अधर्म कर रहा है, प्रजा का पालन न कर अपनी नारियों के साथ क्रीड़ा करता रहता है ॥ ७५ ॥ राज्यभोग करता है, लेकिन राज्य की कोई चिन्ता नहीं करता। संसार में ऐसा नृपवर नहीं दिखाई पड़ता। इसके राज्य में मैं प्राणों से मारा जाऊँगा। यह वन त्याग कर, चलो दूसरे वन को चला जाय ॥ ७६ ॥ सुख से यहाँ थे, कोई विपत्ति नहीं थी। स्वादिष्ट फल-फूल मिला करते थे। अब एक भी आहार्य यहाँ नहीं मिलता। पाँच वर्ष तक राज्य में वर्षा नहीं होगी ॥ ७७ ॥ दशरथ राज्य का सुख-दुख नहीं जानता। मैं झटपट दूसरे वन को चला जाऊँगा। यह कहकर सुग्गा ने पेड़ के नीचे देखा और वृक्ष के तने के पास दशरथ को बैठा देखा ॥ ७८ ॥

भैल भय राजाक देखिया विद्यमाने * बुलिलो राजाक मन्द मारिब पराणे
पक्षीर देखिया डर हासि महाशय * नकरा तरास बुलि दिलन्त अभय ७९
कर अधिकार इटो बन दिलो तोक * सुखे थाक पक्षी भय नकरिबि मोक
एहि बुलि नृपति स्वर्गक गैला लरि * इन्द्रर भुवन गैया पाइला दरदरि ८०
महाकोपे बुलिलन्त देवतागणक * जान देह आमि युद्ध करिबो इन्द्रक
देवगणे बोले कोप एरा महारथ * नकरिबे युद्ध इन्द्रे तोमार लगत ८१
हेन शुनि नरनाथे बुलिला बचन * इन्द्रर अधीन इटो यत मेघगण
मोहोर राज्यत बृष्टि किसक नकरे * अनाबृष्टि नष्ट भैल राज्य निरन्तरे ८२
नाहि पंच बत्सर राज्यत बरिषण * मोर अपयशे दुख पावे प्रजागण
बृष्टि करि करन्तोक राज्य मोर रक्षा * नुहि अम्रावती जिनि लैबो मोर कक्षा ८३
शुनि नृपतिर दर्प युगुत बचन * बासवर आगे जान दिला देवगण
कृतांजलि बोले शुना त्रिदशर राय * दशरथ राजा आसि आछे तयु ठाइ ८४
अपमाने गर्ब्बबाक्य बोलय कर्कश * अनावृष्टि देखि देन्त तोमार दुर्यश
बासवे बोलन्त हुया आपुनि मानुष * मोक मन्द बाणी बुलि देखावे पौरुष ८५
नकरिबा अहंकार बोले देवगण * पाद्य अर्घ्य दिया ताँक करियो पूजन
तांक कोन जने जिनिबेक समरत * परम बिक्रमी नाना अस्त्रत पार्गत ८६
कराहा आलाप तांक मधुर बचने * सतकार पाइले ताप नबाढ़िब मने
मने अनुमानि इन्द्र देवतार बाक * पाद्य अर्घ्य दिया पूजा करिला राजाक ८७
सतकार पाया दशरथ नृपबर * इन्द्रक बोलन्त शुनियोक पुरन्दर
मोहोर राज्यत केने नाहि बरिषण * अनाहारे मरे लोक कहियो कारण ८८

सामने राजा को देखकर उसको डर लगा। राजा को बुरा-भला कहा है, बेशक प्राणों से मार डालेगा। पक्षी का भय देखकर राजा ने हँसकर 'डरो मत' कहकर उसको अभय दिया ॥ ७९ ॥ ऐ पक्षी, यह वन मैंने तुमको दे दिया, इस पर अपना कब्जा कर लो। सुख से रहो और मुझसे मत डरो। यह कह कर ही राजा स्वर्ग के लिए चल पड़ा और इन्द्र के भुवन में जा पहुँचा ॥ ८० ॥ देवताओं से उसने महाक्रोध में कहा, यह ख़बर कर दो कि मैं इन्द्र से युद्ध करने आया हूँ। देवताओं ने कहा, महारथ ! आप अपना क्रोध शान्त करें, आपसे इन्द्र युद्ध नहीं करेगा ॥ ८१ ॥ यह सुन कर नरनाथ ने कहा, ये सारे बादल इन्द्र के अधीन हैं। मेरे राज्य में किस कारण यह पानी नहीं बरसा रहा है। सूखा से मेरा राज्य चौपट हो रहा है ॥ ८२ ॥ पाँच वर्ष से राज्य में वर्षा नहीं हुई। मेरे अपयश के कारण प्रजा दुखी हो रही है। पानी बरसा कर मेरे राज्य की रक्षा करो वर्ना मैं अमरावती को जीतकर अपने अधीन कर लूँगा ॥ ८३ ॥ नृपति का दर्पपूर्ण वाक्य सुनकर देवताओं ने इन्द्र को सूचित किया। हाथ जोड़ कर उन लोगों ने कहा, हे त्रिदश (देवता) के राजा, राजा दशरथ तुम्हारे यहाँ आ पहुँचे हैं ॥ ८४ ॥ वह (तुम्हारे लिए) अपमानजनक गर्वित वाक्य बोल रहे हैं, अनावृष्टि देखकर तुम्हारी निन्दा कर रहे हैं। वासव ने कहा, स्वयं तो मनुष्य है, मुझको बुरा-भला कहकर अपना पौरुष प्रदर्शित कर रहा है ॥ ८५ ॥ देवताओं ने कहा, अहंकार मत करना। उनको पाद्य-अर्घ्य देकर पूजा करना। उनको कौन जीत सकेगा, कौन इतना समर्थ है। वह बड़े ही पराक्रमी हैं और विभिन्न अस्त्रों में पारंगत हैं ॥ ८६ ॥ उनके साथ मधुर वाक्यों से बातचीत करना। यदि उन्हें अच्छा बरताव मिलेगा तो उनके दिमाग की गर्मी नहीं बढ़ेगी। देवताओं के वाक्य सुनकर और मन में विचार कर इन्द्र ने पाद्य-अर्घ्य देकर राजा की पूजा

इन्द्रे बोले शुना राजा करि थिर चित * सम्पूर्ण शनिर दृष्टि भैल रोहिणीत
सिहेतु नाहिके वृष्टि तोमार राज्यत * शनिर पाशक तुमि याहा महारथ ८९
बुलिबा छारोक शनि रोहिणीत दृष्टि * तेवेसे तोमार राज्ये हैबे जाना वृष्टि
शुनि दशरथे बासवर बचनक * रथे चड़ि लरि गैला शनिर पाशक ९०
दशरथ नृपतिक देखिया आगत * चाहिलेक शनि कोप करिया मनत
छिंडिल रथर जोरा शनिर दृष्टित * घोरा समे परे राजा हुआ बिमोहित ९१
पाके पाके परे राजा हुया अचेतन * करे तांक रक्षा हेन नाहि एकोजन
गरुड़तनय पक्षी जटायु महन्त * परे दशरथ राज तांक देखिलन्त ९२
परम पूजनी राजा लोकत बिदित * भूमित परिले हाड़ होवे चूर्णांकृत
धरो पिठि पाति दशरथ महाराज * थाकिबेक कीर्त्ति मोर त्रिभुवन माज ९३
बिष्णु समसर राजा धर्म्म अबतार * पिठि पाति लैया आजि करो उपकार
एहि बुलि पाखा पातिलन्त पक्षीबर * परिलन्त राजा तान पाखार उपर ९४
घोराये सहिते परि नमरिला प्राणे * रहिला नृपति पक्षीराजर निदाने
भैलन्त सुस्थिर नरनाथ कतोक्षणे * मरि उपजिला हेन नृपतिर मने ९५
कैर हन्ते आसि पक्षी आमाक राखिल * इहार कारणे मोर जीवन रहिल
नाहिके बान्धव आन पक्षीर समान * एहि बुलि करिलन्त पक्षीक सम्माम ९६
नाना स्तुति करि राजा बुलिला बचन * महाबलवन्त पक्षी तुमि महाजन
आकाशर हन्ते परि जाओं यमघर * पिठि पाति आमाक राखिला पक्षीबर ९७

की ॥ ८७ ॥ नृपवर दशरथ को जो आवभगत मिली तो उन्होंने इन्द्र से कहा, सुनो पुरन्दर, मेरे राज्य में वर्षा क्यों नहीं हो रही है, लोग अनाहार से मर रहे हैं, इसका कारण बताओ ॥ ८८ ॥ इन्द्र ने कहा, राजा, शान्त चित्त होकर सुनो। रोहिणी में शनि की पूर्ण दृष्टि पड़ी, इसी कारण तुम्हारे राज्य में वर्षा नहीं हुई। हे महारथ, तुम शनि के पास जाओ ॥ ८९ ॥ उससे कहना कि रोहिणी में दृष्टि डालना छोड़ दे। तब तुम्हारे राज्य में वर्षा होगी। वासव का वचन सुन कर दशरथ रथ पर चढ़ कर शनि के पास चल पड़ा ॥ ९० ॥ नृपति दशरथ को आते हुए देखकर शनि ने कोप से उसकी ओर देखा। शनि की दृष्टि से रथ के जोड़े टूट-बिखर गये। घोड़ा समेत राजा सम्मोहित हो नीचे गिरे ॥ ९१ ॥ अचेतन होकर चक्कर खाते हुए राजा नीचे गिरने लगे। उनकी रक्षा करे, ऐसा कोई भी नहीं था। गरुड़ का बेटा महान् पक्षी जटायु ने दशरथ राजा को गिरते हुए देखा ॥ ९२ ॥ लोगों में यह विदित है कि राजा परम पूजनीय है। जमीन पर गिरने से उसकी हड्डी चूर-चूर हो जायगी। इस महाराज दशरथ को (पंख) पसार कर पीठ पर रोक लूँ, संसार में मेरा यश बना रहेगा ॥ ९३ ॥ यह राजा विष्णु के समान धर्मावतार है, पीठ पसार कर इसको थाम आज इसका उपकार किया जाय। इतना कह कर पक्षीराज ने अपने डैने फैला दिये और राजा उसके पंखों पर आ गिरे ॥ ९४ ॥ घोड़े के साथ गिर कर भी नृपति प्राणों से नहीं मरे और पक्षीराज के आश्रय में रहे। नरनाथ कितनी ही देर के बाद स्वस्थ हुए और नृपति को लगा कि वे मरकर भी जी गये ॥ ९५ ॥ जाने कहाँ से आकर पक्षी ने मेरी रक्षा की और इसी के कारण मेरे प्राण बच गये। इस पक्षी के समान कोई मित्र नहीं, यह कह कर उन्होंने पक्षी का सम्मान किया ॥ ९६ ॥ अनेक प्रकार से स्तुति करते हुए राजा ने कहा, हे पक्षी, तुम महा बलवान हो, तुम महान् हो। आकाश से गिरकर मैं यम के घर जा रहा था, तुमने अपनी पीठ पसार कर, हे पक्षीराज, मेरी रक्षा की ॥ २९७ ॥ मुझको दुर्दशा से बचा दिया और मेरे

एराइलो दुर्गति प्राण राखिला आमार * नाहि त्रैलोक्यत हेन करे उपकार
किबा पितामह रघु अज पितृ मोर * तयु उपकार कथा कहि नपाओं ओर२९८
महाबलबीर्य्य तुमि बिष्णु अवतार * तयु प्रसादेसे प्राण रहिल आमार
कोन कुले जात तुमि काहार तनय * किबा नाम तोमार दियोक परिचय२९९
शुनि बुलिलन्त पक्षीराज महामति * आमार जटायु नाम जानिबा नृपति
ज्येष्ठ भाइ सम्पाति आछन्त पक्षीबर * दुयो सहोदर आमि पुत्र गरुड़र३००
पक्षीर उपरे राजा भैलो दुयो भाइ * जानिलो बुलिया मातिलन्त महाराय
भैला महामित्र पक्षीराज महाशय * करिलाहा हित मोर प्राणर संशय३०१
तुमि बिने आन महामित्र नाहि मोर * तोमार प्रसादे बर एराइलो दुर्घोर
काष्ठ आनि अग्नि ज्वालि दुइको दुयो धरि* करिलन्त मित्र दुयो अग्नि साक्षी करि३०२
जटायुर हेतु प्राण रहिल आमार * ताँक मित्र करि पाइला हरिष अपार
जटायुर आति बर कौतुक मनत * भैला पक्षी सुखी मित्र पाया दशरथ३०३
करिला जटायु नृपतिक बाहु मान * मेलानि मागिया गैला आपोनार थान
जटायु प्रसादे राजा एराइला संशय * बोला राम राम यत समाजिकचय ४

दशरथक शनिर बर प्रदान

झुमुरि

अनन्तरे दशरथ, दुनाइ जुरिलन्त रथ * एराइ महाशत्रु भय रथे, चड़ि महाशय ५
पुनरपि स्वर्गे गैला, शनिर समुख भैला * पाचे शनि महाभागे राजाक देखिला आगे ६

प्राणों की रक्षा की—तीनों लोक में ऐसा उपकार करनेवाला कोई दूसरा नहीं। मेरे पितामह थे रघु और मेरे पिता अज थे। तुम्हारे उपकार के बारे में जितना भी कहूँ उसका अन्त नहीं ॥ २९८ ॥ तुम महाबलवीर्य-सम्पन्न विष्णु-अवतार हो, तुम्हारे प्रसाद से मेरे प्राणों की रक्षा हुई। किस वंश में तुम्हारा जन्म हुआ, तुम किसके पुत्र हो और तुम्हारा नाम क्या है। अपना परिचय बताओ ॥ २९९ ॥ सुनकर महामति पक्षीराज ने कहा, हे नृपति, यह जान लो कि मेरा नाम जटायु है। मेरा बड़ा भाई पक्षीवर सम्पाती है। हम दोनों सहोदर, गरुड़ के पुत्र हैं ॥ ३०० ॥ पक्षी और राजा दोनों भाई बन गये। ऐसा समझकर (और परिचय जानकर) महाराजा ने कहा, हे महाशय पक्षीराज, तुम मेरे महामित्र बन गये, मेरे प्राणसंशय के समय तुमने मेरा बड़ा हित किया ॥ ३०१ ॥ तुम्हारे सिवा मेरा कोई दूसरा मित्र नहीं। तुम्हारे ही प्रसाद से मैं बड़ी दुर्दशा से बच गया। लकड़ी लाकर आग जलाकर, दोनों ने एक दूसरे का हाथ थाम कर, अग्नि को साक्षी कर परस्पर मित्र बन गये ॥ ३०२ ॥ जटायु के कारण मेरे प्राणों की रक्षा हुई। उसको मित्र के रूप में पाकर मेरा मन बड़ा हर्षमग्न हुआ। जटायु के मन में भी कौतुक का उदय हुआ। पक्षी दशरथ को मित्र के रूप में पाकर बड़ा सुखी हुआ ॥ ३०३ ॥ जटायु ने राजा का बड़ा सम्मान किया, फिर अपने स्थान के लिए रवाना हो गया। जटायु के प्रसाद से राजा विपत्ति से बच गये। जितने समाज के जन हो 'राम-राम' बोलो ॥ ३०४ ॥

दशरथ को शनि का वरदान

इसके उपरान्त दशरथ ने दुबारा रथ जोता। महाशत्रु का भय पार कर महाशय रथ पर सवार हो गया ॥ ५ ॥ फिर वह स्वर्ग गया और शनि के सम्मुख पहुँचा। इसके अनन्तर महाभाग शनि ने अपने सामने राजा को देखा ॥ ६ ॥

त्यारे अबळा आडी थईने ऊभी, कंथतणो कर झाली,
मुनिवरने त्यां मोह पमाडी, मंदिरमां लई चाली । २४ ।
भयंकर वेळा भोग कर्यो ते, गर्भ रह्या निर्वाण,
भावि पदारथ भूले नहि, एम पंडित कहे जे वाण । २५ ।
पछे पूरे दिवसे प्रगट थया, बे पुत्र महा बळवान,
आसुरी उदरथकी तेवा, ब्रह्मराक्षस प्रेत समान । २६ ।
प्रथमे प्रसव हवो ते पुत्रनुं, रावण धरियुं नाम,
कुंभकर्ण ते पूंठे आव्यो, पापी अघनुं धाम । २७ ।
जन्म्या पछी अति प्रौढ थया, तेनी काया जाज्वल्यमान,
रूप भयंकर राक्षस मोटा, प्रल्लेकाळ समान । २८ ।
कुंभकर्ण प्रगटचो ते जाणे, करशे विश्वनो आहार,
मुख फाडीने रुदन कर्युं त्यारे, वरत्यो हाहाकार । २९ ।
त्यार पछी बे पुत्री थई, शूर्पणखा ताडिका नाम,
पापणीओ ते बंने प्रगटी, करती हिंसा काम । ३० ।
कैकशी मनमां कष्टज पामी, प्रजा भयंकर जाणी,
त्यारे कर जोडीने मुनिवर प्रत्ये, दीन थई कहे वाणी । ३१ ।

संध्याकाल की—रात और दिन के सन्धिकाल की—दो घड़ियों (प्रमाण) का यह घोर समय बीत जाने के बाद मैं तुझे ऋतुदान दूँगा' । २३ । तब बाधा रूप खड़ी होकर उस स्त्री ने अपने पति का हाथ पकड़ लिया । वहाँ उसने मुनिवर को मोह में डाल लिया और वह उन्हें लेकर मन्दिर में चली गयी । २४ उन्होंने उस भयंकर वेला में भोग किया; आखिर गर्भ रहा । पण्डितों ने ऐसी बात जो कही है—होनी (बात) नहीं टलती । २५ । बाद में पूर्ण दिवस होने पर उस राक्षसी के गर्भ से दो बलवान पुत्र उत्पन्न हो गये—वे (दोनों) ब्रह्म-राक्षस प्रेतों के समान थे । २६ । जिस पुत्र का जन्म पहले हुआ, उसका नाम रावण रक्खा, कुम्भकर्ण पीछे से (तदनन्तर) जन्मा । वह पापी पाप का घर ही था । २७ । जन्म के पश्चात् वे अति प्रौढ़ हो गये । उनके शरीर जाज्वल्यमान थे । उनका रूप भयंकर था; वे बड़े राक्षस प्रलय-काल के समान थे । २८ । जब कुम्भकर्ण प्रकट हुआ, तो जान पड़ा कि (यह) विश्व का आहार करेगा । (जब) उसने मुँह बाये रुदन किया, तो हाहाकार मचा । २९ । उसके बाद शूर्पणखा और ताड़का नामक दो पुत्रियाँ हुईं । वे दोनों पापिनियाँ ही प्रकट हो गयीं । वे हिंसाकर्म करती थीं । ३० । अपनी सन्तान को भयंकर जानकर कैकसी को मन में कष्ट (दुःख) हुआ, तो हाथ जोड़कर, दीन होकर उसने मुनिवर विश्वश्रवा

'तमोगुणी आ संतति स्वामी, करशे कुळनो नाश,
माटे सात्त्विक सुत आपो मुजने, तो पहोंचे मननी आश' । ३२ ।
ऋतुदान आप्युं अबळाने शुभ वेळा जोई तेह,
तेहथकी पुत्र विभीषण प्रगटचो, भक्त-शिरोमणि जेह । ३३ ।
एम बे तनया ने त्रण पुत्र, ते प्रगट थया निर्वाण,
थोडा दिवसमां वृद्धि पाम्या, राक्षस बळिया जाण । ३४ ।
त्रणे बांधव तप करवाने, चाल्या तेणी वार,
गोकर्ण तीर्थमां रावणे, आराध्या त्रिपुरार । ३५ ।
मंद्राचळ गिरि उपर बेठो, कुंभकरण बळवंत,
बह्मानुं तप मांड्युं तेणे, करतो कष्ट अनंत । ३६ ।
विभीषणे विष्णु आराध्या, सात्त्विक धरतो ध्यान,
एम त्रणे बांधव त्रणे देवने, भजता भाव समान । ३७ ।

वलण (तर्ज़ बदल कर)

एम भजता भावे त्रणे बांधव, अपूर्व तपमहिमाय रे,
कहे दास गिरधर ते जे वर पाम्या, तेनी कहुं कथाय रे । ३८ ।

* * *

से यह वचन कहा—। ३१ । 'हे स्वामी, यह सन्तति तमोगुणी है। यह कुल का नाश करेगी। इसलिए मुझे (कोई) सात्त्विक पुत्र (प्रदान) करो, तो मन की आशा पूरी होगी'। ३२ । तब शुभ समय देखकर (विश्वश्रवा ने) स्त्री को ऋतुदान दिया, उससे विभीषण नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, जो भक्त-शिरोमणि (समझा जाता) है। ३३ । इस प्रकार आखिर (विश्वश्रवा और कैकसी के) दो कन्याएँ और तीन पुत्र उत्पन्न हो गये। समझो कि थोड़े ही दिन में वे विकास को प्राप्त हो बलवान राक्षस हो गये। ३४। उस समय तीनों बन्धु तप करने चले। रावण ने गोकर्ण तीर्थ में त्रिपुरारि भगवान् शिवजी की आराधना की। ३५ । बलशाली कुम्भकर्ण मन्द्राचल (मन्दर) पर्वत पर (तप करने) बैठा। उसने ब्रह्मा जी (की कृपा) के लिए तपस्या शुरू की। वह अपार कष्ट उठाता था। ३६ । विभीषण ने सात्त्विक ध्यान धारण कर विष्णु की आराधना की। इस तरह (वे) तीनों भाई तीन देवों को समान भाव से भजते रहे। ३७ ।

तप की महिमा अपूर्व (अद्भुत) है। गिरधरदास कहते हैं कि इस प्रकार तीनों भाइयों ने भक्ति-भाव से भजते हुए जो वर प्राप्त किये, उनकी कथा अब मैं कहता हूँ। ३८ ।

* * *

अध्याय—४ (रावणादिक को वरप्रदान)

राग मेवाडो

रावणे शंकरने आराध्या, करियुं कष्ट अपार जी,
दारुण तप जोई असुर तणुं, त्यां आव्या छे त्रिपुरार जी। १।
"माग माग तुजने वर आपुं, प्रसन्न थयो छुं आज जी,"
(त्यारे) रावण कर जोडीने बोल्यो, सांभळो शिव महाराज जी। २।
"दशमुख वीस भुजा मने आपो, बळ गुण तेज प्रताप जी,
देव सकळ मारे वश वरते, संतति संपत्ति अपार जी"। ३।
(त्यारे) 'अस्तु' कही अविनाशी ऊठचा, आप्युं छे वरदान जी,
दशमुख, वीस भुजा आपीने, असुर कर्यो बळवान जी। ४।
अमृतकुप्पी रुदेमां स्थापी, अमर कर्यो तत्काळ जी,
'ज्यां लगी कुप्पी भंग थाये, त्यां लगी नहि तुज काळ जी'। ५।
वर आपी विश्वंभर वळिया, रावणने तेणी वार जी,
(हवे) कुंभकरण दारुण तप साधे, मंद्राचळ मोझार जी। ६।
त्यारे ब्रह्मा भय पामीने आव्या, शुं मागशे वरदान जी?
इंद्रने क्षोभ थयो तेणी वेळा, सुर सहु चिंतावान जी। ७।

अध्याय—४ (रावणादिक को वरप्रदान)

रावण ने शंकर की आराधना की; उसने (इस आराधना में) बहुत कष्ट किया। (उस) राक्षस का (यह) कठोर तप देखकर त्रिपुरारि शिवजी वहाँ आ गये (हैं)। १। (उन्होंने कहा–) '(वर) माँगो, (वर) माँगो। मैं तुमको वर देता हूँ। मैं आज (तुमपर) प्रसन्न हो गया हूँ'। तो रावण हाथ जोड़कर बोला—'महाराज शिवजी, सुनो। २। 'मुझे (तुम) दस मुँह (और) बीस हाथ दो। (मुझे) बल, गुण, तेज, (और) प्रताप दो। सब देव मेरे वश में हो जाएँ। मुझे अपार संन्तति और सम्पत्ति प्राप्त हो जाए'। ३। तब 'तथास्तु।' कहकर अविनाशी शिवजी उठ गये। उन्होंने उसे वरदान दिया और दस मुँह (तथा) बीस हाथ देकर (उस) राक्षस को बलवान कर दिया। ४। तत्काल (उस राक्षस के) हृदय में अमृत की कुप्पी रखकर (उसे) उन्होंने अमर कर दिया (और कहा–) 'जब तक (यह) कुप्पी न टूट जाए, तब तक तुमको मौत नहीं है'। ५। रावण को उस समय (ऐसा) वर देकर विश्वम्भर (शिवजी) लौट गये। अब मन्द्राचल (मन्दर पर्वत) के मध्य में कुम्भकर्ण दारुण तप कर रहा था। ६। 'यह क्या वर माँगेगा?'–

(त्यारे) सुरपतिए सरस्वती ने, मोकळी तेणे ठार जी,
असुर तणा मुखमांहे प्रवेशी, वागीश त्यां निरधार जी । ८ ।
(हवे) कुंभकर्णने जगाड्यो विधिए, 'माग माग वरदान जी,'
तप मूकी बोल्यो तेणी वेळा, असुर थयो सावधान जी । ९ ।
इंद्रासन अरथे तप साध्यो, फळमां कांई नव फाव्यो जी,
निद्रासन माग्युं तेणी वेळा, भारतीए भुलाव्यो जी । १० ।
अघोर निद्रा आवी असुरने, विधि वळिया निरधार जी,
निद्रा पामी दानव पडियो, मंद्राचळ मोझार जी । ११ ।
(त्यारे) पडतांमां घणां तरुवर भांग्यां, व्याप्यो शब्द ब्रह्मांड जी,
पहोळुं मुख विकराळ तेनुं छे, घूमे श्वास प्रचंड जी । १२ ।
कुंजर महिष प्रवेशे मुखमां, श्वासथकी खेंचाय जी,
नासिकामांथी नीकळे पाछां, श्वासे ऊडी जाय जी । १३ ।
पिताने जाण थयुं तेणी वेळा, पाम्या दुःख अपार जी,
निशदिन निद्रा पुत्रने व्यापी, व्यर्थ गयो अवतार जी । १४ ।

इस विचार से भयभीत होकर ब्रह्मा जी वहाँ आ गये । ७ । तब सुरपति इन्द्र ने सरस्वती को उस स्थान की ओर रवाना किया । इस स्थिति में वागीश्वरी (सरस्वती) निश्चयपूर्वक (उस) राक्षस के मुँह में प्रवेश कर गयी । ८ । अब ब्रह्माजी ने कुम्भकर्ण को (ध्यान-तप) से जगाया (और कहा)—'वरदान माँगो, वरदान मांगो' । उस समय वह राक्षस सावधान हो गया और तप छोड़कर बोला । ९ । उसने इन्द्रसन की प्रप्ति के लिए तप साधना की—(लेकिन) फल के रूप में कुछ नहीं प्राप्त किया—वह सफल नहीं हुआ । भारती (सरस्वती)ने उसे भुलावे में डाला (मोहित किया), इसलिए उस समय उसने (इन्द्रासन नहीं, अपितु) निद्रासन माँग लिया ।१०। (तब उस) राक्षस को प्रगाढ़ नींद आ गयी । (तो वहाँ से) विधाता निश्चयपूर्वक लौट गये । (वर रूप में) निद्रा प्राप्त कर वह राक्षस मन्द्राचल में (लुढ़क कर) पड़ गया । ११ । उसके गिरने से बहुत पेड़ टूट गये । उसके पड़ने और पेड़ों के टूटने का शब्द (आवाज़) ब्रह्माण्ड को व्याप्त कर गया । उसका चौड़ा मुँह विकराल था । उसकी प्रचण्ड साँस (मानो इधर-उधर) तेज़ी से घूमती । १२ । हाथी, भैंसे उसके मुँह में पैठ जाते; (क्योंकि) वे उसकी साँस से (अन्दर) खींचे जाते । बाद में नाक में से (बाहर) निकलते और उसाँस से उड़ जाते । १३ । पुत्र को रात-दिन निद्रा व्याप्त किये हुए है, उसका अवतार (जन्म) व्यर्थ हो गया—इसका ज्ञान तब पिता (विश्वश्रवा) को हुआ; उन्हें (इससे) अपार दुःख

(त्यारे) प्रार्थना करी ब्रह्मा केरी, बोल्या वचन प्रमाण जी,
एक संवत्सरमां बे दिन जागे, छट्ठे मासे जाण जी। १५।
कुंभकर्ण खट मासे जागे, (त्यारे) वरते हाहाकार जी,
एक दिनमां सहु भोगवे, करतो आहार अपार जी। १६।
विभीषणे विष्णु आराध्या, प्रसन्न थया मोरार जी,
वैकुंठनाथे ध्यानमां आवी, दर्शन दीधुं सार जी। १७।
विभीषणे तव भक्ति मागी, भजतो निरमळ मंन जी,
आकाशवाणी थई ते वेळा, 'सांभळ आसुरी तंन जी। १८।
प्रसन्न थशे पुरुषोत्तम तुजने, आपशे अविचळ राज जी',
वचन सांभळी विभीषण हरख्यो, सरियुं सरवे काज जी। १९।
(पछी) रावण बहु असुर मळ्या, तेणे करियो मित्राचार जी,
पाताळमांथी सरवे आव्या, राक्षसनो नहि पार जी। २०।
कुबेर साथे युद्ध कर्युं; वीती गया बहु दंन जी,
लंका हाथ न आवी त्यारे, बात विचारी मंन जी। २१।

हुआ। १४। तब फिर उन्होंने ब्रह्माजी से प्रार्थना की; वे यों वचन बोले—'यह (कुम्भकर्ण), समझो, छठे महीने में एक दिन—इस तरह वर्ष में दो दिन जागृत हो जाए'। १५। (ब्रह्माजी ने इस प्रार्थना को स्वीकार किया; उसके अनुसार) कुम्भकर्ण छः महीने में (एक दिन के लिए) जागृत होता; तब हाहाकार मच जाता। वह एक दिन (में) सब प्रकार के भोगों का उपभोग किया करता और अपार आहार किया करता। १६। (इधर) विभीषण ने भगवान् विष्णु की आराधना की। उससे मुरारि (विष्णु) प्रसन्न हो गये। उसके ध्यान में आकर वैकुण्ठनाथ (विष्णु) ने उसे अपने सुन्दर दर्शन दिये। १७। तब उसने भक्ति की याचना की; (क्योंकि) वह तो निर्मल मन से उनकी भक्ति करता था। उस समय आकाशवाणी हो गयी—'सुनो हे असुरी के पुत्र, पुरुषोत्तम भगवान् तुमसे प्रसन्न हो जाएँगे, (वे) तुम्हें अविचल राज्य देंगे'। (यह) वचन सुनकर विभीषण आनन्दित हो गया; (क्योंकि) उसका समस्त कार्य (तप) सफल हो गया। १८-१९। तदनन्तर रावण को बहुत असुर आ मिले (रावण के पक्ष में आ मिले)। उसने उनसे मित्रता का व्यवहार किया (सम्बन्ध स्थापित किया)। सब राक्षस पाताल में से आ गये। उन (राक्षसों की संख्या) का कोई पारावार नहीं था। २०। (तत्पश्चात्) रावण ने कुबेर के साथ युद्ध (शुरू) किया। (युद्ध करते-करते) बहुत दिन बीत गये। (फिर भी) लंका (उसके) हाथ नहीं आयी; तो उसने मन में

पितानी पासे पत्र लखाव्यो, जोरावरी तेणीवार जी,
'लंका आपजे रावणने, ना रहीश नगर मोझार जी'। २२।
कागळ तेह कुबेरे वांच्यो, लेई चढाव्यो शीश जी,
आज्ञा पितानी पाळी पोते, ना धरी मनमां रीस जी। २३।
संपत्ति सरव पोतानी लीधी, त्रियापुत्र परिवार जी,
पुष्पक वैमान भरीने चाल्यो, ब्रह्मसदन मोझार जी। २४।
वात कही विधि आगळ सरवे, दशमुखनुं वरतांत जी,
कुबेर कर जोडीने ऊभो, दीन थई बळवंत जी। २५।
(त्यारे) प्रसन्न थया परमेष्ठी पोते, नगर रच्युं निरवाण जी,
हिमाचळनी पासे सुंदर, अलकापुरी ते जाण जी। २६।
कुबेरने ते नगरी आपी, मनवांच्छित सहु भोग जी,
देवने दुर्लभ सरवे पदारथ, नहि व्याधि ने रोग जी। २७।
(त्यारे) कुंभकरण विभीषणने रावण, वसिया लंकामांहे जी,
ठाम-ठामथी दानव बळिया, आवी मळिया त्यांहे जी। २८।
प्रहस्त महोदर विद्युतजीभ्या, वज्रदंष्ट्री कहेवाय जी,
विरूपाक्ष खर दुखर त्रिशिरा, माल्यवंत महाकाय जी। २९।

(यह) बात सोची। २१। (और उसके अनुसार अपने) पिता (विश्वश्रवा) से (कुबेर को ऐसा) पत्र लिखाया (क्योंकि) उस समय वह ज़ोरों पर (बलशाली हो गया) था। 'तुम रावण को लंका दे दो और उस नगरी में न रहो।' २२। (कुबेर ने) उस पत्र को मस्तक पर चढ़ाकर (अर्थात् बहुत आदर पूर्वक) पढ़ा। उसने पिता की आज्ञा पालन किया; मन में क्रोध (या असन्तोष) नहीं रक्खा (किया)। २३। अपनी सारी सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र-परिवार लेकर उसे पुष्पक विमान में भरकर वह (कुबेर) ब्रह्माजी के घर (की ओर) चला। २४। सारी बात रावण का वृत्तान्त उसने सब विधाता के सामने कह दिया। बलवान् होने पर भी दीन होकर कुबेर हाथ जोड़कर खड़ा रहा। २५। तब परमेष्ठी ब्रह्मा प्रसन्न हो गये और उन्होंने स्वयं हिमालय के पास एक सुन्दर नगर का निर्माण किया। उसे (ही) अलकावती नगरी समझो। २६ और वह नगरी उन्होंने कुबेर को प्रदान की। सब मनोवाञ्छित भोग (भोग्य पदार्थ) तथा देवों के लिए भी जो दुर्लभ हैं ऐसे सब (अन्य) पदार्थ उसे दिये। उसे न व्याधि (दी) थी, न रोग। २७। तब कुम्भकर्ण, विभीषण और रावण लंका में निवास करते थे। स्थान-स्थान के बलवान् दानव आकर उन्हें (उनके पक्ष में) आ मिले। २८। प्रहस्त, महोदर, विद्युज्जिह्व, वज्रदंष्ट्री

मत्त महामत्त विद्युतमाली, जंबुमाली बळवान जी,
बळ महाबळ शुक सारण आदे, ए रावणना प्रधान जी । ३० ।
मयनामानी कन्या सुंदर, मंदोदरी तेनुं नाम जी,
ते रावणने परणावी प्रीते, साधवी पूरणकाम जी । ३१ ,
बळी राजाना कुटुंबनी कन्या दीर्घज्वाळा कहेवाय जी,
कुंभकरणने ते परणावी, दीसंती महाकाय जी । ३२ ।
गांधर्व कन्या शरमा नामे, विभीषण परण्या तेह जी,
लंकापुरीमां राज करे छे, रावण बळियो जेह जी । ३३ ।
अनेक कन्या लाव्यो दशानन, हरण करी निरधार जी,
देव दानवी मानव पन्नगी, यक्ष गांधर्वी नार जी । ३४ ।
लक्ष पुत्र थया रावणने, लक्ष तेहना तंन जी,
मेघनाद ते सहुथी मोटो, पाटवीपुत्र रतंन जी । ३५ ।
ते शेषनागनी कन्या परण्यो, पतिव्रता कहेवाय जी,
सुलोचना एवुं नामज लेतां, पापी पावन थाय जी । ३६ ।
सहु परिवारे पनोते रावण, लक्ष्मीवैभव पूर जी,
सरव दिशा जीती वश कीधी, एवो बळियो शूर जी । ३७ ।

कहानेवाले (नामक राक्षस), विरूपाक्ष, खर, दूषण, त्रिशिरा, माल्यवान् महाकाय, मत्त, महामत्त, विद्युन्माली, बलशाली जम्बुमाली, बल, महाबल, शुक, सारण आदि राक्षस—ये रावण के प्रधान थे । ३० । मय नामक दानव के एक सुन्दर कन्या थी । उसका नाम मन्दोदरी था । उस (मय) ने रावण के साथ उसका विवाह कराया । (पति के) प्रेम से वह पूर्णकाम सिद्ध हो गयी । ३१ । बलीराजा के परिवार की एक कन्या दीर्घज्वाला कहाती थी । वह देखने में महाकाय थी । उसे कुम्भकर्ण को विवाह में दे दिया गया । ३२ । सरमा नामक एक गन्धर्व-कन्या से विभीषण ने विवाह किया । अब लंकापुरी में बलवान् रावण राज्य कर रहा है । ३३ । दशमुख रावण निश्चय ही अनेक कन्याओं को अपहरण कर लाया । वे देव, दानव, मनुष्य, पन्नग (सर्प), यक्ष, गन्धर्व स्त्रियाँ थीं । ३४ । रावण के एक लाख पुत्र (उत्पन्न) हो गये ।—उनके लाखों पुत्र हो गये । रावण के पुत्रों में मेघनाद सबसे बड़ा (ज्येष्ठ) था । वह युवराज रत्न था । ३५ । उसने शेषनाग की पतिव्रता कहानेवाली कन्या से विवाह किया । सुलोचना नामक उस कन्या का नाम ही लेने पर पापी पवित्र हो जाता है । ३६ । बाल-बच्चों सहित रावण का समूचा परिवार धन-वैभव से भरा-पूरा (सम्पन्न) था । उसने सब दिशाओं को जीतकर

वलण (तर्ज़ बदल कर)

असुर वळियो दशानन ते, कोण जीत्यो नव जाय रे;
हवे रावणे दिग्विजे कीधो, तेनी कहुं कथाय रे। ३८।

अपने वश में कर लिया। ऐसा वह बलवान एवं शूर था। ३७।

दशानन रावण बलवान् राक्षस था। उससे कौन जीता नहीं जाता? अब रावण ने दिग्विजय की—उसकी कथा मैं कहता हूँ। ३८।

* * *

अध्याय—५ (रावण-दिग्विजय-मानापमान)

राग शामेरी

दिग्विजे करियो रावणे, जीत्या सकळ भूपाळ,
निज बाहुबळथी वश कर्युं, तेणे स्वर्ग ने पाताळ। १।
आसुरी सेना अति घणी, कहेतां न आवे अंत,
अष्टादश अक्षौहिणी, वाजे सैन्यमां वाजित्र। २।
छेदवा लाग्यो पंख गिरिनी, सुरपति जेणी वार
केटलाक परवत रावण शरणे, आव्या तेणी वार। ३।
मेघनाद चढियो जुद्धे, रावण तणो कुमार,
ते इंद्र साथे आथडयो, जुद्ध कर्युं सत्तर वार। ४।
इंद्र ने जीत्यो ते माटे, इंद्रजित पडियुं नाम,
मघवापति ने बांधीने, नाख्यो कारागृह ठाम। ५।
ब्रह्माए छोडावियो, ते विनय करी बहु पेर,
ते दिवसथी सेवा करे, सुर रह्या रावण घेर। ६।

अध्याय—५ (रावण-दिग्विजय-मानापमान)

रावण ने दिग्विजय की; समस्त राजाओं को जीत लिया। उसने अपने बाहुबल से स्वर्ग और पाताल को अपने अधीन कर लिया। १। राक्षसों की सेना बहुत बड़ी थी, उसका अन्त कहने में नहीं आ सकता (वह कितनी बड़ी थी, यह नहीं कहा जा सकता)। (हाँ कहो—) वह अठारह अक्षौहिणी थी और उसमें (अनगिनत) वाद्य बजते थे। २। जिस समय इन्द्र पर्वतों के पंख काटने लगा, तब कितने ही (असंख्य) पर्वत रावण की शरण में आ गये। ३। रावण के पुत्र मेघनाद ने युद्ध के लिए (इन्द्र पर) आक्रमण किया। उसने इन्द्र के साथ युद्ध किया—वह उससे सत्रह बार लड़ा। ४। उसने इन्द्र को जीता, इसलिए उसका नाम 'इन्द्रजित्' पड़ गया। उसने इन्द्र को बाँधकर त्वरित कारागृह में डाल दिया। ५।

श्री रंगनाथ रामायणमु

(तॅलुगु द्विपद काव्य)

मूल:

गोन बुद्धारेड्डी

देवनागरी लिप्यन्तरण तथा अनुवाद:

डॉ० भीमसेन 'निर्मल' एम० ए०, पीएच्० डी०

प्र० उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

प्रकाशकीय

श्री भण्डारम भीमसेन जोस्युलु साहित्य-जगत् में भीमसेन 'निर्मल' के नाम से प्रख्यात हैं। एम. ए., पीएच्. डी. (हिन्दी), एम. ए. (तॅलुगु), राष्ट्रभाषा-प्रवीण, हिन्दी-प्रचारक, साहित्य-रत्न, साहित्यसुधाकर आदि विभिन्न उपाधियों से समलंकृत इन विद्वान् का जन्म ३० नवंबर, १९३० ई० में मेदक (आन्ध्र) में हुआ। तॅलुगु तथा हिन्दी के अनेक ग्रंथों के सफल अनुवादक, नाटककार, कवि, निबन्धकार—इस प्रकार राष्ट्र-भाषा हिन्दी तथा आन्ध्र-भाषा तॅलुगु के समानरूपेण अनन्य सेवी और राष्ट्र की भावनात्मक एकता के लिए सतत प्रयत्नशील इन विभूति के द्वारा आज कल रामचरितमानस के सन् १८५० ई० के पूर्व रचित तॅलुगु-अनुवाद का सम्पादन हो रहा है।

'भुवन वाणी ट्रस्ट', लखनऊ के माध्यम से राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत गत बाईस वर्षीय विविध भाषाओं के हिन्दी अनुवाद सहित देवनागरी लिप्यन्तरण के विशाल कार्यक्रम में तॅलुगु के प्रसिद्ध ग्रन्थ 'रंगनाथ-रामायण' का हिन्दी अनुवाद सहित देवनागरी लिप्यन्तरण का भार इन्हीं विद्वान् ने अपने ऊपर लिया है।

श्री रंगनाथ रामायण तथा तॅलुगु भाषा के सम्बन्ध में श्री निर्मल की लेखनी से निःसृत विवरण आगे दिया जा रहा है। आशा है इस विवरण तथा आरंभ में दिये हुए 'तॅलुगु-देवनागरी' वर्णमाला चार्ट की सहायता से अखिल राष्ट्र के रसज्ञ पाठक तॅलुगु भाषा और उसके अनुपम काव्य द्वारा रामचारितामृत का सरलता से रसास्वादन कर सकेंगे।

—नन्दकुमार अवस्थी

—सम्पादक

अनुवादक एवं लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य

१—रंगनाथ रामायण

श्रीराम की कथा परम पवित्र है। उस पवित्र गाथा को लेकर तॅलुगु भाषा में अनेक काव्य, नाटक, गेयपद, यक्षगान आदि रचे गए हैं। उन सब में रंगनाथ रामायण का अपना विशिष्ट स्थान है। यह तॅलुगु के अपने देशी छन्द 'द्विपद' में लिखा गया है जो गाये जाने के अत्यन्त अनुकूल है।

रंगनाथ रामायण के कर्ता (लेखक) तथा समय के बारे में विभिन्न मत हैं। फिर भी अन्तःसाक्ष्य के आधार पर गोन बुद्ध भूपति इस काव्य के कवि माने जाते हैं। इन्हें रेड्डीवंशज और इनका जन्म सन् १२७० ई० माना जाता है। विद्वानों के मत से इस काव्य का रचनाकाल सन् १३१० अथवा १३२० ई० है। जो हो, रंगनाथ रामायण को अधिकतर विद्वान् चौदहवीं शताब्दी के अन्तिम दशकों की रचना मानते हैं। रंगनाथ रामायण का उत्तरकांड बुद्ध भूपति के पुत्रों द्वारा रचा गया है।

इस काव्य का 'रंगनाथ रामायण' के नाम से प्रचलित होने का कोई कारण उपलब्ध नहीं है। इस काव्य की अनेक पांडुलिपियों का संकलन कर, शुद्ध पाठ के निर्णय करने का कार्य, सर सी० पी० ब्राउन महोदय ने सन् १८४० ई० में किया था। उनका कथन है कि This translation of the Ramayana is always attributed to a poet named Ranganatha, but his name is nowhere mentioned in the book; while it is asserted in each volume that the author was Budha Raj, who wrote it at the desire of his father Vithal Raj.....This Ramayana is vulgarly attributed to Ranganatha; but I can not discover the reason. अस्तु,

रंगनाथ रामायण यद्यपि वाल्मीकि रामायण के आधार पर रचा गया है किन्तु इस काव्य में कई अवाल्मीकीय प्रसंग हैं। पता नहीं इस काव्य के लेखक ने वाल्मीकि रामायण की किस प्रति को अपना आधार बनाया था।

यह काव्य तॅलुगु के द्विपद काव्यों में श्रेष्ठ माना जाता है। शैली, अर्थ-गाम्भीर्य, शब्द और अर्थालंकार के प्रयोग, रस और भाव के अनुकूल रचनाशिल्प में यह काव्य अनुपम है। संस्कृत के साथ तॅलुगु पर कवि का समान अधिकार है। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि इस काव्य में प्रसंगानुकूल रसभरे वर्णन प्रचुरमात्रा में हैं।

२—तॅलुगुभाषा और लिपि

तॅलुगु मूलतः द्राविड़ भाषा-परिवार से सम्बद्ध भाषा है, किन्तु वह संस्कृत से इतनी प्रभावित है कि कुछ विद्वान् उसे संस्कृत-जन्य ही मानते हैं। उत्तर और दक्षिण के सन्धिस्थल पर स्थित होने के कारण यह स्वाभाविक ही है कि तॅलुगु अथवा आन्ध्र भाषा संस्कृत भाषा तथा साहित्य से अत्यधिक प्रभावित हो जाय।

अन्य भारतीय भाषाओं के समान ही तॅलुगु ने भी नागरी-वर्णमाला को अपनाया है। किन्तु नागरी-वर्णमाला की अपेक्षा तॅलुगु में ॠ (दीर्घ), ह्रस्व ए (ऍ) और ह्रस्व ओ (ऑ), च और ज के दन्त्य रूप, घर्षण ध्वनि वाला र (ऱ) और ळ अधिक हैं।

Italian of the East मानी गई तॅलुगु की विशेषता 'अजन्त' (स्वरान्तता) होना है। अर्थात् प्रत्येक शब्द के अन्त में कोई न कोई स्वर (अधिकतर 'उ' या 'इ') होता है और उसका पूरा-पूरा उच्चारण होता है। शब्द के मध्य में आने वाले स्वर का भी पूरा-पूरा उच्चारण होता है। अतः नागरी लिपि में दिए गए तॅलुगु शब्दों को पढ़ते समय, उनके स्वरान्त ऊच्चारण पर अवश्य ध्यान रखना चाहिए। 'जल' लिखकर हिन्दी की भाँति उसे 'जल्' न पढ़कर 'ल' को सस्वर पढ़ना चाहिए।

'ॠ' का उच्चारण बहुधा 'रु' के समान होता है। यथा 'ॠण', 'कृष्ण', 'गृह' आदि का उच्चारण 'रुण', 'क्रुष्ण', 'ग्रुह' के समान होता है।

'ए' और 'ओ' के ह्रस्व रूप भी प्रचलित हैं। उनके लिए 'ऍ' और 'ऑ' तथा उनकी मात्राओं के लिए ॅ और ॉ का उपयोग किया गया है।

'ऌ' और 'ॡ' सिखाए तो जाते हैं पर उनका प्रयोग न के बराबर होता है।

'च' और 'ज' के दन्त्य और तालव्य दोनों प्रकार के उच्चराण तॅलुगु में विद्यमान हैं। दन्त्य उच्चारण को सूचित करने के लिए अक्षर के नीचे '.' चिह्न लगाया गया है।

तॅलुगु में सरल 'र' के अतिरिक्त घर्षण ध्वनि वाला 'ऱ' का भी प्रयोग होता है।

तॅलुगु में बहुधा 'थ' का उच्चारण 'ध' के समान किया जाता है। यथा 'रथमु को 'रधमु' और 'ग्रंथ' को 'ग्रंध' कहा जाता है। इसका कारण दोनों अक्षरों का रूपसाम्य माना जाता है।

संस्कृत के कई लकारान्त शब्दों में 'ल' के स्थान पर 'ळ' का प्रयोग होता है। यथा कला = कळा, मंगल = मंगळ, गरल = गरळ, मुरली = मुरळी, सरल = सरळ आदि।

तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के उच्चारण में अन्तर स्पष्ट है।

तॅलुगु के कुछ शब्दों में अर्धानुस्वार का प्रयोग होता है। यह उस स्थान पर प्राचीन काल में प्रयुक्त अनुस्वार का बचा हुआ रूप है। इसका न तो उच्चारण होता है, न आधुनिक काल में प्रयोग ही होता है। उस चिह्न को लिप्यन्तरण में छोड़ दिया गया है।

तॅलुगु में वर्गान्त अनुनासिक के स्थान पर सर्वथा अनुस्वार का ही प्रयोग किया जाता है। किन्तु देवनागरी लिप्यन्तरण में ह्रस्य ऍ और ऑ की मात्राओं के 'पश्चात्-अनुनासिक' को मुद्रण की सुविधा के लिए वर्गान्त अनुनासिक ढंग पर लिखना अपनाया गया है यथा रॅण्ट, रॅण्डु, बॉन्दुटयु आदि।

साधारणतया तॅलुगु के शब्द दीर्घान्त नहीं होते। अतः संस्कृत के दीर्घान्त शब्द तॅलुगु में ह्रस्वान्त रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। यथा पिता=पित, कमला=कमल, पार्वती=पार्वति, गौरी=गौरि, अपराधी=अपराधि आदि।

तॅलुगु वाक्य के मध्य में स्वर का कदापि प्रयोग नहीं होता। वह स्वर अपने से पूर्व के व्यंजन से जुड़ जाता है। बहुधा क, च, ट, त, प ये व्यंजन (इन्हें सरलाक्षर कहते हैं) ग, ज, ड, द, ब में बदल जाते हैं। इस नियम को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए। यथा कृत्य=गृत्य, प्रणव=ब्रणव, परिचित=बरिचित, चंड=जंड आदि।

कुछ शब्दों के अन्त में नकार (हलन्त) होता है। सन्धि के नियमों के अनुसार वह पश्चात्-स्वर में मिल जाता है। यथा, विदूरुन्+अकृत्रिम=विदूरुनकृत्रिम, अरुदुगान्+इन्द्रिय=अरुदुगानिन्द्रिय आदि।

संस्कृत के शतप्रतिशत शब्दों का प्रयोग तॅलुगु में होता है। हाँ, कुछ शब्दों के अर्थ हिन्दी से भिन्न हैं।

तॅलुगु काव्य में लंबे-लंबे समासों का प्रयोग बहुधा होता है। यह तॅलुगु की अपनी विशिष्टता है। 'समास-बहुला' भाषा है।

तॅलुगु के नागरी लिप्यन्तरण को पढ़ते समय उपरोक्त नियमों को ध्यान में रखने से, हिन्दी और तॅलुगु में भाषागत समानता के दर्शन होंगे।

देवनागरी लिप्यन्तरण में तॅलुगु द्विपद काव्य को दस-दस पंक्तियों में पाठकों की सुविधा के लिए बाँट कर १०, २०, ३०—इस प्रकार संख्या दे दी गई है। किन्तु किसी कथा-शीर्षक की समाप्ति पर यदि १० पंक्ति पूरी नहीं होतीं तो वहीं तक की संख्या उदाहरणार्थ १९, २९, १०३ आदि देकर अगले पंक्ति-विराम पर क्रमशः ३०, ४०, ११० संख्या ही अंकित की गई है।

इसी अनुसार अनुवाद में संख्या दी गई हैं। किन्तु संख्या-समाप्ति पर यदि विषय समाप्त नहीं हुआ है, तो संख्या के बाद नया पैरा — डैश से आरंभ किया गया है, जिसका आशय है कि विषय में नया पैरा अपने पूर्ववर्त्ती पैरा से संलग्न (जुड़ा हुआ) है। देखिए पृष्ठ ३०-३१।

—[*]—

श्रीराम-पञ्चायतन

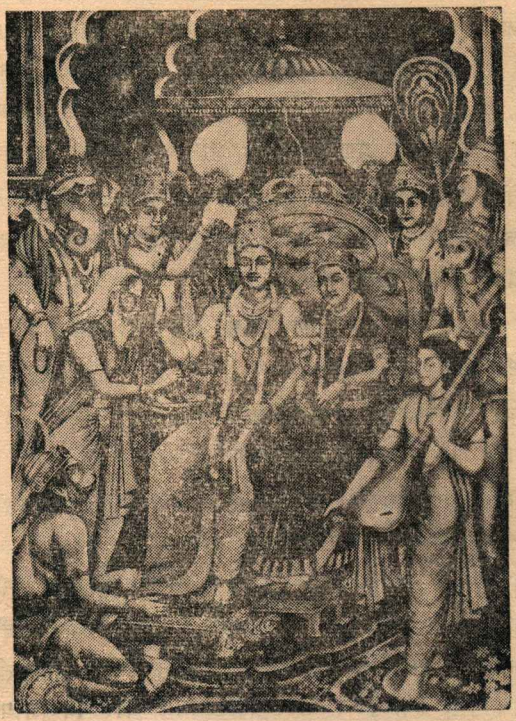

श्री रंगनाथ रामायणमु

बाल - काण्डमु

श्लोक ।। चरितं रघुनाथस्य शतकोटि प्रविस्तरम्,
एकैकमक्षरं प्रोक्तं महापातकनाशनम्,
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे,
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः ।।

देवतास्तुत्यादिकमु

श्री कामिनीनाथु, जितदैत्यनाथु । लोकरक्षणकृत्यु, लोकैकनित्यु
नित्यचिदानन्द निर्वाणकृत्यु । गृत्यविदूरु, नकृतिमाधारु
नाधारकमल - मध्यामोदभेद । साधनक्रमसमाचरण षट्चरणु
सिन्धुर वरदु, नाश्रितलोकबन्धु । बन्धमोचनु, बलिबन्धनोदग्रु
नारूढ - पंचाशदक्षर प्रसव । पारिजाताकारु, ब्रणवानुकारु
नग्राम्य - गोपिकाभ्यन्तरव्यग्रु । नग्रेसराकारु, नाकार रहितु
योगिमानस - लसदोंकारदीप्तु । योगसंदर्शिताभ्युदय - प्रचारु

श्री लक्ष्मीनाथ, राक्षस राजाओं को जीतने वाले, लोक-रक्षा को ही अपना कर्त्तव्य मानने वाले, लोकैकनित्य, सदा चिदानन्द से युक्त, मोक्षदायक, कर्मरहित, स्वयंभूत आधार, आधार-कमल के मध्यस्थित सुगंध के भेद (रहस्य) को जानने या प्राप्त करने की साधना के अनुष्ठान में भ्रमर समान, गजेन्द्र को मोक्ष देने वाले, आश्रित जनों के बन्धु, (संसार के) बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाले, बलि को बाँधने में दृढ़, वह पारिजात वृक्ष जिसपर पंचाशत अक्षर (वर्ण माला) रूपी प्रसून विकसित हुए हों, प्रणवस्वरूप, अग्राम्य गोपिकाओं के हृदय में विहार करने में व्यग्रचित्त वाले, अबोध-गम्य आकार वाले, निराकार, योगियों के मानस में स्थित ओंकार-रूप में दीप्त, योगियों से संदर्शित अभ्युदय के प्रचारक, श्रुतियों के सिरमौर,

श्रुतिशिरोभागविशुद्ध चैतन्यु । नतिलोकु, सर्वलोकाश्रयश्लोकु
नखिलांड मौक्तिकायत नित्यसूत्रु । नखिलतत्त्वातीतु, नाद्यन्तरहितु
नमलात्मु, नक्षरु, नाम्नायकमल । कमलाप्तु, नक्षीणकल्याणसदनु१०
शंकाविनिर्मुक्त - सद्भक्तवर्य । कैंकर्यवत्सलु, गारुण्यसिन्धु
बोधकुंडै वच्चि, बोध्यमै तोचि । बोधमै वीक्षिंचु पूर्णस्वरूपु
नादितत्त्वमु,'तत्त्वम' स्यादि वाक्य। भेदाति - रूपु, नभेद्यप्रतापु
गड्डुकॉनि नियतुलै कर्मबन्धमुलु ।गडचि, येकतमुन गदलक निलिचि
यरुदुगा निन्द्रिय व्याप्तुल मरचि । विरचितासनबद्ध विन्यासिलील
बरिचितासनमुन बदिलमै निलिचि। सरवितो मदिलोन सरसत निल्पि
वॅलय डॅब्बदि रॅण्डु वेल नाड्डुलनु ।गलय विवेकिंचि, कसटु वो दुडिचि
यॉक रॅडुं त्रोवल नॉकटिगा मॅलगि । यकलंकमतितोड नतिसूक्ष्ममुगनु
नवयवंबुलयंदु नानन्दमैन । पवनु निरोधिंचि, पश्चिमवीथि
जॉनिपि, कोणत्रय शुद्धि गविंचि ।मनसुतोडनॅकूड मरपिंचितॅच्चि२०
कुंडलिनिजशक्ति गूर्चि, संप्रीति ।नॉण्डॉण्ड गमलंबु लॉगि नारु गडचि

विशुद्ध-चैतन्य स्वरूप वाले, अलौकिक, समस्त लोकों के आश्रयस्वरूप, (पुण्य) श्लोक, अखिलांड रूपी मुक्ता के आयतन, नित्यसूत्र, अखिल तत्त्वों से अतीत, आदि एवं अन्त-रहित, निर्मल-आत्मा, अनश्वर, वेदरूपी कमल के लिए सूर्य सम, अक्षीण कल्याणों के आकर, ।। १० ।।

—शंकाओं से विमुक्त सद्भक्त श्रेष्ठों की सेवाओं के कारण वात्सल्य-भाव से पूर्ण, करुणा-सिन्धु, बोधक, बोध्य तथा बोध—इन तीनों रूपों में अभिव्यक्त पूर्ण-स्वरूप वाले, आदि तत्त्व, 'तत्त्वमसि' आदि वाक्यों के अनुसार भेदातीत रूप वाले, अभेद्य, प्रताप से युक्त परमात्मा का (भक्ति-भाव से ध्यान करने के लिए) निष्ठा से नियमों का पालन कर, कर्म के बन्धनों को पारकर, एकान्त में स्थिर भाव से रहकर, इन्द्रिय-व्यापारों को भुलाकर, योगासन में सुस्थिर होकर परिचित आसन में स्थित (अचंचल) रहकर, मन को सरस (भक्तिरसपूर्ण) बनाकर, (शरीर के भीतर की) बहत्तर नाड़ियों का विवेकपूर्ण विचार कर, उनका परिमार्जन कर, दोनों मार्गों (इड़ा और पिंगला) को एक बनाकर, अकलंक मति से, अवयवों में अतिसूक्ष्म हो आनन्द-रूप से व्याप्त पवन का निरोध कर, (उसे) पश्चिम वीथि (ऊपर) की ओर लगाकर, कोण-त्रय (त्रिकुटी अथवा मूलाधार) की शुद्धि कर, मन के साथ ही उसे लाकर, ।। २० ।।

—कुंडलिनी को अपनी शक्ति से संयुक्त बनाकर, सम्यक् आह्लाद से क्रम शः षट्कमलों को पार कर, उस (प्राण-पवन) को चन्द्र-मण्डल में पहुँचाया।

यट जन्द्रमंडलंबल्लन जेर्चि । यट बरम व्योममै तम्मु मऱचु परमयोगीन्द्रुल भावम्मुकीलु । परिकिंप दानैन ब्रह्मस्वरूप मॉगि रॅण्ट बॅरयक मूट नेर्पडक । तगिलि नाल्गव त्रोव तत्त्वमैयुंडि यैदिटिकादियै, यारिटि गडचि । यादिकिनादियै यमरिन देवु दनुतरनिर्मलान्तर्नाडि यूप । मनुरूपमगु मनं बाबद्धपशुवु निष्ठाभिरति वेदि,निखिलेंद्रियमुलु। काष्ठमु, बोधमखंडपावकुडु योगामृतमु घृतमुज्ज्वलानन्द । योगंबु फलमुगा, नॉगि जॅल्लुचुन्न यभिमतान्तर्य नित्यामोद कर्म । विभवंबु कडपट विलसिल्लु परमु बरमेशु, नव्ययु, बरमकल्याणु । बरमात्मु, नपरोक्षु,ब्रक्षीणकर्मु३० मादेवु, गमलाक्षु, मम्मेलु देवु । नादिनारायणु, नखिल लोकेशु भाविंचि,कीर्तिंचि,प्रार्थिंचि,स्रॉक्कि। सेविंचि, यभिमतसिद्धि गाविंप हार कर्पूर नीहार गोक्षीर । तारकाकृति शारदादेवि गॉलिचि, चारु रामायण चन्द्राब्धि यगुचु ।वारक विलसिल्लु वाल्मीकिदलचि भारतमंजरी पारिजातम्बु । सारमानसु बराशरसूनु गॉलिचि,

---

वहाँ परम-शून्य बनकर, अपने आपको (परमात्मा में लीन होकर अपने अस्तित्व को) भूलने वाले परमयोगियों के हृदय के रहस्य को परखने के लिए स्थित ब्रह्मस्वरूप जो दो (प्रकृति-पुरुष अथवा द्यावा-पृथ्वी) में न समाते हुए, तीन (त्रिगुण अथवा उत्पत्ति, स्थिति, लय) में सम्बद्ध न होकर, चतुर्थ (तुरीय) तत्त्व रूप होकर, पाँच (महाभूतों) का आदि होकर, छः (षड्-ऊर्मियों) को पार कर, ऐसे परमात्मा का जो आदि का आदि है (ध्यान करूँगा) । अत्यन्त निर्मल अन्तर-नाड़ी को यूपस्तम्भ, अनुरूप मन को (उस यूपस्तम्भ से बंधे) यज्ञपशु, निष्ठा के प्रति अभिरक्ति को (बलि) वेदी, समस्त इन्द्रियों को काष्ठ, बोध (ज्ञान) को अखण्ड पावक, योगामृत को घृत और उज्ज्वल आनन्द (योग) को ही फल मानते हुए, अपने अन्तर के इच्छित नित्य-आनन्द की प्राप्ति के अनुकूल कर्मों की पराकाष्ठा के रूप में शोभित (मोक्षरूपी) परम, परमेश्वर, अव्यय, परमकल्याण-प्रद परमात्मा, अगोचर, कर्मरहित, ।। ३० ।।

—अपने भगवान्, कमलनेत्र, हमारे पालनहार, आदिनारायण, तथा अखिल लोकेश की भावना कर, प्रशंसा कर, प्रार्थना कर, वन्दना कर, सेवा कर अपने अभिमत (इच्छा) की पूर्ति करने के लिए हार, कर्पूर, नीहार, गोक्षीर तथा तारकों के सदृश (श्वेतवर्ण वाली) शारदा देवी की अर्चना कर, चारु-रामायण रूपी चन्द्र के जन्मस्थान के रूप में विलसित होने वाले वाल्मीकि का स्मरण कर, (महा) भारत-रूपी मञ्जरी के

यतनि तनूभवु ना शुकब्रह्म । नतिभक्तियुक्तिमै नभिनुति चेसि,
ये कथ सॆप्पिन नॆल्ल सज्जनुलु । सेकॊनि कीर्तनल् सेयुचु नुंदु;
रे कथ सॆप्पिन निहपरोन्नतुलु । प्राकटंबुग बेर्चिफलयिंचु व्रीति;
ने कथ सॆप्पिन नीप्सितार्थमुल ।गैकॊनि पुण्यमुल् गडगि कान्पिञ्चु
ननु विचारमुलु ना यंतरंगमुन ।गॊनकॊनि कृतिसेय गोरुचुन्नंत; ४०

ग्रन्थरचनकु गारणमु

श्रीरमणीयुलै कृष्टिसत्तमुलु । गोरि वर्णनसेयु गोनवंशमुन
फलित सदाचार भानुडै तोचि । कलिकालदोषान्धकारंबु द्रोलि,
गुरुधर्मपथमुल कॊलदुलु दॆलिसि । परनृपनक्षत्रपंक्तुल नणचि,
नित्यपुण्योदयनियति बॆम्पॊन्दु । नत्युन्नत - प्रतापाभिरामुनकु
गरदीप्तिनिजखड्ग गंगाप्रवाह । परधरणीपाल फालाक्षरमुल
गलपूर्वगर्वपंकमु लॊप्पगडुगु । नलवुमै नसमानुडगु सत्यनिधिकि
शरणार्थि राजन्यषट्पदाधार । करपद्मुनकु गोनकाटभूपतिकि,

पारिजात एवं सारमानस (तत्त्ववेत्ता) पराशर-पुत्र (वेदव्यास जी) का ध्यान कर, उनके पुत्र शुकदेव की बड़ी भक्ति से स्तुति कर (ने के बाद), किस कथा के कहने से सभी सज्जन मेरा कीर्तिगान करेंगे, किस कथा के कहने से इहलोक और परलोक दोनों ही प्रकट रूप से, प्रीतियुक्त रूप से, सफल होंगे, किस कथा के कहने से इच्छित अर्थ (कामनाएँ) सिद्ध होंगे और साथ ही साथ पुण्य भी प्राप्त होगा—ऐसे विचार मेरे अन्तरंग में उठ रहे थे और मैं किसी कृति (ग्रन्थ) की रचना करना चाह रहा था, उस समय—॥ ४० ॥

ग्रन्थ रचना का कारण

—श्री (शोभा) से (संयुक्त होने से) रमणीय, तथा पंडितगण जिस गोनवंश का, सानन्द वर्णन करते हैं, उस गोनवंश में सदाचार के पुण्य के फलस्वरूप सूर्य के समान प्रतिभासित होकर, कलिकाल के दोषरूपी अन्धकार को दूर कर, श्रेष्ठ धर्मपथ के महत्त्व को जानकर, शत्रुराजा-रूपी नक्षत्र-पंक्तियों को तेजोहीन कर, नित्य पुण्योदय की नियति को विस्तृत करने वाले, अत्युन्नत प्रताप से अभिराम तथा कर में दीप्तिमान निज खड्ग के गंगाप्रवाह से अन्य राजाओं के फालभाग में लिखित पूर्व-गर्व-पंक को धो डालने वाले, दृढ़ एवं अद्वितीय बलशाली, सत्यनिष्ठा वाले, शरण में आने वाले राजा-रूपी भ्रमरों के लिए आधारभूत करपद्म वाले तथा नित्य नय, विनय तथा दया का आगार

नय नयोदय दयायत नित्यमतिकि । ब्रियतनूजन्मुडै पृथिवि बॅम्पॉन्दु
रुद्र प्रतापुंडु रुद्रनिर्मलुडु । रुद्रात्मुडगु गोन रुद्र नरेंद्रु
पौत्रु, डभंगु, डप्रतिम विक्रमुडु । गोत्रधीरुडु, कुलगोत्रवर्धनुडु ५०
दिविजेन्द्रविभवुंडु, धीरवर्तनुडु । भुवनविख्यातुंडु, बुद्धभूपालु
ननुजन्मु, डक्षीणदाक्षिण्यधनुडु । धनधान्यधनदुंडु, धर्मधर्मजुडु
अतिपुण्य सौजन्यु, डरिभीमजन्यु । डतिशौर्यशरजन्मु, डाजन्मशुभुडु
कामिनीकामु, डखंडविक्रमुडु । रामत्रयोदार रणविशारदुडु
चन्दनमन्दार चन्द्रिकाहार । कन्दळत्कुन्देंदु घनकीर्तिधनुडु
परगु गोनान्वयपारिजातमुन । बरिपक्वफलरीति बरगिनवाडु
पॉलुचु गोनान्वयपूर्वाद्रियंदु । वॅलयु भानुडु वोले विलसिल्लुवाडु
दॉरयु गोनान्वयदुग्धांबुराशि । बरिपूर्णचन्द्रुडै भासिल्लुवाडु
निक्कि यंतंतकु निर्मलंबगुचु । दिक्कुल दन पेर्मि दीपिंचुवाडु
दानधर्म - क्रियातात्पर्यकेळि । दानयै विनतुल दनरारुवाडु ६०
मगटिमि नसमानमहिम दीपिंप । बगतुर् नवलील भंजिचुवाडु
बलितोग्रराजन्य बलवज्रपाणि । ललिनॉप्पु वासवु ललिबोलुवाडु

सदृश मति वाले, गोन (वंशज) काटभूपति के प्रिय और पृथ्वीवल्लभ-सुवन (महाराज) गोन रुद्रनरेन्द्र रुद्रप्रताप, रुद्रनिर्मल, रुद्रात्म, अभंग, अप्रतिभ विक्रमवाले, गोत्रधीर (पर्वतसमान धैर्यशाली) [आदि उपाधियों से विभूषित थे।] उनके पौत्र तथा बुद्धभूपाल के पुत्र [महाराज विट्ठलनरेश थे।] ॥५०॥ —कुल और गोत्र के संवर्द्धक, देवेन्द्र के समान वैभव वाले, धीर, भुवनविख्यात, अक्षीण-दाक्षिण्य-धनी (अक्षीण कृपा के धनी), धन-धान्य में कुबेर, धर्म (-निर्वाह) में धर्मराज (युधिष्ठिर), अतिपुण्य-सौजन्य-शीलवान, शत्रुओं के लिए अति भयंकर, शौर्य के अतिशय में कुमार कार्त्तिकेय, जन्म से शुभ (कल्याण) करने वाले, कामिनियों के लिए कामदेव, अखंड विक्रमी, परशुराम, राम और बलराम के समान रण-विशारद, चन्दन, मन्दार, चन्द्रिका, हार, कुन्द, इन्दु सम उज्ज्वल धनकीर्ति के धनी, गोन-वंश-रूपी पारिजात के परिपक्व फल स्वरूप शोभित, शोभायुक्त गोनवंश-रूपी पूर्वाद्रि पर भानु-समान प्रकाशित, गोनवंश-रूपी क्षीरसागर के लिए परिपूर्ण चन्द्र के समान प्रतिभासित, अत्युच्च एवं क्रमशः निर्मल बननेवाली अपनी कीर्ति को दसों दिशाओं में व्याप्त करने वाले, अपने दान-धर्म आदि क्रियाओं की प्रचुरता के कारण सबकी प्रशंसाएँ प्राप्त करने वाले, ॥ ६० ॥ —पौरुष में असमान दीप्ति से और सरलता से शत्रुओं का नाश करने वाले, बली एवं उग्र राजाओं के लिए वज्रपाणि (इन्द्र) के समान दीखने वाले,

प्रत्यक्ष नृपवनपावकोज्ज्वलुडु । सत्यंबुचेतनु सरिदगुवाडु
बलवदुग्रारांति बलसमुदमुल । गलचुचो मंथाद्रिगति बेचुवाडु
विमलोग्रराजन्य विपुलान्धकार । कमलाप्तबिंब खड्ग प्रभाविभव
विलसितामरवधू विमलास्यकमल। मुल वीरमधुकरंबुल गूर्चुवाडु
अरिनृपप्राणानिलाहारभुजग । वरभुजस्थापितावनि गलवाडु
कुरुकेरळावन्ति कुन्तल द्रविळ । मरुमत्स्यककरूश मगध पुळिंद
सरस सुपांड्य कोसल बर्बरमुल । नरनाथसभल वर्णनकॅक्कुवाडु
आतत सामभेदादुल नॉप्पु । नीतिक्रमंबुल नॅगडॅडुवडु ७०
रमणमै नादिमराजन्यरीति । नमितवैभवमुल नमरिनवाडु
विनयनयोपाय विजयसुस्थिरुडु । घनकीर्ति विट्ठल क्ष्मापालवरुडु
राजसर्वज्ञुंडु राजसिंहुंडु । राजशिरोमणि, राजपूजितुडु
सकल जगद्धित चातुर्यधुर्युं । डॉकनडु कॉलुवुन नुन्नतुंडगुचु
बहुपुराणज्ञुलु बहुशास्त्रविदुलु । बहुकाव्यनाटक प्रौढमानसुलु
हितुलु मन्त्रुलु पुरोहितुलु नाश्रितुलु। सुतुलु राजुलु बहुश्रुतुलनु गॉल्व

उत्साह से युक्त, सौन्दर्य में देवेन्द्र के समान विराजमान, प्रत्यक्ष नृपवन के लिए पावक के समान उज्ज्वल, सत्यनिष्ठ, बलशाली एवं उग्र शत्रुसेना-रूपी समुद्रों को मथने में मंदर पर्वत का रूप धारण करने वाले, विमल उग्र राजाओं के विपुल (गर्वरूपी) अन्धकार के लिए कमलाप्त (सूर्य) बिम्ब के समान, अपने खड्ग की प्रभा से प्राप्त शोभायमान देवाङ्गनाओं के विमल मुखकमलों को (अपने हाथ रूपी) वीर मधुकरों से अलंकृत करने वाले, शत्रुओं के प्राण-रूपी अनिल का सेवन करने वाले श्रेष्ठ भुजरूपी भुजंगों (सर्परूपी भुजाओं) पर राज्य-भार वहन करने वाले, कुरु, केरल, अवन्ती, कुन्तल, द्रविड़, मरु, मत्स्यक, करूश, मगध, पुलिन्द, सरस, सुपांड्य, कोसल, बर्बर (देशों) की राजसभाओं में प्रशंसाएँ प्राप्त करने वाले, साम (दाम) भेद आदि से युक्त अत्यधिक नीतिक्रम से सुशोभित, ॥ ७० ॥

—प्राचीन वैभववान राजाओं के समान अमित वैभवों से युक्त, नय, विनय आदि उपायों से अपनी विजय को सुस्थिर करने वाले, धनकीर्तियुक्त (यही महाराज) विट्ठल नरेश, (जो) राजाओं में सर्वज्ञ, राजसिंह, राजशिरोमणि, राजपूजित एवं सकल-जगद्धित चातुर्यधुरीण (हैं), एक समय (अपनी) राज-सभा में विराजमान थे। (उस समय) बहुपुराणों को जानने वाले, बहुशास्त्रविद्, बहुकाव्य-नाटकों (के अध्ययन) से प्रौढ मन वाले, हितू, मंत्री, पुरोहित, आश्रित, पुत्र, (सामंत) राजा और बहुश्रुत (व्यक्ति)

दीपिंचि भूलोक देवेंद्रु पगिदि । नेपारियुन्नचो निंपु सॉम्पॉन्द
रसिकुलु भारतरामायणादि । रसगोष्ठि जॅल्लिप रसिकशेखरुडु
रामकथासुधारस रक्तुडगुचु । नामहासभलोन नंदर जूचि
रमणमै दॅनुगुन रामायणंबु ।क्रममॉप्पजॅप्पॅडिघनकाव्यशक्ति८०
गलकवुलॅव्वारु गलरुर्विननुचु । तलपोय विठ्ठल धरणिपालुनुकु
नुन्नतमूर्तिकि नुर्वियशोनिधिकि ।विन्नविंचिरि वेड्क विबुधुलुगडिगि
नी तनूजन्मुंडु निपुणमानसुडु । धूतकल्मषुडु बंधुरनीतियुतुडु
सर्वज्ञुडनघुंडु चतुरवर्तनुडु । सर्वपुराण विचार तत्परुडु
कमनीय बहुकळाविचक्षणुडु । सुमनीषि पोषणोत्सुकोन्नतुडु
कविसार्वभौमुंडु कविकल्पतरुवु । कविलोकभोजुंडु कविपुरंदरुडु
प्रत्यर्थिराजन्य बलवज्रपाणि । प्रत्यर्थिनृपदावपावकोज्ज्वलुडु
भीकरनिजखड्ग बिंबित स्वर्ग । लोकानुरक्त त्रिलोक दुर्दमुडु
वरसाधुजलजात वनजातहितुडु । पुरुषचिन्तामणि बुद्धयाह्वयुडु
नीकतिभक्तुंडु निखिलशब्दार्थ । पाकज्ञुडत्यन्त पांडित्य धनुडु ९०

उनकी सेवा में उपस्थित थे। (राजा) भूलोक के देवेन्द्र के समान बड़े उत्साह से दीप्त थे। सभा मनोरम बनी हुई थी। रसिक जनों द्वारा भारत, रामायण आदि की रसगोष्ठी में रस को जान सकने वाले वह रसिकशेखर (राजा) रामकथा-सुधा के प्रति अनुरक्त होकर, उस महासभा में उपस्थित सभी को देखकर यों बोले, 'सुन्दर ढंग से तॅनुगु (तॅलुगु) में रामायण (की कथा) को क्रम से कहने की उत्तम कविता-शक्ति— ॥ ८० ॥

—रखने वाला कवि इस संसार में कौन है ?' तब ऐसा सोचने वाले उस उन्नतमूर्ति वाले तथा महायशोनिधि विठ्ठल नरेश से विबुधों ने (इस प्रकार) सोत्साह विनति की—'(हे महाराज !) आपके पुत्र, निपुण मन वाले, पापरहित, अति नीतियुक्त, सर्वज्ञ, अनघ, चतुरवर्तन (व्यवहार) से युक्त (शिष्टाचार-सम्पन्न), सर्वपुराणों के ज्ञाता, अनेक सुन्दर कलाओं तथा आगमों के मर्मज्ञ, सुमनीषियों का पोषण करने में उत्सुक तथा उसी में उन्नत सुख का अनुभव करने वाले, कवि-सार्वभौम, कवि-कल्पतरु, कवि-कुलभोज, कवीन्द्र, शत्रु राजाओं के लिए वज्रपाणि, शत्रुराजारूपी वन के लिए प्रचंड पावक, (अपने) भयंकर खड्ग में प्रतिबिम्बत स्वर्ग वाले (जिनका खड्ग शत्रुओं को स्वर्ग का मार्ग बताता है), लोकप्रिय, त्रिलोकदुर्दम, श्रेष्ठ साधुजन-रूपी कमल (समूह) के लिए सूर्यसम, पुरुषश्रेष्ठ, आपके परमभक्त, निखिल शब्द, अर्थ, [illegible]ण आदि के ज्ञाता, अत्यन्त पंडित, ॥ ९० ॥

मऱियु रामायणमर्म मातंड । येरुगु नातनि बिल्वु मीकथ सॅप्प ननिन मज्जनकुडुदात्त वर्तनुडु ।ननु नर्थि बिलिपिंचि ननु गारविंचि भूमिगवींद्रुलु बुधुलुनु मॅच्च । रामायणंबु पुराणमार्गंबु तप्पक नापेर दगनन्ध्रभाष । जॅप्पि प्रख्यातंबु सेयिंपु मुर्वि ननियानतिच्चिन नामृदूक्तुलकु । ननियंबु हर्षिंचि यट्ल कार्विंप बनिपूनि यरिगंड भैरवुपेर । घनुपेर मीसरगंडाकुं पेर ललितसद्गुण गणालंकारुपेर । नलघु निश्चल दयायबुद्धि पेर नाततकृति पेर लतिपुण्यु पेर । मातंड्रि विट्ठल क्ष्मानाथुपेर राजुलु बुधुलुनु रसिकुलु सुकवि । राजुलु गोष्टिनि रागिल्लि पॉगड़ बदमुलर्थंबुलु भावमुल्गतुलु ।पदशय्यलर्थ-सौभाग्यमुल् यतुलु१०० रसमुलु गुंभनल् प्रास संगतुलु । नसमानरीतुल नन्नियु गलुग नादिकवीश्वरुडैन वाल्मीकि । यादरंबुन बुण्युलंदरु मॅच्च चॅप्पिन तेऱगुन श्रीरामचरित । मॉप्प जॅप्पॅद गथाभ्युदयमेट्लनिन१०३

—बुद्ध नरेश ही रामायण के मर्म को जानते हैं। आप (तदर्थ) उन्हीं को बुलावें'। ऐसा कहने पर उदात्त चरित्र वाले मेरे पिता ने मुझे बड़े प्रेम से बुलाकर, सम्मान कर, यह आदेश दिया—'रामायण की कथा को पुराणों के ढंग पर तॅलुगु भाषा में, मेरे नाम पर लिखकर (मुझे समर्पित कर) प्रख्यात करो जिससे संसार के कवि तथा पंडित उसकी प्रशंसा करें'। उनके मृदु वचनों से अत्यन्त हर्षित होकर, उसी प्रकार करने का (उनके आदेश का पालन करने का) निश्चय कर, शत्रुओं के लिए भयंकर मूर्ति वाले, महान्, रोबीले गलमुच्छों से सुशोभित, ललित-सद्-गुणालंकार वाले, महान् और निश्चल दया से युक्त बुद्धि वाले, अविरल पुण्य कर्म करने वाले, पुण्यात्मा मेरे पिता विट्ठल नरेश के नाम पर, श्रीरामचन्द्र के चरित्र को मैं इस ढंग से लिखूँगा कि राजा, पंडित, रसिक, सुकवि श्रेष्ठ, गोष्ठियों में (उस कथा को सुनकर) हर्षित होकर उसकी (उस रचना की) प्रशंसा करेंगे और जिसमें शब्द, अर्थ, भाव, गति, पदशय्या (रीति), अर्थ-गाम्भीर्य, यति, ।। १०० ।।

—रस, निर्माण, प्रास (प्रत्येक चरण के द्वितीयाक्षर का समान रहना) आदि सभी को अद्वितीय रीति से संयुक्त करूँगा, आदिकवि वाल्मीकि की कृपा से सभी पुण्यात्मा मेरी प्रशंसा करेंगे। कथा का प्रारम्भ इस प्रकार है— ।। १०३ ।।

कथाप्रारंभु

घनतपस्वाध्यायकमनीय शीलु । मुनिनाथु नारदु मुनिलोक वन्द्यु
ननघतपोनिधियैन वाल्मीकि । गनुगॊनि यॊकनाडु करमर्थिनडिगे
यॆव्वडु श्रीमन्तुडॆव्वडु शान्तु । डॆव्वडु घनपुण्यु डॆव्वडुन्नतुडु ?
यॆव्वडु नीतिज्ञुडॆव्वडु ब्राज्ञु । डॆव्वडु दुर्दमुडॆव्वडुत्तमुडु ?
यॆव्वडु जितकामुडॆव्वडजेयु । डॆव्वडु निरसूयुडॆव्वडाढ्युंडु ?
यॆव्वडु सुव्रतुं डॆव्वडुदारु । डॆव्वडु सुचरित्रु डॆव्वडु समुडु
यॆव्वनिकिन्ककुनिद्रादि सुरलु ।दव्वुदव्वुलनुंडितलकुचुंडुदुरु? ११०
अट्टिवाडिलबुट्टि यरिगॆनो इप्डु । पुट्टॆनो यिकमीद बुट्टनुन्नाडो ?
यनिन त्रिलोकज्ञुडैन नारदुडु । तनबुद्धिनॆन्तयु तलपोसि चूचि
ईमहि श्रीविष्णुडिपुडॆ जन्मिचे । रामुडै दशरथराजुनकतडु
नियतात्मुडतिशौर्यनिधि कृपाजलधि।जयशालिस्वजनरक्षण विचक्षणुडु
कंबुकंधरुडु चक्कनि मेनिवाडु । बिम्बारुणोष्टुंडु पीनवक्षुंडु
वॆंडद कन्नुलवाडु विपुलांसतलुडु । निडुदचेतुलवाडु नियतवर्तनुडु

कथा-प्रारम्भ

—एक दिन महान् तपस्वाध्याय से कमनीय, महान् शील से सम्पन्न, मुनि-श्रेष्ठ तथा मुनिलोक-वन्द्य नारद को देखकर, अनघ तपोनिधि वाल्मीकि ने अत्यन्त प्रार्थनापूर्वक पूछा—"(हे मुने ! इस संसार में) कौन श्रीमन्त (श्री से युक्त) है ? कौन शान्त (क्षमाशील) है ? कौन अधिक पुण्यात्मा है ? कौन उन्नत है ? कौन नीतिज्ञ है ? कौन प्राज्ञ है ? कौन दुर्दम है ? कौन उत्तम है ? कौन जितकाम (काम को जीतने वाला) है ? कौन अजेय है ? कौन ईर्ष्या-रहित है ? कौन आढ्य (सम्पन्न) है ? कौन सुव्रती है ? कौन उदार है ? कौन सुचरित्र है ? कौन सम-बुद्धि है ? किसके क्रोध से इन्द्रादि देवता भय से दूर-दूर रहते हैं ? ॥ ११० ॥

ऐसा व्यक्ति (क्या) भूमि पर पैदा होकर गुजर गया है ? क्या अब पैदा हुआ है ? आगे पैदा होने वाला है ?" ऐसा कहने पर त्रिलोकज्ञ नारद ने अपनी बुद्धि से देर तक सोचकर (कहा)—"इस पृथ्वी पर श्रीविष्णु ने अब जन्म लिया है, दशरथराज के (यहाँ) राम बनकर। वे नियतात्मा, अतिशौर्यनिधि, कृपा-जलधि, जयशाली, स्वजनरक्षण में विचक्षण हैं। वे कंबुकंधर, सुन्दर शरीर, बिम्बारुण सम ओठ, पीन (विशाल) वक्ष, विशाल नेत्र, विशाल कंधों से युक्त और आजानु-बाहु वाले हैं। वे नियत-वर्तन, वेद-वेदांगों में कोविद, कोदंडवेद

वेदवेदांग कोविदुडु कोदंड । वेदविदुंडु विवेकभूषणुडु
कमलाप्तुतेजंबु कडलि गांभीर्य । ममराद्रि धैर्यंबु नवनिसैरणयु
धनुदुनि त्यागंबु दनयंदु मिगुल । ननुवॉन्दु नित्य कल्याण विग्रहुडु
कौसल्यकानन्दकरुडु श्रीकरुडु । भासुर त्रैलोक्य पावन मूर्ति१२०
रामुडै पुट्टि या राजर्षि वच्चि । रामुनिम्मनि वेड राजु पंपगनु
मौनि वॅन्टनु बोयि मखमुनु गाचि । दानविनटु कूल्चि दैत्युनि द्रुंचि
राति नातिनि जेसि रामुडु वेग । सीतचेगॉनुटकु शिवुविल्लु विरुचि
ख्यातिगा सीतनु कडु बॅन्ड्लियाडि। सीततोडनु गूडि चॅलगि ययोध्य
केतॅञ्चु चोटनु गॅरलुचु । डेतॅञ्चि निलचिन नेपुन गदिपि
वापोव नातनि बलुविल्लु दिगिचि । कोपंबु तो मुनु गॉमरॉप्प दीसि
येपुन नंदरु यॅद वेड्क मीरु । नापट्टुननॅ वच्चि यप्पुरि जेरि
यासक्ति यौवराज्याभिषिक्तुनिगा। जेसॅदननि तंड्रि चॅलगि ययोध्य
बट्टंबु गट्ट भूपति समकट्ट । मट्टुमीरिन यट्टि मंथर यपुडु
नॅट्टिन गैकतो नॅरिनाट जेप्प । गट्टडि गैक संगरमुन दॉल्लि१३०

(धनुर्विद्या) के विद्वान्, विवेक-भूषण हैं। सूर्य का तेज, समुद्र का गाम्भीर्य, अमराद्रि (सुमेरु) का धैर्य, अवनि (भूमि) की क्षमा, धनद (कुबेर) का त्याग—इन गुणों को अपने में समाए हुए नित्य-कल्याण (प्रद) विग्रह (मूर्ति) वाले हैं। वह कौसल्या को आनन्द देने वाले, श्रीकर, त्रिलोक को पावन करने वाली दीप्तिमान मूर्ति वाले हैं॥ १२० ॥

—"(ऐसे भगवान्) राम के रूप में पैदा हुए, उस राजर्षि (विश्वामित्र) के आकर राम को माँगने पर, राजा के उनको भेजने पर (वे ही राम) मुनि के साथ जाकर, यज्ञ की रक्षा कर, दानवी (ताड़का) को वहां (मार) गिराकर, दैत्य (सुबाहू) का संहार कर, पत्थर को नारी बनाकर, सोत्साह सीता जी को ग्रहण करने के लिए शिवधनु तोड़कर, सीता जी से विवाह कर ख्यातिवान्, सीता जी के साथ सोत्साह अयोध्या लौटते समय, गर्वीले विप्र (परशुराम) के आ खड़े होने पर (रास्ता रोकने पर) उत्साह से सामना कर, उनके विशाल धनुष को उतरवा कर, क्रोध से उनके अहंकार को क्षीण कर, सबके हृदयों में आनन्द भरते हुए, उसी समय आकर, नगर (अयोध्या) पहुँचे। 'आसक्ति (इच्छा) से युवराज बनाऊँगा' ऐसा कहकर पिता जब सोत्साह (राम को) अयोध्या का राज देने को उद्यत हुए तब मर्यादा का उल्लंघन करने वाली मन्थरा ने हृदय को प्रभावित करने वाले ढंग से कैकेयी के कान भरे। तब क्रूर कैकेयी ने युद्ध में पहले से ही—॥ १३० ॥

सामीअ जा सलोक

अनुवादिका— प्रा० कु० पुष्पा आसवाणी,
एम. ए., साहित्यरत्न

प्रकाशकीय

'भुवन वाणी ट्रस्ट' के विशाल भाषाई कार्यक्रम में 'सिन्धी' का समावेश अब तक नहीं हुआ—यह बात पाठकों को खटक रही थी। किन्तु सिन्धी तथा देवनागरी लिपि और सिन्धी तथा हिन्दी भाषा—दोनो पर समान अधिकार-प्राप्त विद्वान् का सहयोग अब तक सुलभ न होने के कारण, उत्कट इच्छा होने के बावजूद, 'वाणीसरोवर' में इस आवश्यक स्तंभ का शुभारंभ न हो सका था।

हर्ष की बात है कि 'श्री चिनाई कॉलेज ऑफ़ कामर्स एण्ड एकॉनामिक्स', बंबई की प्राध्यापिका सुश्री कुमारी पुष्पा टी. आसवाणी ने इस कार्य-भार को अपने ऊपर लेकर ट्रस्ट के इस अभाव की पूर्ति कर दी। कु० आसवाणी हिन्दी तथा सोशिआलाजी की एम. ए., साहित्य-रत्न, लगभग एक दशक से अध्यापन-कार्य में ख्याति-प्राप्त और परम निष्णात हैं। यही नहीं, भारतीय दर्शन में उनका उल्लेखनीय अनुराग है; और यही सुयोग है जिसके फलस्वरूप अपरिमित वेदान्त-साहित्य की सगर्भा सिन्धी भाषा के 'सामीअ जा सलोक' जैसे जनप्रिय काव्य-संग्रह के सानुवाद लिप्यन्तरण का पुण्योदय हो रहा है। इस अनुपम सिन्धी वेदान्त-रत्न का विशद परिचय अनुवादिका के वक्तव्य में प्राप्त कीजिए।

सिन्धी भाषा की वर्णमाला में, अन्य सभी भारतीय भाषाओं की अपेक्षा, अधिक वर्ण हैं। इसमें हिन्दी के सब अक्षरों के अलावा, अरबी की समग्र वर्णमाला तथा सिन्धी भाषा के निजी चार अक्षर-विशेष भी सन्निविष्ट हैं। इनका विवरण अन्यत्र 'सिन्धी-देवनागरी' टेबुल में दिया

जा रहा है। लिपि के अतिरिक्त, एक ओर अरबी उच्चारणों की शैली का समावेश, तो दूसरी ओर हिन्दी प्राकृत, ब्रजभाषा, यहाँ तक कि अवधी तक के प्रयोग प्राचीन सिन्धी काव्य में प्रचुर मात्रा में मौजूद हैं। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि प्राचीन सिन्धी काव्य में ब्रज-भाषा और अवधी के शब्दों का बाहुल्य है, जिनके देवनागरी लिपि में प्रस्तुत होने पर, सिन्धी-भाषी की अपेक्षा हिन्दी-भाषी उनको अधिक शुद्धता से पढ़ और समझ सकते हैं। यही बात गुरमुखी के प्राचीन काव्यों की भाषा के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व सिन्धी भाषा को अरबी लिपि में लिखने की शुरूआत हुई। फलस्वरूप एक ओर तो अरबी के अनुकरण पर सिन्धी में भी मात्राओं, हलन्त और संयुक्ताक्षरों को चिह्नित न करने की पद्धति चल पड़ी; और दूसरी ओर सिन्ध-निवासी, तत्कालीन साहित्य के उद्गम-स्थान उत्तर भारत से दूर पड़ जाने के कारण, उपर्युक्त लिपि और भाषा की उथल-पुथल का सामना न कर सके और अवधी तथा ब्रजभाषा के शब्दों से धीरे-धीरे अपरिचित होने लगे। अरबी शब्दों का प्रयोग बढ़ने लगा। फलतः प्राचीन सिन्धी साहित्य में, और घरों में परस्पर बोली जाने वाली सिन्धी भाषा में, आज भी यद्यपि उन अवधी और ब्रजभाषा के शब्दों की भरमार है, किन्तु उन शब्दों के मूल रूप अथवा शुद्ध रूप में विकृति आ गई है।

'श्रीलाल उडैरो (दरयासाहब)' नामक लोकप्रिय पुस्तक के गद्यांश और पद्यांश की भाषा में अन्तर है। शुद्ध उच्चारण में प्रस्तुत किये जाने पर वह पद्यांश सिन्धी-भाषी की अपेक्षा हिन्दी-भाषी के लिए आज अधिक बोधगम्य है।

अस्तु, इन जटिलताओं के कारण शुद्ध उच्चारण और समुचित भाव-व्यञ्जना की दृष्टि से 'सामीअ जा सलोक' का हिन्दी-अनुवाद तथा देवनागरी-लिप्यन्तरण सामान्य कार्य न था। कु. आसवाणी जैसी व्युत्पन्न विदुषी के सहयोग के बल पर ही इस महान् कार्य को हाथ में लेने का हम साहस कर सके हैं। ट्रस्ट उनका अनुग्रहीत है।

—नन्दकुमार अवस्थी

मुख्यन्यासी, सभापति—भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ–३

सानुवाद लिप्यन्तरणकार का वक्तव्य

सिन्धी भाषा—

सिन्ध प्रान्त में बोली जानेवाली सिन्धी भाषा आधुनिक आर्य भाषाओं में से एक है। यह ब्राचड़ (विराचद) अपभ्रंश से निकली है।§ इसके उल्लेखनीय कवि अब्दुलकरीम, शाह लतीफ़, सचल और सामी आदि हैं। मूल सिन्धी भाषा की छः उपभाषाएँ हैं—सिरैकी, बिचोली, लारी, थरी, लासी और कच्छी।

सिन्धी की अपनी लिपि लण्डा (लहन्दा) है। पर अरबी के एक संशोधित एवं परिवर्द्धित रूप तथा गुरुमुखी लिपि का भी प्रयोग होता है। कहा जाता है कि गुरु अंगदसिंह ने नागरी लिपि की सहायता से लण्डा को सुधारा और उसी का गुरुमुखी नाम रखा। सामीजी ने अपने श्लोक गुरुमुखी लिपि में ही लिखे थे; जब कि शाह लतीफ़, सचल आदि मुसलमान कवियों का साहित्य अरबी-सिन्धी लिपि में मिलता है। परिस्थिति बदल गई है। सिन्धी-भाषी सारे देश में फैले हुए हैं। सिन्धी भाषा अब सिन्ध-प्रदेश तक ही सीमित नहीं है। इस लिए देश मात्र की सम्पर्क-लिपि देवनागरी लिपि के माध्यम से सिन्धी-साहित्य और पठन-पाठन में अभिरुचि तेज़ी से बढ़ रही है।

सिन्धी साहित्य में सामीजी का स्थान—

शाह, सचल तथा सामी—सिन्धी साहित्य के अमूल्य रत्न माने जाते हैं। इन्हें सिन्धी साहित्य की त्रिमूर्ति तथा 'त्रिवेणी' कहा जाता है। सिन्धी-साहित्य-शिरोमणि शाह लतीफ़ अपनी रचनाओं में लौकिकता से अलौकिकता की ओर प्रवृत्त दिखाई देते हैं। लोक-कथाओं को काव्य का रूप देकर, उन्होंने न केवल लोगों का मन बहलाया है, बल्कि साथ ही साथ उन्हें आध्यात्मिक प्रेम की ओर उन्मुख किया है। सचल अद्वैतवादी थे। वे आत्मा तथा परमात्मा में किसी प्रकार का अन्तर नहीं मानते थे; तभी तो उन्होंने कहा है:—

"अल्हा, अल्हा छो चवीं,
पाणई अल्हा ज़ाण।"

---

§ **'वाणी सरोवर' के जनवरी १९७० के अंक के पृष्ठ १३ पर 'सिन्धी भाषा बनाम सिन्धी लिपि' शीर्षक लेख इस विषय में पठनीय है। —सम्पादक**

अर्थात् मनुष्य तू 'अल्लाह ! अल्लाह !!' क्यों पुकार रहा है ? तू अपने आप को ही अल्हा (अल्लाह-परमात्मा) समझ। सचल जी जाति-पाँति के कट्टर विरोधी थे और वे नमाज़ तथा रोज़े के पाबन्द न थे। वे तो प्रियतम के प्रेम रूपी सरोवर में सदैव डूबे रहते थे। शाह तथा सचल ने सिन्ध को क़ुर्आन शरीफ़ तथा मौलाना रूम की मस्नवी आदि से परिचित कराया। सामीजी एक दार्शनिक तथा भक्त थे। उन्होंने वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों के सार को सिन्धी भाषा में लिखकर लोगों का मार्गदर्शन किया। इसके अतिरिक्त उनके श्लोकों में हमें गीता, भागवत, भक्त-गाथाओं, लोकदर्शन एवं उपनिषदों का तत्त्व मिलता है। फलतः हम कह सकते हैं कि शाह, सचल और सामी, सिन्धी साहित्य में त्रिवेणी के समान हैं, जिनके काव्य की बदौलत इस्लाम, सूफ़ी मत एवं वेदान्त का सलिलामृत, तीन धाराओं में सम्यक् प्रवाहित हो रहा है।

सामी का परिचय—

सामीजी सिन्धी-साहित्य-गगन के सूर्य माने जाते हैं। उन्होंने अज्ञान तथा अविद्या के अन्धकार में भटकती हुई सिन्धी जनता को अपने ज्ञान के प्रकाश से सत्य का मार्ग दिखाया, तथा वेदों के गूढ़ एवं गहन रहस्यों को सरल सिन्धी भाषा में प्रस्तुत किया। यही कारण है कि वे जनता के कवि माने जाते हैं।

सामीजी सिन्ध प्रान्त के शिकारपुर शहर के निवासी थे। उनका पूरा नाम चैनराइ बचूमल दातारामाणी लुण्ड था। उनका जन्म संवत् १७८७ (सन् १७४३) में तथा मृत्यु संवत् १९०७ (सन् १८५०) में हुई। बचपन से ही सामीजी के हृदय में परमात्मा के प्रति प्रेम तथा साधु-महात्माओं के प्रति अटूट श्रद्धा थी। सामीजी के पिता श्री बचूमल एक प्रतिष्ठित और धनी व्यापारी थे, फिर भी सामीजी सदैव सादा और सरल जीवन ही व्यतीत करते थे। कहा जाता है कि सामीजी काग़ज़ के छोटे-छोटे टुकड़ों पर अपने श्लोक लिखकर मिट्टी के एक घड़े में डाल दिया करते थे। उनकी मृत्यु के पश्चात् उनके सुपुत्र श्री घनश्यामदासजी ने सर्वप्रथम काग़ज़ के उन टुकड़ों को घड़े से निकाल, लाहौर के एक प्रेस में छपाया। बाद में वे ही श्लोक अरबी-सिन्धी लिपि में प्रकाशित होकर 'सामी जा सलोक' के रूप में प्रख्यात हुए।

श्री मेंघराज, सामीजी के गुरु थे। वे बहावलपुर प्रदेश के अहमदपुर शहर के निवासी और एक पहुँचे हुए संत थे। उन्हें 'सामी', 'मंगतराम', ब्राँभण (ब्राह्मण) आदि नामों से भी पुकारा जाता था। चैनराइ के हृदय में अपने गुरु के प्रति अपार प्रेम एवं श्रद्धा थी। अतः अपने श्लोकों के अन्त में उन्होंने अपना नाम न लिखकर अपने गुरु 'सामी' का ही नाम लिखा है। 'सामी' उनका स्वतः का उपनाम नहीं है।

सामीजी के दार्शनिक विचार—

वेदान्त के अनुसार मनुष्य, ब्रह्म और ब्रह्माण्ड में किसी भी प्रकार का भेद नहीं है। एक परम शक्ति से ही यह सारा ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ है, वही शक्ति संसार की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। उस शक्ति का न आदि है और न अन्त। सामीजी ने भी अपने श्लोकों में हमें बताया है कि परमात्मा निराकार है, उसका न आदि है, न अन्त। उस निराकार परमात्मा ने ही नाना प्रकार के रूप धारण कर लिये हैं, अतः सामी जी को संसार की सभी वस्तुओं में उस का ही रूप दिखाई देता है। उस रूप को देखकर वह अपनी सुध-बुध तक खो बैठते हैं।

सामीजी तथा कबीर के आत्मा और माया संबंधी विचारों में बहुत कुछ समानता दिखाई देती है। कबीरदासजी की तरह सामीजी भी मानते हैं कि परमात्मा का निवास मनुष्य के भीतर है पर माया के आवरण के कारण वह दिखाई नहीं देता। जब मनुष्य अपने पाँच विकारों को नष्ट कर अन्तर्मुख होगा तब ही उसे उस ज्योति का दर्शन होगा। माया अत्यन्त ही प्रबल है; वह मनुष्य को मृगतृष्णा की तरह व्याकुल करती है और परमात्मा को प्राप्त करने में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित करती रहती है। वह नाना रूप धारण कर मनुष्य को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है, अतः मनुष्य अपने सच्चे परमात्म-स्वरूप को भूलकर, उसके जाल में फँसता और अपने अमूल्य मानव-शरीर को व्यर्थ ही नष्ट कर देता है।

सामीजी मानते हैं कि संसार स्वप्न की तरह है। जिस प्रकार स्वप्न में जो कुछ दिखाई देता है वह सत्य नहीं है उसी प्रकार संसार की सभी वस्तुएँ झूठी हैं। सामीजी ने संसार को वृक्ष की छाया, मृगतृष्णा तथा अस्तित्वहीन सागर के समान माना है। आत्मा, परमात्मा, माया, अविद्या, संसार आदि विषयों के अतिरिक्त सामीजी ने मानव-शरीर, गुरु-महिमा, साधु-संगति, साधुओं के लक्षण, प्रेम, भक्ति, वैराग्य आदि विषयों पर भी अनेक श्लोक लिखे हैं।

काव्य—

सरलता तथा स्वाभाविकता सामीजी के काव्य की विशेषताएँ हैं। वेदान्त के कठिन, गूढ़ एवं गहन विषयों को जिस सरलता के साथ सामीजी समझा सके हैं वैसा शायद ही कोई दूसरा कवि कर पाता। आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि वाले कवि होने के कारण प्रो० मंघाराम मल्काणीजी ने सामीजी को सिन्ध का "मिल्टन" कहा है। सिन्ध के सूफ़ी परिवेश में रहकर भी वेदान्त की ओर उन्मुख होना, सामीजी की विशेषता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि सामीजी को प्रकृति से ही वेदों के ख़जाने

खोलने की मानो कुंजी मिली थी, जिससे उन्होंने गहन तथा गंभीर विषयों को सरल व सुगम बनाकर लोगों के सामने रखा।

सामीजी ने अपने श्लोक सिरैकी उपभाषा की शिकारपुरी बोली में लिखे। सामीजी संस्कृत के तो विद्वान् थे ही, पर साथ ही साथ उन्होंने अरबी और फ़ारसी भाषा का भी गहन अध्ययन किया था। उनके श्लोकों में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों के साथ-साथ अरबी, फ़ारसी के शब्दों तथा मुहावरों का भी सफल प्रयोग दिखाई देता है।

अन्ततः कहा जा सकता है कि 'सामी के श्लोक' भाव पक्ष तथा कला पक्ष—दोनों ही दृष्टियों से सिन्धी-साहित्य की अमूल्य निधि हैं। यद्यपि वे पहले दार्शनिक हैं, बाद में कवि, फिर भी उनके श्लोकों से हमें पता चलता है कि काव्य शास्त्र से भी वे पूर्ण परिचित थे। उनकी रचनाओं में उपमा तथा रूपक अलंकारों की भरमार है।

आशा है भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ द्वारा प्रकाशित, इन श्लोकों के हिन्दी अनुवाद साहित देवनागरी लिप्यन्तरण से, न केवल सिन्धी-भाषी वरन् अखिल देश की जनता सिन्धु-प्रदेश के भाव-भाषामृत का रसास्वादन करेगी।

श्रीगणेशाय नमः

[ॐ]

सामीअ्र जा सलोक

(अथवा वेदान्त-सार)

माया

माया कया मर्कट, मोहे जीअ जहान जा ।
भवनि भौसागर में, ग़िचीअ पाए ग़ट ।
कटी सभ कल्पना, समुझी कंहिं सुभट ।
पाए खिम्याँ खट, सामी सुम्हयों सराइ में ।। १ ।।

माया ने संसार के जीवों को आकर्षित कर उन्हें बन्दर बना दिया है, अतः वे अपने गले में प्रपंच रूपी फाँसी लटका कर भवसागर में भटकते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी सुभट (ज्ञानी ही) ने इस धोखे को सोच समझ कर काट दिया है, अब वह (संसार-रूपी) सराय में शाँति की शय्या बिछाकर सो गया है ।। १ ।।

माया करे मकरु, मूर्ख मोहिया मोह साँ ।
पुठी द्रेई पाण खे, भवनि भौसागरु ।
सामी तर्यो साध संगि, को दानाहु दुतरु ।
पूरणु परमेश्वरु, द्रिठो जंहिं अख्युनिसाँ ।। २ ।।

माया ने कपट कर, मोह से मूर्खों को अपनी ओर आकर्षित कर दिया है, जिससे वे अपने आप को भूलकर भवसागर में भटक रहे हैं (गोते खा रहे हैं)। सामीजी कहते हैं कि कोई बुद्धिमान तथा ज्ञानवान ही साधुओं के संग के सहारे पार हो गया है तथा पूर्ण परमात्मा को अपनी आँखों से देख पाया है ।। २ ।।

माया करे मकरु, मोहे मारे सभ खे ।
रखे न रतीअ जेत्रो, द्राइणि कंहिंजो द्ररु ।
को प्रेमी लंघे पार पियो, भारी भौसागर ।
पूरणु परमेश्वरु, सामी द्रिठो जंहिं साधसंगि ।। ३ ।।

माया कपट तथा मोह से सब को मार देती है (नष्ट कर देती है।) वह डाइन रत्तीमात्र भी किसी से नहीं डरती। सामीजी कहते हैं, जिस प्रेमी ने साधुओं के सत्संग से पूर्ण परमेश्वर को देखा है, वही इस भारी भवसागर से पार उतर पाया है ॥ ३ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
रखे न रतीअ जेत्रो, ड्राइणि कंहिंजो ड्ररु।
सामी बचियो को सूर्मो, सुजाग़ो सुभरु।
पूरणु परमेश्वरु, द्रिठो जंहिं आकास जाँ ॥ ४ ॥

माया धोखे से सब को आकर्षित कर मार देती है। यह डाइन रत्तीमात्र भी किसी से नहीं डरती। सामीजी कहते हैं कि कोई बहादुर, जागृत (ज्ञानी) और प्रेमी, जिसने पूर्ण परमात्मा को आकाश की तरह (निर्लिप्त होकर) देखा है, वही इस माया से बच सका है ॥ ४ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
विझी ग़र्टु ग़िचीअ में, घुमाए घरु घरु।
इस्थति रहे आकास जाँ, को साधूजनु सुभरु।
पूरणु परमेश्वरु, सामी द्रिठो जंहिं सम थी ॥ ५ ॥

माया कपट से सब को आकर्षित कर मार देती है। वह (मनुष्य के) गले में प्रपञ्च रूपी फाँसी डालकर, उसे घर-घर घुमाती रहती है (अनेक जन्म भुगताती रहती है)। सामीजी कहते हैं कि किसी प्रेमी साधु जिसने सम होकर पूर्ण परमात्मा को देखा है, वही आकाश की भाँति स्थित रहता है ॥ ५ ॥

माया कया मोग़ा, सामी जीअ जहान जा।
हणनि वातु, वीचार रे, उठनि जाँ ओग़ा।
जनी नां जोग़ा, था तर्क चलाइनि तिनिते ॥ ६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने संसार के जीवों को मंद (मूर्ख) बना दिया है। वे मूर्ख ऊँट की तरह (मूर्खों की भाँति) बिना सोच-विचार के मुँह चलाते रहते हैं (बकवास करते रहते हैं)। जो जानने योग्य नहीं उसपर ही वे तर्क करते रहते हैं ॥ ६ ॥

माया खसे मति, सामी विधी सभजी।
स्वप्न जे संसार खे, मूर्ख ज़ाणनि सति।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, आशिकु थियो अपरन्ति।
जाग़ी जुर्यो तिति, जिते तूँ माँ नाहिं का ॥ ७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब की बुद्धि छीन ली है; यही कारण है कि वे मूर्ख स्वप्न के समान (झूठे) संसार को सत्य समझ रहे हैं। पर कोटि मनुष्यों में से किसी ही एक प्रेमी ने जागृत होकर, संसार से अलग (निर्लिप्त) होकर वहाँ निवास किया है जहाँ 'तू'-'मैं' की भावना नहीं है ॥ ७ ॥

माया करे ग़ुलाम, सामी विधो सभखे।
को नेहीं व्युसि निकिरी, निरविकल्पु निष्कामु।
लधो जंहिं गुरु ज्ञात साँ, अन्भय आदी धामु।
जंहिं में रम्ता रामु, सूर्य जाँ साक्षी रहे ॥ ८ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने सब को ग़ुलाम बना दिया है। कोई निर्विकल्प, निष्काम प्रेमी ही उससे बच पाया है, जिसने गुरु के ज्ञान (उपदेश) से अन्भय आदि-धाम ढूँढ निकाला है, जिस (धाम) में राम सूर्य के समान प्रत्यक्ष तथा व्याप्त हैं।

[विशेषः—सामीजी ने ब्रह्म का निरूपण राम के नाम से किया है। इनका राम कबीर की भाँति दशरथ-पुत्र राम से भिन्न है। वह निराकार सर्वव्यापक तथा अविनाशी है।] ॥ ८ ॥

माया खसे मति, मोग़ो कयो माणु हुनि खे।
जन्मु पाए जग में, भवनि नाना भाँति।
समुझी थियो सामी चए, को आशिकु उपरन्ति।
जंहिंखे साध संगति, लख्य लखाई अन्भई ॥ ९ ॥

माया ने मनुष्यों की बुद्धि छीनकर उन्हें मंद बना दिया है, अतः वे संसार में जन्म लेकर अनेक प्रकार से भटक रहे हैं (दुःख भोग रहे हैं)। सामीजी कहते हैं कि कोई विरला प्रेमी जिसे साधुओं के संग ने अन्तर्बोध द्वारा लक्ष्य दिखा दिया है, वही इस माया को समझकर इससे अलग रह सका है ॥ ९ ॥

माया खसे मति, मोग़ो कयो माणुहुनि खे।
भोग़िनि भोग़ भर्म जा, सामी ज़ाणी सति।
को सुजाग़ो सूर्मो, उल्टी थियो उपरन्ति।
तक्यो कयाऊँ तिति, जिते आहि न नाहिंका ॥ १० ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने मनुष्यों की बुद्धि छीनकर, उन्हें मन्द कर दिया है, अतः वे झूठे भोगों को सत्य मानकर भोग रहे हैं। पर कोई

विरला जागृत वीर ही इस माया से मुख मोड़कर, निश्चिन्त हो वहाँ जा बसा है जहाँ 'है' और 'नहीं है' की भावना नहीं है ॥ १० ॥

माया खसे मति, सभजी वर्ती वेसाह साँ ।
स्वप्न जे संसार खे, सामी ज्ञाणनि सति ।
पाण पछाणनि कीनकी, अन्धा थी उपरन्ति ।
विया विञाए पति, अमोलकु अकुलरे ॥ ११ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने विश्वास से सब की बुद्धि छीन ली है (हटा ली है), अतः वे स्वप्नवत् संसार को सत्य मान बैठे हैं। ये अन्धे (अज्ञानी) संसार से अलग होकर भी अपने स्वरूप को नहीं पहचानते। अमूल्य बुद्धि के होते हुए भी ये (अज्ञानी) अपनी मर्यादा खो बैठे हैं ॥ ११ ॥

माया जगतु ठगे, सामी सारो वसि कयो ।
जिनिखे सायो सन्त जो, तिनिखे कीन लगे ।
लंघे वर श्राप खों, पहुता यार अगे ।
जिते ज्योति जगे, अठई पहर अन्भई ॥ १२ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने संसार को ठग कर अपने वश में कर लिया है; पर जिनपर संतों की कृपा है उनपर इस (माया) का प्रभाव नहीं पड़ता। वे प्रेमी वरदान तथा श्राप से ऊपर उठकर वहाँ जा पहुँचे हैं जहाँ आठों पहर आत्मप्रकाश की ज्योति जल रही है ॥ १२ ॥

माया करे वल छल, मोहिया जीअ जहान जा ।
वहिया वञनि वह में, कंहिखे पवे न कल ।
सोंटो हँयुसि सम जो, कंहिं साधु जन सबल ।
जंहिंखे प्रेम पहल, सामी पीआरी सतिगुरुअ ॥ १३ ॥

माया ने छल-बल से संसार के लोगों को अपनी ओर आकर्षित कर दिया है, अतः वे अनजान बनकर उसके प्रवाह में बह रहे हैं। सामीजी कहते हैं, पर किसी बलवान साधु ने, जिसे सतगुरु ने प्रेम की घुट्टी पिलाई है, (उसने ही) समता रूपी डंडे से उस (माया) पर प्रहार किया है ॥१३॥

माया मति मलीनु, मोहे कयो माणुहुनि खे ।
रहनि ख़ाब ख़्याल में, अठई पहर अधीनु ।
जागी जुर्यो स्वरूप साँ, को प्रेमी प्रबीनु ।
जंहिंखे पाकु यकीनु, सामी द्विनो सतिगुरुअ ॥ १४ ॥

माया ने मनुष्यों को मोहित कर उनकी बुद्धि मलीन कर दी है, अतः वे आठों पहर झूठे स्वप्नों तथा विचारों के अधीन होकर रहते हैं। पर सामीजी कहते हैं कि कोई विरला प्रवीण प्रेमी, जिसे सतगुरु ने पवित्र विश्वास दिया है, वह ही जागृत होकर अपने स्वरूप (परमात्मा) से जा मिला है ॥ १४ ॥

माया भुलाया, भवनि जीअ भर्म में।
मने वेठो पाण खे, कल्पत जी काया।
उल्टी पंहिंजे घर में, के आशिक जन आया।
जेके जग़ाया, सामी पूरे सतिगुरुअ ॥ १५ ॥

माया में (अपने स्वरूप को) भूलकर जीव, भ्रमों में भटक रहा है, अतः वह स्वयं को 'नाशवान शरीर' ही मान बैठा है। पर सामीजी कहते हैं कि कुछ प्रेमी, जिन्हें पूर्ण सद्गुरु ने जागृत किया, वे संसार से मुख मोड़कर अपने घर (हृदय) में स्थित हो बैठे हैं ॥ १५ ॥

माया भुलाए, विधा जीअ भर्म में।
सामी द्रिसे कोनको, मूंहुं मढ़ीअ पाए।
जंहिंखे अविद्या निन्द्रमों सतिगुरु जाग़ाए।
सो वेही वज़ाए, नंगारो निरब्राण जो ॥ १६ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमों में भुला दिया है, अतः वह अपने भीतर झाँककर नहीं देखता, पर जिसे सद्गुरु ने अविद्या रूपी नींद से जगा दिया है, वह बैठकर निर्वाण रूपी नगारा बजाता है (अर्थात् ब्रह्मानन्द में मस्त रहता है) ॥ १६ ॥

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म में।
पाण पंहिंजो पाण मों, वेठो विञाए।
अण हूंदे दर्याह में, ग़ोता नितु खाए।
मंहुं मढ़ीअ पाए, सामी द्रिसे कीनकी ॥ १७ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमों में भुला (उलझा) दिया है अतः वह अपने आप को खो बैठा है। वह (जीव) (माया के) अस्तित्व-हीन समुद्र में सदैव ग़ोता खाता रहता है, पर अपने भीतर झाँककर नहीं देखता ॥ १७ ॥

माया भुलाए, विधा जीअ भर्म में।
अन्धो द्रिसे कीनकी, मूंहुं मढ़ीअ पाए।
सामी अविद्या निन्द्र मों, सतिगुरु जाग़ाए।
त सुखी थी खाए, अन्भय फल आकास जाँ ॥ १८ ॥

माया ने जीव को भ्रम में उलझा दिया है, अतः वह अन्धा (अज्ञानी) अपने भीतर झाँककर नहीं देखता है। पर सामीजी कहते हैं, जिसे सद्गुरु ने अविद्या की नींद से जगाया है वह आकाश की तरह सुखी हो अन्तर्ज्ञान-रूपी फल खाता है ॥ १८ ॥

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म में।
अणहून्दे दर्याह में, ग़ोता नितु खाए।
सामी द्रिसे कीन की, मूंहुं मढ़ीअ पाए।
सतिगुरु जाग़ाए, त जाग़ी जुरे पाण साँ ॥ १९ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को भ्रमों में उलझा दिया है, अतः वह (माया के) अस्तित्वहीन समुद्र में नित्य ग़ोते खा रहा है, वह अपने भीतर झाँककर नहीं देखता है; पर यदि उसे सद्गुरु जागृत कर देता है तो वह अपने (परमात्मा) से जा मिलता है ॥ १९ ॥

माया भुलाए, जीअ कया वसि पंहिंजे।
कंहिंखे छड्डे कीनकी, सभ खे नचाए।
सामी बचियो को सूर्मो, साधुअ जे साये।
वेठो लिवं लाए, चेतन चिदाकास में ॥ २० ॥

माया ने जीव को भुला कर अपने वश में कर दिया है, वह किसी को भी नहीं छोड़ती, सबको नचाती रहती है। पर सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर (ज्ञानी), साधु की कृपा से इस माया से बचता है और चेतन चिदाकाश (परमात्मा) में मस्त होकर बैठता है ॥ २० ॥

माया भुलाए, विधा जीअ जहान जा।
नाना रूप रचे करे, वेठा ठठु ठाहे।
पंहिंजे पंहिंजे मति खे, सभुको वड्डाए।
मूंहुं मढ़ीअ पाए, सामी द्रिसे कीन की ॥ २१ ॥

माया ने संसार के जीवों को भुला रखा है (अपने स्वरूप से भुला दिया है), अतः वे अनेक प्रकार के रूप धारण कर आडम्बर सहित बैठे

हैं। सामीजी कहते हैं कि प्रत्येक (जीव) अपने-अपने मत (पंथ, विचार) की प्रशंसा कर रहा है पर कोई भी अपने भीतर झाँककर नहीं देखता है ॥ २१ ॥

माया बुरी बलाइ, कंहिंखे छड्डे कीन की।
सामी लुटे सभखे, देई ह्विसु-हवाइ।
तंहिंजो लेखो नाहिं को, जंहिंखे सचुसहाइ।
सूर्त सभहीं जाइ, द्रिसे कुलु आलम में ॥ २२ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया दुष्ट बला (नागिन) सदृश है, वह किसी को भी नहीं छोड़ती, वह लोभ-लालच आदि देकर सब को लूट लेती है। जिसे सत्य का सहारा है उसका वर्णन अकथनीय है; क्योंकि वह पूरे संसार में, प्रत्येक जगह उसी सूरत (परमात्मा) को देखता है ॥ २२ ॥

माया करे मकरु, मोहे मारे सभखे।
रहे अलेपु आकास जाँ, को निरासो निद्रुरु।
पर्ची लधो जंहिं पंहिंजो, अन्भय आदी घरु।
सामी जर अजरु, माणे मौज मुक्ति जी ॥ २३ ॥

माया ने धोखे से सब को आकर्षित कर मार (नष्ट कर) दिया है। सामीजी कहते हैं कि कोई निराश एवं निडर (व्यक्ति) ही आकाश के समान निर्लिप्त रहता है (माया का उस पर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता)। उसने राज़ी होकर अपना अन्तर्मुख आदि-घर (वह घर जहाँ ज्ञान का प्रकाश रहता है) ढूँढ लिया है, अतः वह विनाश और अविनाश में भी मुक्ति का आनंद लूटता रहता है ॥ २३ ॥

माया करे मजूरु, छड्डिया जीअ जहान जा।
वञनि मति मर्म रे, विष्यनि काणि वहलूरु।
रहे पंहिंजे हाल में, को महबती मामूरु।
जंहिंखे निर्मल नूरु, सामी द्रिनो सतिगुरूअ ॥ २४ ॥

माया ने संसार के जीवों को विवश बना दिया है, अतः वे बुद्धि-हीन एवं निर्लज्ज हो विषयों (के प्रवाह) में बहते रहते हैं। सामीजी कहते हैं, परन्तु जिस पूर्णप्रेमी को सद्गुरु ने निर्मल प्रकाश (ज्ञान) दिया है वह अपनी हालत पर ही मस्त रहता है ॥ २४ ॥

माया जीअ मोहिया, लाड़े लाए पंहिंजे ।
विझी ज़ारु भर्म जो, सभजा खम्भ खोहिया ।
के पक्षी व्यसि निकिरी, उज्यलु अछोहिया ।
बेहद जा ग़ोहिया, द्रीआ द्रिठा जंहिं द्रील में ।। २५ ।।

माया ने जीवों को अपने पीछे पागल (मस्त) बना दिया है। उसने भ्रम रूपी जाल फैलाकर सब के मार्ग अवरुद्ध (बन्द) कर दिये हैं। पर कुछ अनंत को ढूँढनेवाले, शुद्ध विचारोंवाले, अछूते (माया से अप्रभावित) उस जाल से निकल गये और उन्होंने अपने शरीर में ही (ज्ञान के) दीपक देखे ।। २५ ।।

माया भुलायो, सामी जीउ स्वरूपखों ।
देही मने पाणखे, सन्से मँझि आयो ।
जीएं नारीअ निन्द्र में, ब्रालकु विञायो ।
जाग्रये जाग्रयो, तद्रीं कणो कल्पत न रही ।। २६ ।।

सामीजी कहते हैं कि माया ने जीव को स्व-रूप से भुला दिया है, अतः वह भ्रम में पड़कर अपने को शरीर ही मान रहा है। जिस प्रकार नारी नींद में बालक गवाँकर बेचैन हो जाती है (पर जागृत होने पर ही उसकी बेचैनी नष्ट होती है) उसी प्रकार ज्ञान के उदय होने पर ही भ्रम का पूरा निवारण होता है ।। २६ ।।

माया भुलाए, विधो जीउ भर्म में ।
पाण पंहिंजो पाण मों, वेठो विञाए ।
स्वप्न में सामी चए, कोट जन्म पाए ।
अविद्या पटु लाहे, सामी द्रिसे कीनकी ।। २७ ।।

माया ने जीव को भ्रम में डालकर भुला दिया है अतः वह अपने अहं में अपने को खो बैठा है। सामीजी कहते हैं कि इस (माया रूपी) स्वप्न में वह कोटि-कोटि जन्म प्राप्त करता है किन्तु अज्ञान रूपी आवरण को हटाकर नहीं देखता ।। २७ ।।

माया भुलायो, सामी जोड़े जीअ खे ।
नांगु द्रिसी नोड़ीअ में, दूरों द्रहकायो ।
ग़णितीअ लेखे दुःखे जे, सन्से मंझि आयो ।
सतिगुर समुझायो, तद्रीं संमुझे सोझिरो पाण में ।। २८ ।।

माया ने जीव को अपने से जोड़कर उसे भुला दिया है, अतः दूर से

ही रस्सी को सर्प समझकर वह भयभीत होता रहता है; दुःख की चिन्ता के कारण वह भ्रमित हो गया है। पर जब उसे सद्गुरु ने ज्ञान दिया तब उसे अपने आप में प्रकाश दिखाई दिया ॥ २८ ॥

माया मकरु करे, मोहे मारे सभखे।
सामी रहे को सूर्मो, पापिणि खों परे।
पीतो जंहिं प्रतीति साँ, प्यालो पाकु भरे।
सभ में द्रिसी ठरे, पंहिंजे अख्यें पाण खे ॥ २९ ॥

माया कपट से सब को मोहकर मार देती है। सामीजी कहते हैं कि कोई शूरवीर ही इस पापिन से अपने को दूर रख सका है। जिसने विश्वासपूर्वक (ज्ञान का) पवित्र प्याला भर कर पिया है वह अपनी आँखों से सब में अपने ही स्वरूप को देखकर शीतल होता है ॥ २९ ॥

माया मचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी।
सची ज्ञाणी सभुको, छाणे नितु छाई।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आई।
सामी सदाई, इस्थिति रहे आकास जाँ ॥ ३० ॥

माया ने प्रपंच का झूठा खेल खेला है, जिसे सब सत्य मान कर अपने मुँह में धूल डाल रहे हैं। सामीजी कहते हैं किसी विरले गुरुमुख को ही यह (माया का रूप) समझ में आया है। अब वह सदैव आकाश की भाँति (सर्वत्र-व्याप्त, सर्वमय) स्थित रहता है ॥ ३० ॥

माया मचाई, कूड़ी रांदि कल्पत जी।
तंहिं में मोहे ख़लिक़ सभ, फाहीअ फासाई।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, समुझ में आई।
सामी सदाईं, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ ३१ ॥

माया ने प्रपंच का झूठा खेल रच कर, उसमें सभी लोगों को आकर्षित कर, फन्दे में फँसा दिया है। सामी जी कहते हैं, किसी विरले गुरुमुख को ही वह (माया) समझ में आई है; अतः वही सदैव अन्तर्मुख हो आनन्द मनाता रहता है ॥ ३१ ॥

माया मचायो, कूड़ो खेलु कल्पत जो।
तंहिंमें कनि तद्रूपु थी, मूर्ख मनु भायो।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो।
सामी समायो, जल पपोटो जल में ॥ ३२ ॥

माया ने प्रपंच का झूठा खेल रचा है जिसमें मूर्ख (जीव) तद्रूप होकर मनचाहा (कार्य) कर रहे हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी विरले गुरुमुख को ही (माया का रूप) समझ में आया है; तब वह जल के बुदबुदे की तरह जल में ही समा गया (अर्थात् जिस प्रकार पानी का बुदबुदा पानी से मिलकर अपना अस्तित्व नष्ट कर देता है, उसी प्रकार गुरुमुख की आत्मा परमात्मा में लीन हो अपना अस्तित्व खो देती है ॥३२॥

माया मचायो, भारी भेषु भर्म जो।
तंहिं में मोहे सभखे, द्रह द्रिस दौरायो।
व्रिले कंहिं गुर्मुख खे, अन्भय में आयो।
पंहिंजो परायो, ख्यालु छड्डे ख़ामोशु थियो ॥ ३३ ॥

माया भ्रम का अत्यन्त मोहक भेष धारण कर उसमें सब (जीवों) को आकर्षित कर उन्हें दसों दिशाओं में दौड़ाती है। पर किसी विरले गुरुमुख को वह (माया का रूप) समझ में आ जाता है; अतः वह अपने-पराये की भावना छोड़कर शान्त हो जाता है ॥ ३३ ॥

माया मति खसे, वर्ती माणुहुनि जी मोह साँ।
ग़ुझी ग़ाल्हि अन्दर जी, कंहिंखे कीन द्रसे।
सामी हँयुसि कंहिं सूर्में, बेहद ब्राणु कसे।
हर्दमि द्रिसी हँसे, पाणु वराए पाण साँ ॥ ३४ ॥

माया ने मोह से मनुष्यों की बुद्धि छीन ली है। वह भीतर के गूढ़ रहस्य को (परमात्म-स्वरूप का दर्शन) किसी को नहीं होने देती। सामीजी कहते हैं, पर जिस शूरवीर (गुरु) ने अनहद रूपी तीर कसकर मारा वह अहं खोकर हर जगह अपने स्वरूप को लख कर प्रसन्न हो रहा है ॥ ३४ ॥

माया मति खसे, सभजी विधी वल साँ।
सामी अन्भय आत्मा, द्रेहों दूरि द्रसे।
हँयुसि ग़टु ग़िचीअ में, कंहिं दर्दवन्द दसे।
हर्दमि द्रिसी हँसे, पाणु वराए पाण खे ॥ ३५ ॥

सामीजी कहते हैं कि माया ने छल से सब की बुद्धि छीन ली है, अतः वह (माया) भीतर (हृदय में) स्थित आत्मा को दूर देशों में भरमाती है। जिसके गले से, किसी प्रेम से पीड़ित (गुरु) ने, (अपने) बल से (माया की) फाँसी उतार दी है, वह अपने अहं को खोकर सदैव अपने स्वरूप को देखकर आनन्दमाग्न रहता है ॥ ३५ ॥

"मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना,
हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा।"

—इक़बाल

राष्ट्रीय एकता

ही

राष्ट्र को सम्पन्न और समृद्धिशाली बनाने हेतु
हमारे प्रयासों की सफलता की कुंजी है।

उत्तर प्रदेश

में

जनतांत्रिक और समाजवादी समाज की रचना के
हर भेद-भाव को भुलाकर जुट जाना
प्रत्येक प्रदेशवासी का दायित्व है।

ग ६०७५ सूचना विभाग उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

मलेरिया

- –मलेरिया भारतवासियों का सबसे बड़ा शत्रु, जिससे लाखों आदमी प्रतिवर्ष मरते थे।
- –ज्वर की सूचना छिपाना हानिकारक है।
- –अनवरत प्रयत्नों के फलस्वरूप हमारे देश में मलेरिया उन्मूलन हो सका है, परन्तु अब भी कुछ स्थानों पर यह रोग, फैलने की संभावना है। अतः प्रत्येक बुखार के रोगी की रक्त जाँच आवश्यक है।
- –हाऊस विज़ीटर जो आप के घर में कई बार जाते रहते हैं उनको सहयोग दें।
- –बिना आपके सहयोग मलेरिया का उन्मूलन नहीं हो सकता।

ग ७५४७ प्रसारित, निदेशक, स्वास्थ्य सेवा एवं परिवार नियोजन (स्वास्थ्य ब्यूरो) उ० प्र०।

"मनुष्यो ! तुम सिंह के सामने
जाते समय भयभीत न होना, वह
पराक्रम की परीक्षा है। तुम तलवार के
नीचे सिर झुकाने से भयभीत न होना, वह बलिदान
की कसौटी है। तुम पर्वत-शिखर से पाताल में कूद पड़ना,
वह तप की साधना है। तुम बढ़ती हुई ज्वालाओं से
विचलित न होना, वह स्वर्ण-परीक्षा है। पर
शराब से सदा भयभीय रहना, क्योंकि
वह पाप और अनाचारों की
जननी है।"

—भगवान बुद्ध

ग ७०१२ मद्यनिषेध एवं समाजोत्थान विभाग, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

ग्रामीण अंचलों में आर्थिक विकास
एवं
लाभप्रद रोज़गार के लिए

खादी एवं ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन दीजिए।

उत्तर प्रदेश खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड कानपुर, सहकारी समितियों एवं पंजीकृत संस्थाओं के माध्यम से—

निम्न उद्योगों के लिए तकनीकी एवं आर्थिक सहायता प्रदान करता है।

१ खादी २ चर्म ३ तेल घानी ४ लोहारगीरी ५ गोबर गैस ६ मधु मक्खी पालन ७ ताड़ गुड़ ८ गुड़ खाँड़सारी ९ वनौषधि संकलन १० फल संस्क्षण ११ ग्रामीण कुम्हारी १२ रेशा १३ कुटीर दियासलाई १४ हाथ कागज १५ अखाद्य तेल एवं साबुन १६ कत्था १७ लाख १८ गोंद १९ अल्मूनियम २० बाँस बेंत २१ रोजिन २२ रेशम २३ फ्लेइंग।

विस्तृत जानकारी हेतु अपने निकटवर्ती जिला ग्रामोद्योग अधिकारी अथवा प्रचार अधिकारी से सम्पर्क करें।

उत्तर प्रदेश खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड
७/१०५ सी तिलकनगर, कानपुर से सम्पर्क करें
प्रचार शाखा उत्तर प्रदेश खादी तथा ग्रा० बोर्ड कानपुर द्वारा प्रकाशित

वाणी सरोवर

(अपने ढंग का निराला त्रैमासिक पत्र)

१–सन् १९७० में हिन्दी, उर्दू, अरबी, फ़ारसी, संस्कृत, पारसी, बंगला, ओड़िया, मराठी, गुरमुखी, तमिळ तथा मलयाळम भाषा का सत्साहित्य धारावाहिक सानुवाद देवनागरी रूप में लिप्यन्तरण प्रकाशित हुआ है।

२–सन् १९७१ में उपरोक्त भाषाओं के साथ-साथ असमी, गुजराती, तॅलुगु, कन्नड़, और सिन्धी का कार्यक्रम भी आरम्भ हो चुका है। कश्मीरी, नेपाली, पाली, प्राकृत आदि का धारावाहिक कार्यक्रम भी शीघ्र ही अपनाया जायगा।

ग्राहकों एवं पाठकों से निवेदन :—

नवीन ग्राहक बननेवाले सज्जनों को सन् १९७० तथा १९७१ दोनों वर्ष का शुल्क २०·०० भेजना उनके हित में होगा। प्रथम वर्ष के अंक न मंगाने पर धारावाहिक चलनेवाले उस अंक से शुरू अनेक ग्रंथ उनके संग्रहालय में अपूर्ण रह जायँगे।

प्राप्ति स्थान–भुवन वाणी ट्रस्ट,
'प्रभाकर निलयम', ४०५/१२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ–३

राष्ट्रीय बचत

देश की विकास योजनाओं को सफल बनाने और अपने भविष्
को सुखद बनाने के लिए अपनी मेहनत की कमाई से अधिकाधिक ध
बचाइये और राष्ट्रीय बचत योजना की नई प्रतिभूतियों में अपने निकटत
डाकघर में जमा कीजिए। आप अपनी बचत निम्न में से अपनी मन
पसन्द बचत योजना में जमा कर सकते हैं।

१—डाकघर बचत खाता

२—डाकघर (आवर्तक जमा) योजना

३—डाकघर (सावधि जमा) योजना

४—बढ़ने वाली सावधिक जमा योजना

विशेष जानकारी के लिए कृपया अपने ज़िले के ज़िला संगठन कर्त
राष्ट्रीय बचत से सम्पर्क स्थापित करें।

ग ७११३ राष्ट्रीय बचत निदेशालय, उत्तर प्रदेश द्वारा प्रसारित

देश-विदेश में समान रूप से लोकप्रिय
उत्तर प्रदेश के
कलात्मक हस्तशिल्प एवं हथकरघा वस्त्र

* उपहार तथा गृह-सज्जा योग्य वस्तुएं *

सदैव

गवर्नमेण्ट यू० पी० हैण्डीक्राफ्ट्स

से ही ख़रीदिए।

प्रदर्शन कक्ष:—लखनऊ, इलाहाबाद, आगरा, भोपाल, नागपुर
हैदराबाद, कलकत्ता और नई दिल्ली।

व्यावसायिक विवरण हेतु—

स्पेशल मैनेजर, गवर्नमेण्ट यू० पी० हैण्डीक्राफ़्ट्स
मोतीमहल, लखनऊ से सम्पर्क करें।

ग ६४२८ उद्योग निदेशालय, उत्तर प्रदेश (केन्द्रीय प्रकाशन शाखा), कानपुर इण्ड०-५

Regd. No. R.N. 19347-70 Govt. of India

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं०कां० १०—(सिंधी) स्वामी के श्लोक
११—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१२—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत
१३—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद।
१४—(उर्दू) 'उमराव जान अदा' के प्रसिद्धि-प्राप्त श्री 'रुसवा' का चारित्रिक (नैतिक) उपन्यास "शरीफ़ज़ादः"।
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५१ उपनिषदों के फ़ारसी-भाष्य (डॉ० ताराचंद द्वारा सम्पादित तथा ईरान में प्रकाशित 'सिर्रे अक्बर') का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद।
१६—(अ़रबी) रियाज़ुस्सालिहीन—(ज़ादें सफ़र) इस्लामी हदीसों के प्रामाणिक समुच्चय का हिन्दी रूपान्तर।
१७—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०·००।
१८—इनके अतिरिक्त संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) आदि के अनेक सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण-ग्रंथ।

ट्रस्ट की स्थापना से पूर्व, समानान्तर सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण जो पूर्ण हो चुके हैं:—

१—(अ़रबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—
३—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख्वाजः दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—

विज्ञापन के लिए, व्यवस्थापक, 'वाणी सरोवर' १२८, चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३ से पत्र-व्यवहार कीजिए।

वाणी प्रेस, लखनऊ-३ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, रानीकटरा, लखनऊ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक